मंगलमन्त्र णमोकार
एक अनुचिन्तन

मंगलमन्त्र णमोकार

एक अनुचिन्तन

डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रकाशकीय

भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति, साहित्य, कला और इतिहास का समुचित मूल्यांकन तभी सम्भव है जब उनके साथ-साथ ज्योतिष, आयुर्वेद, योग एवं तन्त्र-मन्त्र आदि सभी प्राच्यविद्याओं के सुविशाल वाङ्मय का भी विधिवत् अध्ययन-मनन हो । साथ ही, यह भी आवश्यक है कि ज्ञान-विज्ञान की विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्री का अनुसंधान और प्रकाशन तथा लोकहितकारी मौलिक साहित्य का निर्माण होता रहे । भारतीय ज्ञानपीठ का उद्देश्य भी यही है ।

इस उद्देश्य की आंशिक पूर्ति ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला के अन्तर्गत संस्कृत, प्राकृत, पालि, अपभ्रंश, तमिल, कन्नड़, हिन्दी और अंग्रेजी में, विविध विधाओं में अब तक प्रकाशित 150 से अधिक ग्रन्थों में हुई है । वैज्ञानिक दृष्टि से सम्पादन, अनुवाद, समीक्षा, समालोचनात्मक प्रस्तावना, सम्पूरक परिशिष्ट, आकर्षक प्रस्तुति और शुद्ध मुद्रण इन ग्रन्थों की विशेषता है । विद्वज्जगत् और जन-साधारण में इनका अच्छा स्वागत हुआ है । यही कारण है कि इस ग्रन्थमाला में अनेक ग्रन्थों के अब तक कई-कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं ।

'मंगलमन्त्र णमोकर : एक अनुचिन्तन' के यशस्वी लेखक स्व. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य की गणना प्राच्यविद्या के अग्रणी विद्वानों में रही है । भारतीय मनीषा के विविध पक्षों पर शोधपरक लेखन-सम्पादन के क्षेत्र में उनका इतना अधिक सक्रिय अवदान रहा है कि हम उनसे कभी उऋण नहीं हो सकते ।

णमोकार मन्त्र की गरिमा सर्वविदित है । उसके उच्चारण की विशेष

महिमा है । साथ ही, यह साधना, आराधना और अनुभूति का विषय है । श्रद्धा और निष्ठा होने पर यह आत्मकल्याण और लौकिक अभ्युदय दोनों का ही मार्ग प्रशस्त करता है । प्रस्तुत कृति में इस मंगलमन्त्र के कुछ ऐसे ही निगूढ़ पक्ष उद्‌घाटित किये गये हैं, जिससे यह कृति शोधपरक और मौलिक बन गयी है ।

पुस्तक की महानता तो इसी बात से सिद्ध है कि इसका अब यह एक और नया संस्करण सुधी पाठकों के हाथों में पहुँच रहा है ।

—प्रकाशक

अनुक्रम

आमुख

'ज्ञानार्णव' का प्रवचन स्व. श्रीमान् बाबू निर्मलकुमारजीके समक्ष कई महीनोंसे चल रहा था। जब 'कृत्वा पापसहस्राणि हत्वा जन्तुशतान्यपि' आदि श्लोकका प्रवचन करने लगा तो उन्होंने इच्छा व्यक्त की कि णमोकार मन्त्रपर कुछ विशेष अन्वेषण कर पुस्तक लिखी जाये। किन्तु खेद इस बातका है, कि उनके जीवनकालमें पुस्तक लिख जानेपर भी प्रकाशित न हो सकी। उक्त बाबू साहबको इस महामन्त्रके ऊपर अपार श्रद्धा शैशवसे ही थी। उन्होंने बतलाया, "एक बार मुझे हैजेका प्रकोप हुआ। बिहटा मिल चल रहा था। वहींपर सब कुटुम्बी और हितैषी मेरे इस दुर्दमनीय रोगसे आक्रान्त होनेके कारण घबराये हुए थे। हालत उत्तरोत्तर बिगड़ती जा रही थी। किन्तु मैं णमोकार मन्त्रका चिन्तन करता हुआ प्रसन्न था। मैंने अपने हितैषियोंसे आग्रह किया कि समय निकट मालूम पड़ रहा है; अतः सल्लेखना ग्रहण करा दीजिए। मैं स्वयं णमोकार-मन्त्रका चिन्तन और ध्यान करता रहूँगा। सिद्ध परमेष्ठीके ध्यानसे मुझे ऐसा लग रहा था, जैसे स्वयं ही मेरे कर्म गल रहे हैं और सिद्ध पर्यायके निकटमें पहुँच रहा हूँ। महामन्त्रके अचिन्त्य प्रभावसे रोगका प्रभाव कम हुआ और शनैः-शनैः मैं स्वास्थ्य लाभ करने लगा। पर इस मन्त्रपर मेरी श्रद्धा और अधिक बढ़ गयी। तबसे लेकर आज तक यह मन्त्र मेरा सम्बल बना हुआ है।"

पिछले दिनों जब आरामें आचार्य श्री १०८ महावीर कीर्तिजी महाराज पधारे तो उन्होंने इस महामन्त्रकी अमित महिमाका वर्णन कर लोगोंके हृदयमें श्रद्धाको दृढ किया। फलतः धर्मपत्नी स्व. श्रीमान् बाबू निर्मलकुमारजीने इस महामन्त्रका सवा लाख जाप किया। यों तो इस महामन्त्रका प्रचार सर्वत्र है, समाजका बच्चा-बच्चा इसे कण्ठस्थ किये हुए है; किन्तु इसके प्रति दृढ़ विश्वास और अटूट श्रद्धा कम ही व्यक्तियोंकी है। यदि सच्ची श्रद्धाके साथ इसका प्रयोग किया जाये तो सभी प्रकारके कठिन कार्य भी सुसाध्य हो सकते हैं। एक बारकी मैं अपनी निजी घटनाका भी उल्लेख कर देना आवश्यक समझता हूँ। घटना मेरे विद्यार्थी

जीवनकी है। मै उन दिनों वाराणीमें अध्ययन करता था। एक बार ग्रीष्मावकाश-में मुझे अपनी मौसीके गांव जाना पड़ा। वहाँ एक व्यक्तिको बिच्छूने डँस लिया। बिच्छू विषैला था, अतः उस व्यक्तिको भयंकर वेदना हुई। कई मान्त्रिकोने उँसे व्यक्तिके बिच्छूके विषको मन्त्र-द्वारा उतारा, पर्याप्त झाड-फूँक की गयी, पर वह विष उतरा नही। मेरे पास भी उस व्यक्तिको लाया गया और लोगोंने कहा— "आप काशीमे रहते हैं, अवश्य मन्त्र जानते होंगे, कृपया इस बिच्छूके विषको उतार दीजिए।" मैंने अपनी लाचारी अनेक प्रकारसे प्रकट की पर मेरे ज्योतिषी होनेके कारण लोगोंको मेरी अन्यविषयक अज्ञानतापर विश्वास नहीं हुआ और सभी लोग बिच्छूका विष उतार देनेके लिए सिर हो गये। मेरे मौसाजीने भी अधिकारके स्वरमे आदेश दिया। अब लाचार हो णमोकारमन्त्रका स्मरण कर मुझे ओझागिरी करनी पड़ी। नीमकी एक टहनी मँगवायी गयी और इक्कीस वार णमोकार मन्त्र पढ़कर बिच्छूको झाड़ा। मनमे अटूट विश्वास था कि विष अवश्य उतर जायेगा। आश्चर्यजनक चमत्कार यह हुआ कि इस महामन्त्रके प्रभावसे बिच्छूका विष बिलकुल उतर गया। व्यथा-पीड़ित व्यक्ति हँसने लगा और बोला—"आपने इतनी देरी झाडनेमे क्यों की। क्या मुझसे किसी जन्मका वैर था ? मान्त्रिकको मन्त्रको छिपाना नही चाहिए।" अन्य उपस्थित व्यक्ति भी प्रशंसाके स्वरमे विलम्ब करनेके कारण उलाहना देने लगे। मेरी प्रशंसाकी गन्ध सारे गाँवमे फैल गयी। भगवती भागीरथीसे प्रक्षालित वाराणसीका प्रभाव भी लोग स्मरण करने लगे। तथा तरह-तरहकी मनगढन्त कथाएँ कहकर कई महानु-भाव अपने ज्ञानकी गरिमा प्रकट करने लगे। मेरे दर्शनके लिए लोगोंकी भीड़ लग गयी तथा अनेक तरहके प्रश्न मुझसे पूछने लगे। मै भी णमोकार मन्त्रका आशातीत फल देखकर आश्चर्यान्वित था। यों तो जीवन-देहलीपर कदम रखते ही णमोकार मन्त्र कण्ठ कर लिया था, पर यह पहला दिन था, जिस दिन इस महामन्त्रका चमत्कार प्रत्यक्ष गोचर हुआ। अतः इस सत्यसे कोई भी आस्तिक व्यक्ति इनकार नहीं कर सकता है कि णमोकार मन्त्रमें अपूर्व प्रभाव है। इसी कारण कवि दौलतने कहा है :

"प्रातःकाल मन्त्र जपो णमोकार भाई।
अक्षर पैंतीस शुद्ध हृदयमें धराई॥

नर भव तेरो सुफल होत पातक टर जाई ।
विघन जासों दूर होत संकटमें सहाई ॥१॥
कल्पवृक्ष कामधेनु चिन्तामणि जाई ।
ऋद्धि सिद्धि पारस तेरो प्रकटाई ॥२॥
मन्त्र जन्त्र तन्त्र सब जाहीसे बनाई ।
सम्पति भण्डार भरे अक्षय निधि आई ॥३॥
तीन लोक माहिं, सार वेदनमें गाई ।
जगमे प्रसिद्ध धन्य मंगलीक भाई ॥४॥"

मन्त्र शब्द 'मन्' धातु (दिवादि ज्ञाने) से ष्ट्रन् (त्र) प्रत्यय लगाकर बनाया जाता है, इसका व्युत्पत्तिके अनुसार अर्थ होता है; **'मन्यते ज्ञायते आत्मादेशोऽनेन इति मन्त्रः'** अर्थात् जिसके द्वारा आत्माका आदेश – निजानुभव जाना जाये, वह मन्त्र है। दूसरी तरहसे तनादिगणीय मन् धातुसे (तनादि अवबोधे to Consider) ष्ट्रन प्रत्यय लगाकर मन्त्र शब्द बनता है, इसकी व्युत्पत्तिके अनुसार– **'मन्यते विचार्यते आत्मादेशो येन स मन्त्रः'** अर्थात् जिसके द्वारा आत्मादेशपर विचार किया जाये, वह मन्त्र है। तीसरे प्रकारसे सम्मानार्थक मन धातुसे 'ष्ट्रन' प्रत्यय करनेपर मन्त्र शब्द बनता है। इसका व्युत्पत्ति-अर्थ है–**"मन्यन्ते सत्क्रियन्ते परमपदे स्थिताः आत्मानः वा यक्षादिशासनदेवता अनेन इति मन्त्रः'** अर्थात् जिसके द्वारा परमपदमे स्थित पंच उच्च आत्माओंका अथवा यक्षादि शासन देवोंका सत्कार किया जाये, वह मन्त्र है। इन तीनों व्युत्पत्तियोके द्वारा मन्त्र शब्दका अर्थ अवगत किया जा सकता है। णमोकार मन्त्र–यह नमस्कार मन्त्र है, इसमें समस्त पाप, मल और दुष्कर्मोंको भस्म करनेकी शक्ति है। बात यह है कि णमोकार मन्त्रमे उच्चरित ध्वनियोसे आत्मामे धन और ऋणात्मक दोनो प्रकारकी विद्युत् शक्तियाँ उत्पन्न होती है, जिससे कर्मकलंक भस्म हो जाता है। यही कारण है कि तीर्थंकर भगवान् भी विरक्त होते समय सर्वप्रथम इसी महामन्त्रका उच्चारण करते है तथा वैराग्यभावकी वृद्धिके लिए आये हुए लौकान्तिक देव भी इसी महामन्त्रका उच्चारण करते है। यह अनादि मन्त्र है, प्रत्येक तीर्थंकरके कल्पकालमें इसका अस्तित्व रहता है। कालदोषसे लुप्त हो जानेपर अन्य लोगोंको तीर्थंकरकी दिव्यध्वनि-द्वारा यह अवगत हो जाता है।

इस अनुचिन्तनमें यह सिद्ध करनेका प्रयास किया गया है कि णमोकार मन्त्र ही समस्त द्वादशाग जिनवाणीका सार है, इसमें समस्त श्रुतज्ञानकी अक्षर संख्या निहित है। जैन दर्शनके तत्त्व, पदार्थ, द्रव्य, गुण, पर्याय, नय, निक्षेप, आस्रव, बन्ध आदि इस मन्त्रमें विद्यमान है। समस्त मन्त्रशास्त्रकी उत्पत्ति इसी महामन्त्रसे हुई है। समस्त मन्त्रोंकी मूलभूत मातृकाएँ इस महामन्त्रमें निम्नप्रकार वर्तमान है। मन्त्र पाठ :

"णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व-साहूणं ॥

विश्लेषण .

ण् + अ + म् + ओ + अ + र् + इ + ह् + अं + त् + आ + ण् + अं + ण् + अ + म् + ओ + स् + इ + द् + ध् + आ + ण् + अं + ण् + अ + म् + ओ + आ + इ + र् + इ + य् + आ + ण् + अं + ण् + अ + म् + ओ + उ + व् + अ + ज् + झ् + आ + य् + आ + ण् + अं + ण् + अ + म् + ओ + ल् + ओ + ए + स् + अ + व् + व् + अ + स् + आ + ह् + ऊ + ण् + अं।

इस विश्लेपणमे-से स्वरोंको पृथक् किया तो –

अं + ओ + अ + इ + अं + आ + अं + अ + ओ + इ + अ + अं + अ + ओ + आ + इ + इ + अ + अ + अ + ओ + उ + अ + आ + आ +
ए ई औ
अं + अ + ओ + ओ + ए + अ + अ + आ + ऊ + अं।
अः

पुनरुक्त स्वरोंको निकाल देनेके पश्चात् रेखांकित स्वरोंको ग्रहण किया तो –
अ आ इ ई उ ऊ [र्] ऋ ॠ [ल] ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः।

व्यंजन—

ण् + म् + र् + ह + त् + ण् + ण् + म् + स् + द् + ध् + ण् + ण् + म् + य् + ण् + ण् + म् + व् + ज् + झ् + य् + ण् + ण् + म् + ल् + स् + व् + व् +
०
स् + ह + ण्।
घ

पुनरुक्त व्यंजनोंके निकाल देनेके पश्चात् –

ण + म् + र् + ह् + ध् + स् + य् + र + ल् + व् + ज् + घ + ह् ।

ध्वनिसिद्धान्तके आधारपर वर्गाक्षर वर्गका प्रतिनिधित्व करता है। अतः घ् = कवर्ग, झ् = चवर्ग, ण् = टवर्ग, ध् = तवर्ग, म् = पवर्ग, य र ल व, स् = श ष स, ह् ।

अतः इस महामन्त्रको समस्त मातृका ध्वनियाँ निम्न प्रकार हुईं :

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः क् ख् ग् घ् ङ् च् छ् ज् झ् ञ् ट् ठ् ड् ढ् ण् त् थ् द् ध् न् प् फ् ब् भ् म् य् र् ल् व् श् ष् स् ह् ।

उपर्युक्त ध्वनियाँ ही मातृका कहलाती हैं। जयसेन प्रतिष्ठापाठमें बतलाया गया है :

"अकारादिक्षकारान्ता वर्णाः प्रोक्तास्तु मातृकाः ।
सृष्टिन्यास-स्थितिन्यास-संहृतिन्यासतस्त्रिधा ॥३७६॥"

– अकारसे लेकर क्षकार [क् + ष् + अ] पर्यन्त मातृकावर्ण कहलाते हैं। इनका तीन प्रकारका क्रम है – सृष्टिक्रम, स्थितिक्रम और संहारक्रम ।

णमोकार मन्त्रमें मातृका ध्वनियोंका तीनों प्रकारका क्रम सन्निविष्ट है। इसी कारण यह मन्त्र आत्मकल्याणके साथ लौकिक अभ्युदयोंको देनेवाला है। अष्टकर्मोंके विनाश करनेकी भूमिका इसी मन्त्रके द्वारा उत्पन्न की जा सकती है। संहारक्रम कर्मविनाशको प्रकट करता है तथा सृष्टिक्रम और स्थितिक्रम आत्मानुभूतिके साथ लौकिक अभ्युदयोंकी प्राप्तिमें भी सहायक हैं। इस मन्त्रकी एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि इसमें मातृका-ध्वनियोंका तीनों प्रकारका क्रम सन्निहित है, इसलिए इस मन्त्रसे मारण, मोहन और उच्चाटन तीनों प्रकारके मन्त्रोंकी उत्पत्तिहुई है। बीजाक्षरोंकी निष्पत्तिके सम्बन्धमें बताया गया है :

"हलो बीजानि चोक्तानि स्वराः शक्तय ईरिताः" ॥३७७॥[1]

–ककारसे लेकर हकार पर्यन्त व्यंजन बीजसंज्ञक हैं और अकारादि स्वर शक्तिरूप हैं। मन्त्रबीजोंकी निष्पत्ति बीज और शक्तिके संयोगसे होती है।

---

१. जयसेन प्रतिष्ठापाठ, श्लोक ३७७।

सारस्वत बीज, माया बीज, शुभनेश्वरी बीज, पृथिवी बीज, अग्निबीज, प्रणवबीज, मारुतबीज, जलबीज, आकाशबीज आदिकी उत्पत्ति उक्त हल् और अचोंके संयोगसे हुई है। यों तो बीजाक्षरोंका अर्थ बीजकोश एवं बीज व्याकरण-द्वारा ही ज्ञात किया जाता है, परन्तु यहाँपर सामान्य जानकारीके लिए ध्वनियोंकी शक्तिपर प्रकाश डालना आवश्यक है।

अ = अव्यय, व्यापक, आत्माके एकत्वका सूचक, शुद्ध-बुद्ध ज्ञानरूप, शक्ति-द्योतक, प्रणव बीजका जनक।

आ = अव्यय, शक्ति और बुद्धिका परिचायक, सारस्वतबीजका जनक, मायाबीजके साथ कीर्ति, धन और आशाका पूरक।

इ = गत्यर्थक, लक्ष्मी-प्राप्तिका साधक, कोमल कार्यसाधक, कठोर कर्मोंका बाधक, वह्निबीजका जनक।

ई = अमृतबीजका मूल, कार्यसाधक, अल्पशक्तिद्योतक, ज्ञानवर्द्धक, स्तम्भक, मोहक, जृम्भक।

उ = उच्चाटन बीजोंका मूल, अद्भुत शक्तिशाली, श्वासनलिका-द्वारा जोर-का धक्का देनेपर मारक।

ऊ = उच्चाटक और मोहक बीजोंका मूल, विशेष शक्तिका परिचायक, कार्यध्वंसके लिए शक्तिदायक।

ऋ = ऋद्धिबीज, सिद्धिदायक, शुभ कार्यसम्बन्धी बीजोंका मूल, कार्यसिद्धि-का सूचक।

लृ = सत्यका संचारक, वाणीका ध्वंसक, लक्ष्मीबीजकी उत्पत्तिका कारण, आत्मसिद्धिमें कारण।

ए = निश्चल, पूर्ण, गतिसूचक, अरिष्ट निवारण बीजोंका जनक, पोषक और संवर्द्धक।

ऐ = उदात्त, उच्चस्वरका प्रयोग करनेपर वशीकरणबीजोंका जनक, पोषक और संवर्द्धक। जलबीजकी उत्पत्तिका कारण, सिद्धिप्रद कार्योंका उत्पादकबीज, शासन देवताओंका आह्वान करनेमें सहायक, क्लिष्ट और कठोर कार्योंके लिए प्रयुक्त बीजोंका मूल, ऋण विद्युत्का उत्पादक।

ओ—अनुदात्त, निम्न स्वरको अवस्थामें माया बीजका उत्पादक, लक्ष्मी और

श्रीका पोषक, उदात्त, उच्च स्वरकी अवस्थामें कठोर कार्योंका उत्पादक बीज, कार्यसाधक, निर्जराका हेतु, रमणीय पदार्थोंकी प्राप्तिके लिए प्रयुक्त होनेवाले बीजोंमें अग्रणी, अनुस्वारान्त बीजोंका सहयोगी।

औं = मारण और उच्चाटनसम्बन्धी बीजोंमें प्रधान, शीघ्र कार्यसाधक, निरपेक्षी, अनेक बीजोका मूल।

अं = स्वतन्त्र शक्तिरहित, कर्माभावके लिए प्रयुक्त ध्यानमन्त्रोंमें प्रमुख, शून्य या अभावका सूचक, आकाश बीजोका जनक, अनेक मृदुल शक्तियोंका उद्घाटक, लक्ष्मी बीजोका मूल।

अः = शान्तिबीजोमें प्रधान, निरपेक्षावस्थामें कार्य असाधक, सहयोगीका अपेक्षक।

क = शक्तिबीज, प्रभावशाली, सुखोत्पादक, सन्तानप्राप्तिकी कामनाका पूरक, कामबीजका जनक।

ख = आकाशबीज, अभावकार्योंकी सिद्धिके लिए कल्पवृक्ष, उच्चाटन बीजोंका जनक।

ग = पृथक् करनेवाले कार्योंका साधक, प्रणव और माया बीजके साथ कार्य सहायक।

घ = स्तम्भक बीज, स्तम्भन कार्योंका साधक, विघ्नविघातक, मारण और मोहक बीजोका जनक।

ङ = शत्रुका विध्वंसक, स्वर मातृका बीजोके सहयोगानुसार फलोत्पादक, विध्वसक बीज जनक।

च = अंगहीन, खण्डशक्ति द्योतक, स्वरमातृकाबीजोंके अनुसार फलोत्पादक, उच्चाटन बीजका जनक।

छ = छाया सूचक, माया बीजका सहयोगी, बन्धनकारक, आपबीजका जनक, शक्तिका विध्वंसक, पर मृदु कार्योंका साधक।

ज = नूतन कार्योंका साधक, शक्तिका वर्द्धक, आधि-व्याधिका शामक, आकर्षक बीजोंका जनक।

झ = रेफयुक्त होनेपर कार्यसाधक, आधि-व्याधि विनाशक, शक्तिका संचारक, श्रीबीजोंका जनक।

ञ = स्तम्भक और मोहक बीजोंका जनक, कार्यसाधक, साधनका अवरोधक, माया बीजका जनक।

ट = वह्निबीज, आग्नेय कार्योका प्रसारक और निस्तारक, अग्नितत्त्व युक्त, विध्वंसक कार्योका साधक।

ठ = अशुभ सूचक बीजोंका जनक, क्लिष्ट और कठोर कार्योंका साधक, मृदुल कार्योंका विनाशक, रोदन-कर्ता, अशान्तिका जनक, सापेक्ष होनेपर द्विगुणित शक्तिका विकासक, वह्निबीज।

ड = शासन देवताओंकी शक्तिका प्रस्फोटक, निकृष्ट कार्योंकी सिद्धिके लिए अमोघ, संयोगसे पंचतत्त्वरूप बीजोका जनक, निकृष्ट आचार-विचार-द्वारा साफल्योत्पादक, अचेतन क्रिया साधन।

ढ = निश्चल, मायाबीजका जनक, मारण बीजोमें प्रधान, शान्तिका विरोधी, शक्तिवर्धक।

ण = शान्ति सूचक, आकाश बोजोमे प्रधान, ध्वंसक बीजोंका जनक, शक्तिका स्फोटक।

त = आकर्षकबीज, शक्तिका आविष्कारक, कार्यसाधक, सारस्वतबीजके साथ सर्वसिद्धिदायक।

थ = मंगलसाधक, लक्ष्मीबीजका सहयोगी, स्वरमातृकाओके साथ मिलनेपर मोहक।

द = कर्मनाशके लिए प्रधान बीज, आत्मशक्तिका प्रस्फोटक, वशीकरण बीजोका जनक।

ध = श्री और क्ली बीजोंका सहायक, सहयोगीके समान फलदाता, माया बीजोका जनक।

न = आत्मसिद्धिका सूचक, जलतत्त्वका स्रष्टा, मृदुतर कार्योका साधक, हितैषी, आत्मनियन्ता।

प = परमात्माका दर्शक, जलतत्त्वके प्राधान्यसे युक्त, समस्त कार्योंकी सिद्धिके लिए ग्राह्य।

फ = वायु और जलतत्त्व युक्त, महत्त्वपूर्ण कार्योकी सिद्धिके लिए ग्राह्य,

स्वर और रेफ युक्त होनेपर विध्वंसक, विघ्नविघातक, 'फट्' की ध्वनिसे युक्त होनेपर उच्चाटक, कठोरकार्यसाधक।

ब = अनुस्वार युक्त होनेपर समस्त प्रकारके विघ्नोंका विघातक और निरोधक, सिद्धिका सूचक।

भ = साधक, विशेषतः मारण और उच्चाटनके लिए उपयोगी, सात्त्विक कार्योंका निरोधक, परिणत कार्योंका तत्काल साधक, साधनामें नाना प्रकारसे विघ्नोत्पादक, कल्याणसे दूर, कटु मधु वर्णोंसे मिश्रित होनेपर अनेक प्रकारके कार्योंका साधक, लक्ष्मी बीजोंका विरोधी।

म = सिद्धिदायक, लौकिक और पारलौकिक सिद्धियोंका प्रदाता, सन्तानकी प्राप्तिमें सहायक।

य = शान्तिका साधक, सात्त्विक साधनाकी सिद्धिका कारण, महत्त्वपूर्ण कार्योंकी सिद्धिके लिए उपयोगी, मित्रप्राप्ति या किसी अभीष्ट वस्तुकी प्राप्तिके लिए अत्यन्त उपयोगी, ध्यानका साधक।

र = अग्निबीज, कार्यसाधक, समस्त प्रधान बीजोंका जनक, शक्तिका प्रस्फोटक और वर्द्धक।

ल = लक्ष्मीप्राप्तिमें सहायक, श्रीबीजका निकटतम सहयोगी और सगोत्री, कल्याणसूचक।

व = सिद्धिदायक, आकर्षक, ह्, र्, और अनुस्वारके संयोगसे चमत्कारोंका उत्पादक, सारस्वतबीज, भूत-पिशाच-शाकिनी-डाकिनी आदिकी बाधाका विनाशक, रोगहर्ता, लौकिक कामनाओंकी पूर्तिके लिए अनुस्वार मातृकाका सहयोगापेक्षी, मंगलसाधक, विपत्तियोंका रोधक और स्तम्भक।

श = निरर्थक, सामान्यबीजोंका जनक या हेतु, उपेक्षाधर्मयुक्त, शान्तिका पोषक।

ष = आह्वानबीजोंका जनक, सिद्धिदायक, अग्निस्तम्भक, जलस्तम्भक, सापेक्ष-ध्वनि ग्राहक, सहयोग या संयोग-द्वारा विलक्षण कार्यसाधक, आत्मोन्नतिसे शून्य, रुद्रबीजोंका जनक, भयंकर और वीभत्स कार्योंके लिए प्रयुक्त होनेपर कार्यसाधक।

स = सर्व समीहित साधक, सभी प्रकारके बीजोंमें प्रयोग योग्य, शान्तिके लिए परम आवश्यक, पौष्टिक कार्योंके लिए परम उपयोगी, ज्ञानावरणीय-दर्शना-

वरणीय आदि कर्मोका विनाशक, क्लीबीजका सहयोगी, कामबीजका उत्पादक, आत्मसूचक और दर्शक।

ह = शान्ति, पौष्टिक और मांगलिक कार्योका उत्पादक, साधनाके लिए परमोपयोगी, स्वतन्त्र और सहयोगापेक्षी, लक्ष्मीकी उत्पत्तिमें साधक, सन्तान प्राप्तिके लिए अनुस्वार युक्त होनेपर जाप्यमे सहायक, आकाशतत्त्व युक्त, कर्म-नाशक, सभी प्रकारके बीजोका जनक।

उपर्युक्त ध्वनियोंके विश्लेषणसे स्पष्ट है कि मातृका मन्त्र ध्वनियोके स्वर और व्यंजनोंके संयोगसे ही समस्त बीजाक्षरोकी उत्पत्ति हुई है तथा इन मातृका ध्वनियोकी शक्ति ही मन्त्रोमे आती है। णमोकार मन्त्रसे ही मातृका ध्वनियाँ निःसृत है। अतः समस्त मन्त्रशास्त्र इसी महामन्त्रसे प्रादुर्भूत है। इस विषयपर अनुचिन्तनमे विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। यत. यह युग विचार और तर्कका है; मात्र भावनामे किसी भी बात की सिद्धि नही मानी जा सकती है। भावनाका प्रादुर्भाव भी तर्क और विचार-द्वारा श्रद्धा उत्पन्न होनेपर होता है। अतः णमोकार महामन्त्र पर श्रद्धा उत्पन्न करनेके लिए उक्त विचार आवश्यक है।

दार्शनिक दृष्टिसे इस मन्त्रकी गौरव-गरिमाका विवेचन भी अनुचिन्तनमें किया जा चुका है। चिन्तनकी अपनी दिशा है, वह कहाँ तक सही है, यह तो विचारशील पाठक ही अवगत कर सकेंगे। इस अनुचिन्तनके लिखनेमे कई प्राचीन और नवीन आचार्योंकी रचनाओंका मैने उपयोग किया है, अतः मै उन सभी आचार्यों और लेखकोंका आभारी हूँ। श्री जैनसिद्धान्तभवन आराके विशाल ग्रन्थागारका उपयोग भी बिना किसी प्रकारकी रुकावट और बाधाके किया है, अतः उस पावन संस्थाके प्रति आभार प्रकट करना भी मै अपना कर्तव्य समझता हूँ। इसे प्रकाशमे लानेका श्रेय भारतीय ज्ञानपीठ काशीके मन्त्री श्री अयोध्या-प्रसादजी गोयलीयको है, मैं आपका भी हृदयसे कृतज्ञ हूँ। प्रूफ संशोधक श्री महादेव चतुर्वेदीजीको भी धन्यवाद है।

मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा
वि० सं० २०१३ }

—*नेमिचन्द्र शास्त्री*

द्वितीय संस्करणकी प्रस्तावना

णमोकार मन्त्रका अचिन्त्य और अद्भुत प्रभाव है। इस मन्त्रकी साधना-द्वारा सभी प्रकारकी ऋद्धि-सिद्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। यह मन्त्र आत्मिक शक्तिका विकास करता है। परन्तु इसकी साधनाके लिए श्रद्धा या दृढ़ विश्वासका होना परम आवश्यक है। आज-कलके वैज्ञानिक भी इस बातको स्वीकार करते है कि बिना आस्तिक्य भावके किसी लौकिक कार्यमें भी सफलता प्राप्त करना सम्भव नही है। अमेरिकन डॉक्टर होवार्ड रस्क (Howard Rusk) ने बताया है कि रोगी तबतक स्वास्थ्य लाभ नहीं कर सकता है, जबतक वह अपने आराध्यमें विश्वास नही करता है। आस्तिकता ही समस्त रोगोंको दूर करनेवाली है। जब रोगीको चारों ओरसे निराशा घेर लेती है, उस समय आराध्यके प्रति की गयी प्रार्थना प्रकाशका कार्य करती है। प्रार्थनाका फल अचिन्त्य होता है। दृढ़ आत्म-विश्वास एवं आराध्यके प्रति की गयी प्रार्थना सभी प्रकार मंगलोंको देती है। हृदयके कोनेसे सशक्त भावोंमें निकली हुई अन्तरध्वनि बड़ेसे बड़ा कार्य सिद्ध करनेमें सफल होती है।[१]

अमेरिकाके जज हेरोल्ड मेडिना (Harold-Medina) का अभिमत है कि आत्मशक्तिका विकास तभी होता है, जब मनुष्य यह अनुभव करता है कि मानवकी शक्तिसे परे भी कोई वस्तु है। अतः श्रद्धापूर्वक की गयी प्रार्थना बहुत चमत्कार उत्पन्न करती है। प्रार्थनामें एक विचित्र प्रकारकी शक्ति देखी जाती है। जीवन-शोधनके लिए आराध्यके प्रति की गयी विनीत प्रार्थना बहुत फलदायक होती है।

डॉ. एलफ्रेड टोरी भूतपूर्व मेडिकल डायरेक्टर नेशनल एसोसियेशन फॉर मेण्टल होस्पिटल ऑफ अमेरिकाका अभिमत है कि सभी बीमारियाँ शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक क्रियाओंसे सम्बद्ध हैं, अतः जीवनमें जबतक धार्मिक

१. Reader's Digest, February 1960.

प्रवृत्तिका उदय नही होगा, रोगीका स्वास्थ्य लाभ करना कठिन है। प्रार्थना उक्त प्रवृत्तिको उत्पन्न करती है। आराध्यके प्रति की गयी भक्तिमे बहुत बडा आत्मसम्बल है। अदृश्य बातोकी रहस्यपूर्ण शक्तिका पता लगाना मानवको अभी नही आता है। जितने भी मानसिक रोगी देखे जाते है, अन्तरतमकी किसी अज्ञात वेदनासे पीड़ित है। इस वेदनाका प्रतिकार आस्तिक्य भाव ही है। उच्च या पवित्र आत्माओंकी आराधना जादूका कार्य करती है।[1]

णमोकार मन्त्रकी निष्काम साधनासे लौकिक और पारलौकिक सभी प्रकारके कार्य सिद्ध हो जाते है। पर इस सम्बन्धमें एक बात आवश्यक यह है कि जाप करनेवाला साधक, जाप करनेकी विधि, जाप करनेके स्थानकी भिन्नतासे फलमे भिन्नता हो जाती है। यदि जाप करनेवाला सदाचारी, शुद्धात्मा, सत्यवक्ता, अहिंसक एवं ईमानदार है, तो उसको इस मन्त्रकी अराधनाका फल तत्काल मिलता है। जाप करनेकी विधिपर भी फलकी हीनाधिकता निर्भर करती है। जिस प्रकार अच्छी औषध भी उपयुक्त अनुपान विधिके अभावमें फलप्रद नही होती अथवा अल्प फल देती है, उसी प्रकार यह मन्त्र भी दृढ आस्थापूर्वक निष्काम भावसे उपयुक्त विधिसहित जाप करनेसे पूर्णफल प्रदान करता है। स्थानकी शुद्धता भी अपेक्षित है। समय और स्थान भी कार्यसिद्धमें निमित्त हैं। कुसमय या अशुद्ध स्थानपर किया गया कार्य अभीष्ट फलदायक नही होता है। अतः इस मन्त्रका जाप मन, वचन और कायकी शुद्धिपूर्वक विधिसहित करना चाहिए। यों तो जिस प्रकार मिश्रीकी डली कोई भी व्यक्ति किसी भी अवस्थामे खाये, उसका मुँह मीठा ही होगा। इसी तरह इस मन्त्रका जाप कोई भी व्यक्ति किसी भी स्थितिमें करे, उसे आत्मशुद्धिकी प्राप्ति होगी।

इस मन्त्रकी प्रमुख विशेषता यह है कि इसमे सभी मातृकाध्वनियाँ विद्यमान है। अतः समस्त बीजाक्षरोंवाला यह मन्त्र, जिसमे मूल ध्वनिरूप बीजाक्षरोंका संयोजन भी शक्तिके क्रमानुसार किया गया है, सर्वाधिक शक्तिशाली है। इस मन्त्रका किसी भी अवस्थामे आस्था और लगनके साथ चिन्तन करनेसे फलकी प्राप्ति होती है।

---

१. Reader's Digest, February 1958.

मेरे पास जो जन्मपत्री दिखाने आते हैं, मैं ग्रह-शान्तिके लिए उन्हें प्रायः णमोकार मन्त्रका जाप करनेको कहता हूँ। प्राप्त विवरणोंके आधारपर मैं यह जोरदार शब्दोंमें कह सकता हूँ कि जिसने भी भक्तिभावपूर्वक इस मन्त्रकी आराधना की है, उसे अवश्य फल प्राप्त हुआ है। कितने ही बेकार व्यक्ति इस मन्त्रके जापसे अच्छा कार्य प्राप्त कर चुके हैं। असाध्य रोगोंको दूर करनेका उपाय यह मन्त्र ही है। प्रतिदिन प्रातःकाल पद्मासन या वज्रासन लगाकर इस मन्त्रका जाप करनेसे अद्भुत सिद्धियाँ प्राप्त होती है।

यद्यपि इस मन्त्रका यथार्थ लक्ष्य निर्वाण-प्राप्ति है, तो भी लौकिक दृष्टिसे यह समस्त कामनाओंको पूर्ण करता है। अतः प्रत्येक व्यक्तिको प्रतिदिन णमोकार मन्त्रका जाप करना चाहिए। बताया गया है :

> "ननु उवसग्गे पीड़ा, कूरग्गह-दंसणं भओ संका।
> जइ वि न हवंति एए, तह वि सगुज्झं भणिज्जासु ॥३२॥"
>
> —नवकार-सार-थवणं

—उपसर्ग, पीड़ा, क्रूरग्रह दर्शन, भय, शंका आदि यदि न भी हों तो भी शुभ ध्यानपूर्वक णमोकार मन्त्रका जाप या पाठ करनेसे परम शान्ति प्राप्त होती है। यह सभी प्रकारके सुखोंको देनेवाला है।

अतः संक्षेपमें इतना ही कहा जा सकता है कि यह मन्त्र आत्मकल्याणके साथ सभी प्रकारके अरिष्टोंको दूर करता है, और सभी सिद्धियोंको प्रदान करता है। यह कल्पवृक्ष है, जो जिस प्रकारकी भावना रखकर इसकी साधना करता है, उसे उसी प्रकारका फल प्राप्त हो जाता है। पर श्रद्धा और विश्वासका रहना परम आवश्यक है।

'मंगलमन्त्र णमोकार : एक अनुचिन्तन' का द्वितीय संस्करण पाठकोंके हाथमें समर्पित करते हुए हमें परम प्रसन्नता हो रही है। इस संशोधित और परिवर्द्धित संस्करणमें पूर्व संस्करणकी अपेक्षा कई नवीनताएँ दृष्टिगोचर होंगी। इस संस्करणमें तीन परिशिष्ट भी दिये जा रहे हैं। प्रथम परिशिष्टमें बीस करणसूत्र दिये गये हैं। इस णमोकार मन्त्रके अक्षर, स्वर, व्यंजन, मात्रा, सामान्य पद और विशेष पदकी संख्या-द्वारा गणित क्रिया करनेसे सभी पारि-

भाषिक जैन संख्याएँ निकल आती हैं। हमारा तो यह विश्वास है कि ग्यारह अंग और चौदह पूर्वकी पदसंख्या तथा अक्षर संख्याका आनयन भी इस णमोकारमन्त्र-के गणितके आधारपर किया जा सकता है।

द्वितीय परिशिष्टमें पारिभाषिक शब्दकोष दिया गया है। इसमे धार्मिक शब्दोंके अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक शब्दोंकी परिभाषाएँ अंकित की गयी हैं। तृतीय परिशिष्टमें पंचपरमेष्ठी नमस्कार स्तोत्र दिया गया है। इस स्तोत्रमे पंचपरमेष्ठी चक्र भी आया है। इस स्तोत्रके नित्य-प्रति पाठ करनेसे सभी प्रकारकी मनो-कामनाएँ पूर्ण होती हैं तथा सभी प्रकारकी बाधाएँ दूर होकर शान्तिलाभ होता है। इस स्तोत्रका अचिन्त्य प्रभाव बतलाया गया है। अतः पाठकोंके लाभार्थ इसे भी दिया गया है। मैं ज्ञानपीठके अधिकारियोंका आभारी हूँ जिन्होंने संशोधन और परिवर्द्धन करनेकी स्वीकृति प्रदान की।

ह. दा. जैन कालेज, आरा
१ जून, १९६०

—नेमिचन्द्र शास्त्री

"णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥'

संसारावस्थामें सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा बद्ध है, इसी कारण इसके ज्ञान और सुख पराधीन है। राग, द्वेष, मोह और कषाय ही इसकी पराधीनताके कारण है; इन्हें आत्माके विकार कहा गया है। विकार-ग्रस्त आत्मा सर्वदा अशान्त रहती है, कभी भी निराकुल नही हो सकती। इन विकारोंके कारण ही व्यक्तिके सुखका केन्द्र बदलता रहता है, कभी व्यक्ति ऐन्द्रियिक विषयोंके प्रति आकृष्ट होता है तो कभी विकृष्ट। कभी इसे कंचन सुखदायी प्रतीत होता है, तो कभी कामिनी।

विकार और तज्जन्य अशान्ति

राग और द्वेषकी भावनाओंके संश्लेषणके कारण ही मानवहृदयमें अगणित भावोंकी उत्पत्ति होती है। आश्रय और आलम्बनके भेदसे ये दोनों भाव नाना प्रकारके विकारोंके रूपमे परिवर्तित हो जाते हैं। जीवनके व्यवहारक्षेत्रमे व्यक्तिकी विशिष्टता, समानता एवं हीनताके अनुसार इन दोनों भावोंमें मौलिक परिवर्तन होता है। साधु या गुणवान्के प्रति राग सम्मान हो जाता है, समानके प्रति प्रेम तथा पीड़ितके प्रति करुणा। इस प्रकार द्वेष-भाव भी दुर्दान्तके प्रति भय, समानके प्रति क्रोध एवं दीनके प्रति दर्दका रूप धारण कर लेता है।

मनुष्य रागभावके कारण ही अपनी अभीष्ट इच्छाओंकी पूर्ति न होनेपर क्रोध करता है, अपनेको उच्च और बडा समझकर दूसरोंका तिरस्कार करता है, दूसरोंकी धन-सम्पदा एवं ऐश्वर्य देखकर ईर्ष्याभाव उत्पन्न करता है, सुन्दर रमणियोंके अवलोकनसे उनके हृदयमे कामतृष्णा जागृत हो उठती है। नाना प्रकारके सुन्दर वस्त्राभूषण, अलंकार और पुष्पमालाओं आदिसे अपनेको सजाता है, शरीरको सुन्दर बनानेकी चेष्टा करता है, तैलमर्दन, उबटन, साबुन आदि विभिन्न प्रकारके पदार्थों-द्वारा अपने शरीरको स्वच्छ करता है। इस प्रकार अहर्निश राग-द्वेषकी अनात्मिक वैभाविक भावनाओके कारण मानव अशान्तिका अनुभव करता रहता है।

जिस प्रकार रोगकी अवस्था और उसके निदानके मालूम हो जानेपर रोगी रोगसे निवृत्ति प्राप्त करनेका प्रयत्न करता है, उसी प्रकार साधक संसाररूपी रोगका निदान और उसकी अवस्थाको जानकर उससे छूटनेका प्रयत्न करता है। सांसारिक दुःखोंका मूल कारण प्रगाढ़ राग-द्वेष है, जिन्हें शास्त्रीय परिभाषामें मिथ्यात्व कहा जा सकता है। आत्माके अस्तित्व और स्वरूपमें विश्वास न कर अतत्त्वरूप – राग-द्वेषरूप श्रद्धा करनेसे मनुष्यको स्वपरका विवेक नहीं रहता है, जड़ शरीरको आत्मा समझ लेता है तथा स्त्री, पुत्र, धन, धान्य, ऐश्वर्यमें रागके कारण लिप्त हो जाता है, इन्हें अपना समझकर इनके सद्भाव और अभावमें हर्ष-विषाद उत्पन्न करता है। आत्माके स्वाभाविक सुखको भूलकर संसारके पदार्थो-द्वारा सुख प्राप्त करनेकी चेष्टा करता है। शरीरसे भिन्न ज्ञानोपयोग, दर्शनोपयोगमय अखण्ड अविनाशी जरा-मरणरहित समस्त पदार्थोके ज्ञाता-द्रष्टा आत्माको विषय-कषाययुक्त शरीरमल समझने लगता है। मिथ्यात्वके कारण मनुष्यकी बुद्धि भ्रममय रहती है। अतः इन्द्रियोंको प्रिय लगनेवाले पुद्‌गल पदार्थोंके निमित्तसे उत्पन्न सुखको जो कि परपदार्थके संयोगकाल तक – क्षण-भर पर्यन्त रहनेवाला होता है, वास्तविक समझता है। मिथ्यात्वके कारण यह जीव शरीरके जन्मको अपना जन्म और शरीरके नाशको अपना मरण मानता है। राग-द्वेषादि जो स्पष्टरूपसे दुःख देनेवाले हैं, उनका ही सेवन करता हुआ मिथ्या-दृष्टि आनन्दका अनुभव करता है। अपने शुद्ध स्वरूपको भूलकर शुभ कर्मोके बन्धके फलकी प्राप्तिमें हर्ष और अशुभ कर्मोंके बन्धकी फल-प्राप्तिके समय दुःख मानता है। आत्माके हितके कारण जो वैराग्य और ज्ञान है, उन्हें मिथ्यादृष्टि कष्टदायक मानता है। आत्म-शक्तिको भूलकर दिन-रात विषयेच्छाकी पूर्तिमें सुखानुभव करना तथा इच्छाओंको बढ़ाते जाना मिथ्यात्वका ही फल है। इससे स्पष्ट है कि समस्त दुःखोंका कारण मिथ्यादर्शन है।

मिथ्यादर्शनके सद्भाव – आत्मविश्वासके अभाव – में ज्ञान भी मिथ्या ही रहता है। मिथ्यात्व-रूपी मोहनिद्रासे अभिभूत होनेके कारण ज्ञान वस्तु-तत्त्वकी यथार्थता तक पहुँच नहीं पाता। अतः मिथ्यादृष्टिका ज्ञान आत्मकल्याण से सदा दूर रहता है। ज्ञानके मिथ्या रहनेसे चारित्र भी मिथ्या होता है। यतः कषाय और असंयमके कारण संसारमें परिभ्रमण करनेवाला आचरण ही व्यक्ति करता

है, जो मिथ्या चारित्रकी कोटिमें परिगणित है। मोहनिद्रासे अभिभूत होनेके कारण विषय ग्रहण करनेकी इच्छा उत्पन्न होती है, इच्छाएँ अनन्त हैं। इनकी तृप्ति न होनेसे जीवको अशान्ति होती है। मोहाभिभूत होनेके कारण इच्छा-तृप्तिको ही मिथ्यादृष्टि सुख समझता है, पर वास्तवमें इच्छाएँ कभी तृप्त नहीं होती। एक इच्छा तृप्त होती है, दूसरी उत्पन्न हो जाती है, दूसरीके तृप्त होनेपर तीसरी उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार मोहके निमित्तसे पंचेन्द्रिय-सम्बन्धी इच्छाएँ निरन्तर उत्पन्न होती रहती है, जिससे मनुष्यको आकुलता सदा बनी रहती है।

चारित्र-मोहके उदयसे क्रोधादि कषाय रूप अथवा हास्यादि नोकषाय रूप जीवके भाव होते हैं, जिससे दुष्कृत्योंमे प्रवृत्ति होती है। क्रोध उत्पन्न होनेपर अपनी और परकी शान्ति भंग होती है; मान उत्पन्न होनेपर अपनेको उच्च और परको नीच समझता है, माया उत्पन्न होनेपर अपने तथा परको धोखा देता है एवं लोभके उत्पन्न होनेपर अपने तथा परको लुब्धक बनाता है। अतएव संक्षेपमें मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र आत्माके विकार हैं, ये आत्माके स्वभाव नहीं विभाव हैं। उक्त मिथ्यात्वकी उत्पत्तिका कारण राग और द्वेष ही है। इन्ही विभावोंके कारण आत्मा स्वभाव धर्म से च्युत है, जिससे क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग और ब्रह्मचर्य रूप अथवा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र रूप आत्माकी प्रवृत्ति नहीं हो रही है। संसारका प्रत्येक प्राणी विकारों के अधीन होनेके कारण ही व्याकुल है, एक क्षणको भी शान्ति नहीं है। आशा, तृष्णा सतत बेचैन किये रहती हैं।

मंगल-वाक्योंकी आवश्यकता

विचारक महापुरुषों ने विषय-कषायजन्य अशान्ति और बेचैनीको दूर करनेके लिए अनेक प्रकारके विधानोंका प्रतिपादन किया है। नाना प्रकारके मंगल-वाक्यों की प्रतिष्ठा की है तथा जीवनके शान्ति और सुख प्राप्त करनेके लिए ज्ञान, भक्ति, कर्म और योग आदि मार्गोंका निरूपण किया है। कुछ ऐसे सूत्र, वाक्य, गाथा और श्लोकमें भी बतलाये गये हैं, जिनके स्मरण, मनन, चिन्तन और उच्चारणसे शान्ति मिलती है। मन पवित्र होता है, आत्मस्वरूपका श्रद्धान होता है तथा विषय-कषायोंकी आसक्तिको व्यक्ति छोड़नेके लिए बाध्य हो जाता है। विकारोंपर विजय प्राप्त करनेमें ये मंगलवाक्य दृढ़ आलम्बन बन जाते हैं तथा आत्मकल्याणको

भावनाका परिस्फुरण होता है। विश्वके सभी मत-प्रवर्तकोंने विकारोंको जीतने एवं साधनाके मार्गमें अग्रसर होनेके लिए अपनी-अपनी मान्यतानुसार कुछ मंगल-वाक्योंका प्रणयन किया है। अन्य मतप्रवर्तकों-द्वारा प्रतिपादित मंगलवाक्य कहाँ-तक जीवनमें प्रकाश प्रदान कर सकते हैं, यह विचार करना प्रस्तुत रचनाका ध्येय नहीं है। यहाँ केवल यही बतलानेका प्रयत्न किया जायेगा कि जैनाम्नायमें प्रचलित मंगलवाक्य णमोकार मन्त्र किस प्रकार जीवनमें शान्ति प्रदान कर सकता है तथा दार्शनिक, मान्त्रिक एवं लौकिक कल्याण-प्राप्तिकी दृष्टिसे उक्त वाक्यका क्या महत्त्व है, जिससे विकारोंको शमन करनेमें सहायता मिल सके। आत्म-कल्याणका मूल साधन सम्यग्दर्शन भी उक्त मंगलवाक्यके स्मरणसे किस प्रकार उत्पन्न हो सकता है, द्वादशांग जिनवाणीका परिज्ञान उक्त वाक्य-द्वारा किस प्रकार किया जा सकता है तथा जीवनकी आशा-तृष्णाजन्य अशान्ति किस प्रकार दूर हो जाती है आदि बातोंपर विचार किया जायेगा।

अशान्तिको दूर करनेका अमोघ साधन— णमोकार-मन्त्र

साधकको सर्वप्रथम अपनी छान-बीनकर अपने सच्चिदानन्दस्वरूपका निश्चय करना अत्यावश्यक है। आत्मस्वरूपके निश्चय करनेपर भी जबतक अनुकरणीय आदर्श निश्चित नहीं, तबतक अपने स्वरूपको प्राप्त करनेका मार्ग अन्वेषण करना असम्भव है। आदर्श शुद्ध सच्चिदानन्दरूप आत्मा ही हो सकता है। कोई भी विकारग्रस्त प्राणी विकाररहित आदर्शको सामने पाकर अपने भीतर उत्साह, दृढसंकल्प और स्फूर्ति उत्पन्न कर सकता है। चिदानन्द शान्तमुद्रा-का चित्र अपने हृदयमें स्थापित करनेसे विकारोंका शमन होता है। वीतरागी, शान्त, अलौकिक, दिव्यज्ञानधारी, अनुपम दिव्य आनन्द और अनन्त सामर्थ्यवान् आत्माओका आदर्श सामने रखनेसे मिथ्याबुद्धि दूर हो जाती है, दृष्टिकोणमें परि-वर्तन हो जाता है, राग-द्वेषकी भावनाएँ निकल जाती है और आध्यात्मिक विकास होने लगता है। णमोकार मन्त्र ऐसा मंगलवाक्य है, जिसमें द्वादशांग वाणी का सारभूत दिव्यात्मा पंचपरमेष्ठीका पावन नाम निरूपित है। इस नामके श्रवण, मनन, चिन्तन और स्मरणसे कोई भी व्यक्ति अपने राग-द्वेषरूप विकारोंको सहजमें पृथक् कर सकता है। विकारोंका परिष्कार करनेके लिए पंचपरमेष्ठीके आदर्शसे उत्तम अन्य कोई आदर्श नहीं हो सकता।

साधारण व्यक्तिका भी इधर-उधर वासनाओके लिए भटकनेवाला मन इस मन्त्रके उच्चारण और चिन्तन-द्वारा स्वास्थ्य लाभ कर सकता है। इस मन्त्रमे प्रतिपादित भावना प्रारम्भिक साधक से लेकर उच्चश्रेणीके साधक तकको शान्ति और श्रेयोमार्ग प्रदान करनेवाली है। भारतीय दार्शनिकोंका ही नहीं, विश्वके सभी दार्शनिकोका मत है कि जबतक व्यक्ति मे आस्तिक्य भाव नही, विशेष मंगलवाक्योके प्रति श्रद्धा नही; तबतक उसका मन स्थिर नही हो सकता है। आस्तिक व्यक्ति अपने आराध्य महापुरुष की आराधना कर शान्ति लाभ करता है। दृढ आस्था रखकर निर्दोष आत्माओका आदर्श सामने रखना तथा उन वीतरागी आत्माओके समान अपनेको बनानेका प्रयत्न करना प्रत्येक मनुष्यका परम कर्तव्य है। जो शान्ति चाहता है, राग-द्वेषसे छुटकारा प्राप्त करना चाहता है एव अपने हृदयको शुद्ध, सबल और सरस बनाना चाहता है, उसे अपने सामने कोई आदर्श अवश्य रखना होगा तथा इस आदर्शको प्रतिपादित करनेवाले किसी मंगलवाक्यका मनन भी करना पड़ेगा। यहाँ आदर्श रखने का यह अर्थ कदापि नही है कि अपनेको हीन तथा आदर्शको उच्च समझकर दास्य-दासक भाव स्थापित किया जाये अथवा अन्य किसी रागात्मक सम्बन्ध की स्थापना कर अपनेको रागी-द्वेषी बनाया जाये, बल्कि तात्पर्य यह है कि शुद्ध और उच्च आदर्शको स्थापित कर अपनेको भी उन्हींके समान बनाया जाये। राग-द्वेष, काम-क्रोध आदि दुर्बलताओंपर मंगलवाक्यमे वर्णित शुद्ध आत्माओंके समान विजय प्राप्त की जाये। आत्मोन्नतिके लिए आवश्यक है आराधना योग्य परमशान्त, सौम्य, भव्य और वीतरागी आत्माओका चिन्तन एवं मनन करना तथा इन आत्माओके नाम और गुणोंको बतलानेवाले वाक्योका स्मरण, पठन एवं चिन्तन करना। संसारके विकारोंसे ग्रस्त व्यक्ति आदर्श आत्माओंके गुणोंके स्तवन, चिन्तन और मनन-द्वारा अपने जीवनपर विचार करता है। जिस प्रकार उन शुद्ध और निर्मल आत्माओने राग, द्वेष आदि प्रवृत्तियोंपर विजय प्राप्त कर ली है तथा नवीन कर्मोंके आस्रवको अवरुद्ध कर संचित कर्मोंका क्षय—विनाश कर शुद्ध स्वरूपको प्राप्त कर लिया है, उसी प्रकार आदर्श शुद्ध आत्माओंके स्मरण, ध्यान और मननसे साधक भी निर्मल बन सकता है।

णमोकार-मन्त्रमे प्रतिपादित आत्माओंकी शरण जानेसे तात्पर्य उन्हीके समान शुद्ध स्वरूपकी प्राप्तिसे है। साधक किसी आलम्बनको पाकर ऊँचा चढ़ जाना—

साधनाकी उन्नत अवस्थाको प्राप्त कर लेना चाहता है। यह आलम्बन कमजोर नहीं है, बल्कि विश्वकी समस्त आत्माओंसे उन्नत – परमात्मारूप है। इनके निकट पहुँचकर साधक उसी प्रकार शुद्ध हो जाता है, जिस प्रकार पारसमणिका संयोग पाकर लोहा स्वर्ण बन जाता है। लोहेको स्वर्ण बननेके लिए कुछ विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता, बल्कि पारसमणिका सान्निध्य प्राप्त कर लेनेमात्रसे ही उसके लौह-परमाणु स्वर्ण-परमाणुओंमें परिवर्तित हो जाते है। अथवा जिस प्रकार दीपकको प्रज्वलित करनेके लिए अन्य जलते हुए दीपकोंके पास रख देनेके पश्चात् नहीं जलनेवाले दीपककी बत्ती जलते हुए दीपककी लौसे लगा देने मात्रसे वह नहीं जलनेवाला दीपक प्रज्वलित हो उठता है, उसी प्रकार संसारी विषयकषाय संलग्न आत्मा उत्कृष्ट मंगलवाक्यमे निरूपित आत्माओं, जो कि सामान्य – संग्रह नयकी अपेक्षा एक परमात्मारूप है, का सान्निध्य – शरण भाव प्राप्त कर तत्तुल्य बन जाता है। अतएव मानव जीवनके उत्थानमे मंगलसूत्रोंका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

आत्माके भेद और मंगल-वाक्य

जैन आगममें भावोंकी अपेक्षासे आत्माके तीन भेद बताये गये हैं – बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। राग-द्वेषको अपना स्वरूप समझना, पर पर्यायमें लीन शरीरादि पर-वस्तुओंको अपना मानना एवं वीतराग निर्विकल्प समाधिसे उत्पन्न हुए परमानन्द सुखामृतसे वंचित रहना आत्माकी बहिरात्म अवस्था है। बताया गया है – **"देह जीवको एक गिनै बहिरातमतत्त्व मुधा है।"** अर्थात् शरीर और आत्माको एक समझना; अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभसे युक्त होना और मिथ्याबुद्धिके कारण शारीरिक सम्बन्धों को आत्माके सम्बन्ध मानना बहिरात्मा है। इस बहिरात्म अवस्थामें रागभाव उत्कट रूपसे वर्तमान रहता है, अतः स्व-संवेदन ज्ञान – स्वानुभवरूप सम्यग्ज्ञान इस अवस्थामें नहीं रहता।

बहिरात्मा मंगलवाक्योंके स्मरण और चिन्तनसे दूर भागता है, उसे णमोकार मन्त्र-जैसे पावन मंगलवाक्योंपर श्रद्धा नहीं होती; क्योंकि राग बुद्धि उसे आस्तिक बनानेसे रोकती है। जबतक आस्तिक्य वृत्ति नहीं, तबतक उन्नत आदर्श सामने नहीं आ सकेगा। कर्मोंका क्षयोपशम होनेपर ही णमोकार मन्त्रके ऊपर श्रद्धा उत्पन्न होती है तथा इसके स्मरण, मनन, और चिन्तनसे अन्तरात्मा बननेकी ओर प्राणी अग्रसर होता है। अभिप्राय यह है कि जबतक प्राणीकी इस परम

मांगलिक महामन्त्रके प्रति श्रद्धा भावना जाग्रत् नहीं होती है, तबतक वह बहिरात्मा ही बना रहता है और विकारभावोंको अपना स्वरूप समझकर अहर्निश व्याकुलताका अनुभव करता रहता है।

भेदविज्ञान और निर्विकल्प समाधिसे आत्मामें लीन, शरीरादि परवस्तुओंसे ममत्वबुद्धि-रहित एवं चिदानन्दस्वरूप आत्माको ही अपना समझनेवाला स्वात्मज्ञ चैतन्यस्वरूप आत्मा अन्तरात्मा है। इसके तीन भेद हैं – उत्तम, मध्यम और जघन्य। समस्त परिग्रहके त्यागी; निःस्पृही, शुद्धोपयोगी और आत्मध्यानी मुनीश्वर उत्तम अन्तरात्मा है; देशव्रती गृहस्थ और छठे गुणस्थानवर्ती निर्ग्रन्थ मुनि मध्यम अन्तरात्मा है तथा राग-द्वेषको अपनेसे भिन्न समझ स्वरूपका दृढ़ श्रद्धान करनेवाले व्रतरहित श्रावक जघन्य अन्तरात्मा है।

उपर्युक्त तीनों ही प्रकारके अन्तरात्मा णमोकार मन्त्र-जैसे मंगलवाक्यो की आराधना द्वारा अपनी प्रवृत्तियोको शुद्ध करते है तथा निवृत्ति मार्गकी ओर अग्रसर होते हैं। णमोकार मन्त्रका उच्चारण ही शुभोपयोगका साधन है। इसके प्रति जब भीतरी आस्था जाग्रत् हो जाती है और इस मन्त्रमे कथित उच्चात्माओंके गुणोंके स्मरण, चिन्तन और मनन-द्वारा स्वपरिणतिकी ओर झुकाव आरम्भ हो जाता है, तो शुद्धोपयोगकी ओर व्यक्ति बढता है। अतः यह मंगलवाक्य उक्त तीनों प्रकारकी अन्तरात्माओंको प्रगति प्रदान करता है। वास्तविकता यह है कि महामन्त्र विकारभावोंको दूर कर आत्माको अपने शुद्ध स्वरूपकी ओर प्रेरित करता है। सांसारिक पदार्थोंके प्रति आसक्ति तथा आसक्तिसे होनेवाली अशान्ति आत्माको बेचैन नही करती। यद्यपि कर्मोंके उदयके कारण विकार उत्पन्न होते हैं, किन्तु उनका प्रभाव अन्तरात्मापर नही पड़ता। णमोकार-मन्त्र अन्तरात्माओके साधना मार्गमे मीलके पत्थरोंका कार्य करता है, जिस प्रकार पथिकको मीलका पत्थर मार्गका परिज्ञान कराता है, उसे मार्गके तय करनेका विश्वास दिलाता है, उसी प्रकार यह मन्त्र अन्तरात्माको साधु, उपाध्याय, आचार्य, अरिहन्त और सिद्धि रूप गन्तव्य स्थानपर पहुँचनेके लिए मार्ग परिज्ञानका कार्य करता है अर्थात् अन्तरात्मा इस मन्त्रके सहारे पंचपरमेष्ठी पदको प्राप्त होता है।

परमात्माके दो भेद है – सकल और निकल। घातिया कर्मोंको नाश करनेवाले और सम्पूर्ण पदार्थोंके ज्ञाता, द्रष्टा अरिहन्त सकल परमात्मा हैं। समस्त प्रकारके

कर्मोसे रहित अशरीरी सिद्ध निकल परमात्मा कहे जाते है। कोई भी अन्तरात्मा णमोकार मन्त्रके भाव-स्मरणसे परमात्मा बनता है तथा सकल परमात्मा भी योग निरोध कर अघातिया कर्मोंका नाश करते समय णमोकार मन्त्रका भाव चिन्तन करते हैं। निर्वाण प्राप्त होनेके पहले तक णमोकार मन्त्रके स्मरण, चिन्तन, मनन और उच्चारणकी सभीको आवश्यकता होती है; क्योंकि इस मन्त्रके स्मरणसे आत्मामें निरन्तर विशुद्धि उत्पन्न होती है। श्रद्धा-भावना, जो कि मोक्षमहलपर चढ़नेके लिए प्रथम सीढ़ी है, इसी मन्त्रमे भाव स्मरण-द्वारा उत्पन्न होती है। सरल शब्दोमे यों कहा जा सकता है कि इस मन्त्रमे प्रतिपादित पंचपरमेष्ठीके स्मरण और मननसे आत्मविश्वासकी भावना उत्पन्न होती है; जिससे राग-द्वेप प्रभृति विकारोका नाश होता है, साथ ही अपना इष्ट भी सिद्ध होता है। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधुको परमेष्ठी इसीलिए कहा जाता है कि इनके स्मरण, चिन्तन और मनन-द्वारा सुखकी प्राप्ति और दुःखके विनाशरूप इष्ट प्रयोजनकी सिद्धि होती है। विश्वके प्रत्येक प्राणीको सुख इष्ट है; क्योंकि यह आत्माका प्रमुख गुण है तथा इसमे उत्पन्न होनेपर ही बेचैनी दूर होती है। ये परमेष्ठी स्वयं परमपदमे स्थित है तथा इनके अवलम्बनसे अन्य व्यक्ति भी परमपदमे स्थित हो सकते है।

स्पष्ट करनेके लिए यों समझना चाहिए कि आत्माके तीन प्रकारके परिणाम होते है – अशुभ, शुभ और शुद्ध। तीव्र कषायरूप परिणाम अशुभ, मन्द कषायरूप परिणाम शुभ और कषायरहित परिणाम शुद्ध होते हैं। राग-द्वेपरूप संक्लेश परिणामोंसे ज्ञानावरणादि घातिया कर्मोका, जो आत्माके वीतराग भावके घातक है, तीव्रबन्ध होता है और शुभ परिणामोंसे मन्दबन्ध होता है। जब विशुद्ध परिणाम प्रबल होते है तो पहलेके तीव्रबन्धको भी मन्द कर देते हैं; क्योकि विशुद्ध परिणामोंसे बन्ध नही होता, केवल निर्जरा होती है। णमोकार मन्त्रमे प्रतिपादित पंचपरमेष्ठीके स्मरणमे जो भावनाएँ उत्पन्न होती है, उनमे कषायोंकी मन्दता होती है तथा वे परिणाम समस्त कषायोंको मिटानेके साधन बनते है। ये ही परिणाम आगे शुद्ध परिणामोंकी उत्पत्तिमे भी साधनाका कार्य करते है। अतएव भावसहित णमोकार मन्त्रके स्मरणसे उत्पन्न परिणामो द्वारा जब अपने स्वभावघातक घातिया कर्म क्षीण हो जाते हैं, तब सहजमे वीतरागता प्रकट होने

लगती है। जितने अंशोंमें घातिया कर्म क्षीण होते हैं, उतने ही अंशोंमें वीतराग-भाव उत्पन्न होते हैं। इन्द्रियासक्ति एवं असंयमकी प्रवृत्ति णमोकार मन्त्रके मनन-से दूर होती है, आत्मामें मन्द कषायजन्य भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। असाता आदि पाप प्रवृत्तियाँ मन्द पड़ जाती हैं और पुण्यका उदय होनेसे स्वतः सुख-सामग्री उपलब्ध होने लगती है।

उपर्युक्त विवेचनमें हम इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि आत्माको शुद्ध करनेकी तथा अपने सत् चित् और आनन्दमय स्वरूपमें अवस्थित होनेकी प्रेरणा इस णमोकार मन्त्रसे प्राप्त होती है। विकारजन्य अशान्तिको दूर करनेका एकमात्र साधन यह णमोकार मन्त्र है। इस मन्त्रके स्मरण, चिन्तन और मनन बिना अन्य किसी भी प्रकारकी साधना सम्भव नहीं है। यह सभी प्रकारकी साधनाओंका प्रारम्भिक स्थान है तथा समस्त साधनोंका अन्त भी इसीमें निहित है। अतः राग-द्वेष, मोह आदिकी प्रवृत्ति तभीतक जीवमें वर्तमान रहती है, जबतक जीव आत्माके वास्तविक स्वरूपकी उपलब्धिसे वंचित रहता है। आत्मस्वरूप पंच-परमेष्ठीकी आराधनासे अपने-आप अवगत हो जाता है। जिस प्रकार एक जलते दीपकसे अनेक बुझे हुए दीपकोंको जलाया जा सकता है, उसी प्रकार पंचपरमेष्ठी-की विशुद्ध आत्माओंसे अपनी ज्ञान-ज्योतिको प्रज्वलित किया जा सकता है।

जिन संसारी जीवोंकी आत्मामें कषायें वर्तमान है, वे भी क्षीण कषायवाले व्यक्तियोंके अनुकरणसे अपनी कषाय भावनाओंको दूर कर सकते हैं। साधारण मनुष्यकी प्रवृत्ति शुभ या अशुभ रूपमें सामनेके उदाहरणोंके अनुसार ही होती है। मनोविज्ञान बतलाता है कि मनुष्य अनुकरणशील प्राणी है, यह अन्य व्यक्तियोंका अनुकरण कर अपने ज्ञानके क्षेत्रको विस्तृत और समृद्ध करता रहता है। अतएव स्पष्ट है कि णमोकार मन्त्रमें प्रतिपादित अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधुकी आत्मा शुद्ध चिद्रूप है, इनके स्मरण और चिन्तनसे शुद्ध चिद्रूपकी प्राप्ति होती है।

दर्शनशास्त्रके वेत्ता मनीषियोंने अनुभव तीन प्रकारका बतलाया है — सहज, इन्द्रियगोचर और अलौकिक। इन तीनों प्रकारके अनुभवोंसे ही मनुष्य आनन्दकी प्राप्ति करता है तथा अपने मन और अन्तःकरणका विकास करता है। सहज अनुभव उन व्यक्तियोंको होता है, जो भौतिकवादी हैं तथा जिनका आत्मा विक-

सित नही है । ये क्षुधा, तृषा, मैथुन, मलमूत्रोत्सर्जन आदि प्राकृतिक शरीरसम्बन्धी माँगोंकी पूर्तिमें ही सुख और पूर्तिके अभावमें दुःखका अनुभव करते रहते हैं । ऐसे व्यक्तियोंमें आत्मविश्वासकी मात्रा प्रायः नहीं होती है, इनकी समस्त क्रियाएँ शरीराधीन हुआ करती है । णमोकार मन्त्रकी साधना इस सहज अनुभवको आध्यात्मिक अनुभवके रूपमे परिवर्तित कर देती है तथा शरीरकी वास्तविक उपयोगिता और उसके स्वरूपका बोध करा देती है ।

दूसरे प्रकारका अनुभव प्राकृतिक रमणीय दृश्योंके दर्शन, स्पर्शन आदिके द्वारा इन्द्रियोंको होता है, यह प्रथम प्रकार के अनुभवकी अपेक्षा सूक्ष्म है; किन्तु इस अनुभवसे उत्पन्न होनेवाला आनन्द भी ऐन्द्रियिक आनन्द है, जिससे आकुलता दूर नही हो सकती है । मानसिक बेचैनी इस प्रकारके अनुभवसे और बढ जाती है । विकारोंकी उत्पत्ति इससे अधिक होने लगती है तथा ये विकार नाना प्रकारके रूप धारण कर मोहक रूपमें प्रस्तुत होते है जिससे अहंकार और ममकारकी वृद्धि होती है । अतएव इस अनुभवजन्य ज्ञानका परिमार्जन भी णमोकार मन्त्रके द्वारा ही सम्भव है । इस मन्त्रमें निरूपित आदर्श अहंकार और ममकारका निरोध करनेमे सहायक होता है । अतः आत्मोत्थानके लिए यह अनुभव मंगलवाक्योंके रसायन-द्वारा ही उपयोगी हो सकता है । मंगलवाक्य ही इसका परिष्कार करते हैं । जिस प्रकार गन्दा पानी छाननेसे निर्मल हो जाता है, उसी प्रकार णमोकार मन्त्रकी साधनासे सांसारिक अनुभव शुद्ध होकर आत्मिक बन जाता है ।

तीसरे प्रकारका अनुभव आत्मिक या आध्यात्मिक होता है । इस अनुभवसे उत्पन्न आनन्द अलौकिक कहलाता है । इस प्रकारके अनुभवकी उत्पत्ति सत्संगति, तीर्थाटन, समीचीन ग्रन्थोके स्वाध्याय, प्रार्थना एवं मंगलवाक्योंके स्मरण, मनन और पठनसे होती है । यही अनुभव आत्माकी अनन्त शक्तियोंकी विकास-भूमि है और इसपर चलनेसे आकुलता दूर हो जाती है । णमोकार मन्त्रकी साधना मनुष्यकी विवेक बुद्धिकी वृद्धि और इच्छाओको संयमित करती है, जिससे मानवकी भावनाएँ परिमार्जित हो जाती है । अतएव विकारोंसे उत्पन्न होनेवाली अशान्तिको रोकने तथा आत्मिक शान्तिको विकसित करनेका एकमात्र साधन णमोकार महामन्त्र ही है । यह प्रत्येक व्यक्तिको वहिरात्मा अवस्थासे दूर कर अन्तरात्मा और परमात्मा अवस्थाकी ओर ले जाता है । आत्मबलका आविर्भाव

इस मन्त्रकी साधनासे होता है। जो व्यक्ति आत्मबली हैं, उनके लिए संसारमें कोई कार्य असम्भव नहीं। आत्मबल और आत्मविश्वासकी उत्पत्ति प्रधान रूपमें आराध्यके प्रति भावसहित उच्चार किये गये प्रार्थनामय मंगलवाक्यों-द्वारा ही होती है। जिन व्यक्तियोंमें उक्त दोनों गुण नहीं हैं, वे मनुष्य धर्मके उच्चतम शिखरपर चढ़नेके अधिकारी नहीं। जिस प्रकार प्रचण्ड सूर्यके समक्ष घटाटोप मेघ देखते-देखते विलीन हो जाते हैं, उसी प्रकार पंचपरमेष्ठीकी शरण जानेसे – उनके गुणोंके स्मरणसे, उनकी प्रार्थनासे आत्माका स्वकीय विज्ञान घन एवं निराकुलता-रूप सुख अनुभवमें आने लगता है तथा शक्ति इतनी प्रबल हो जाती है कि अन्तर्मुहूर्तमें कर्म भस्म हो जाते हैं। मोहका अभाव होते ही यह आत्मा ज्ञानाग्नि-द्वारा अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्य और अनन्तसुखको प्राप्त कर लेता है।

णमोकार-मन्त्रका अर्थ

वैदिक धर्मानुयायियोंमें जो ख्याति और प्रचार गायत्री मन्त्रका है, बौद्धोंमें त्रिसरण – त्रिशरण मन्त्रका है, जैनों में वही ख्याति और प्रचार णमोकार मन्त्रका है। समस्त धार्मिक और सामाजिक कृत्योंके आरम्भमें इस महामन्त्रका उच्चारण किया जाता है। जैन-सम्प्रदाय-का यह दैनिक जाप-मन्त्र है। इस मन्त्रका प्रचार तीनों सम्प्रदायों – दिगम्बर, श्वेताम्बर और स्थानकवासियोंमें समान रूपसे पाया जाता है। तीनों सम्प्रदायके प्राचीनतम साहित्यमें भी इसका उल्लेख मिलता है। इस मन्त्रमे पाँच पद अट्ठावन मात्रा और पैंतीस अक्षर हैं। मन्त्र निम्न प्रकार है—

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व-साहूणं॥

अर्थ—अरिहन्तों या अर्हन्तोंको नमस्कार हो, सिद्धोंको नमस्कार हो, आचार्यों-को नमस्कार हो, उपाध्यायोंको नमस्कार हो और लोकके सर्व-साधुओंको नमस्कार हो।

'णमो अरिहंताण' अरिहननादरिहन्ता नरकतिर्यक्कुमानुष्यप्रेतवासगताशेष-दुःखप्राप्तिनिमित्तत्वादरिर्मोहः। तथा च शेषकर्मव्यापारो वैफल्यमुपेयादिति चेन्न, शेषकर्मणां मोहतन्त्रत्वात्। न हि मोहमन्तरेण शेषकर्माणि स्वकार्यनिष्पत्तौ व्यापृतान्युपलभ्यन्ते येन तेषां स्वातन्त्र्यं जायते। मोहे विनष्टेऽपि कियन्तमपि कालं शेषकर्मणां सत्त्वोपलम्भान्न तेषां तत्तन्त्रत्वमिति चेन्न, विनष्टेऽरौ जन्ममरण-

प्रबन्धलक्षणसंसारोत्पादनसामर्थ्यमन्तरेण तत्सत्त्वस्यासत्त्वसमानत्वात् केवलज्ञानाद्यशेषात्मगुणाविर्भावप्रतिबन्धनप्रत्ययसमर्थत्वाच्च । तस्यारेर्हननादरिहन्ता ।

रजोहननाद्वा अरिहन्ता । ज्ञानदृगावरणानि रजांसीव बहिरङ्गान्तरङ्गाशेषत्रिकालगोचरानन्तार्थव्यञ्जनपरिणामात्मकवस्तुविषयबोधानुभवप्रतिबन्धकत्वाद् - रजांसि । मोहोऽपि रजः भस्मरजसा पूरिताननानामिव भूयो मोहावरुद्धात्मनां जिह्ममावोपलम्भात् । किमिति त्रितयस्यैव विनाश उपदिश्यत इति चेन्न, एतद्विनाशस्य शेषकर्मविनाशाविनाभावित्वात् तेषां हननादरिहन्ता ।

रहस्याभावाद्वा अरिहन्ता । रहस्यमन्तरायः तस्य शेषघातित्रितयविनाशाविनाभाविनो भ्रष्टबीजवन्निःशक्तीकृताघातिकर्मणो हननादरिहन्ता ।

अतिशयपूजार्हत्वाद्वार्हन्तः । स्वर्गावतरणजन्माभिषेकपरिनिष्क्रमणकेवलज्ञानोत्पत्तिपरिनिर्वाणेषु देवकृतानां पूजानां देवासुरमानवप्राप्तपूजाभ्योऽधिकत्वादतिशयानामर्हत्वाद्योग्यत्वादर्हन्तः[1] ।

णमो अरिहंताणं – णमो – नमस्कारः । केभ्यः ? अर्हद्भ्यः शक्रादिकृतां पूजां सिद्धिगतिं चार्हन्तस्तेभ्यः । अरीन् – रागद्वेषादीन् घ्नन्तीति अरिहन्तारः तेभ्योऽरिहन्तृभ्यः, न रोहन्ति – नोत्पद्यन्ते दग्धकर्मबीजत्वात् – पुनः संसारे न जायन्ते इत्यरुहन्तः तेभ्योऽरुहद्भ्यो नमो नमस्कारोऽस्तु[2] ।

अरिहननाद् रजोहनन[स्या] भावाच्च परिप्राप्तानन्तचतुष्टयस्वरूपः सन् इन्द्रनिर्मितामतिशयवतीं पूजामर्हतीति अर्हन् । घातिक्षयजमनन्तज्ञानादिचतुष्टयं विभूत्यार्थं यस्येति वार्हन्[3] ।

अर्थात्—'णमो अरिहंताणं' इस पदमें अरिहन्तोंको नमस्कार किया गया है । अरि – शत्रुओंके नाश करनेसे 'अरिहन्त' यह संज्ञा प्राप्त होती है । नरक, तिर्यंच, कुमानुष और प्रेत इन पर्यायोंमें निवास करनेसे होनेवाले समस्त दुःखोंकी प्राप्तिका निमित्त कारण होनेसे मोहको अरि – शत्रु कहा गया है ।

शंका—केवल मोहको ही अरि मान लेनेपर शेष कर्मोंका व्यापार – कार्य निष्फल हो जायेगा ?

---

१. धवलाटीका प्रथम पुस्तक, पृ० ४२-४४ ।

२. सप्तस्मरणानि, पृ० २ ।

३. अमरकीर्ति विरचित नाममालाका भाष्य, पृ० ५८-५९ ।

समाधान—यह शंका ठीक नहीं; क्योंकि अवशेष सभी कर्म मोहके अधीन हैं। मोहके अभावमें अवशेष कर्म अपना कार्य उत्पन्न करनेमें असमर्थ हैं। अतः मोहकी ही प्रधानता है।

शंकाकार—मोहके नष्ट हो जानेपर भी कितने ही काल तक शेष कर्मोंकी सत्ता रहती है, इसलिए उनको मोहके अधीन मानना उचित नहीं ?

समाधान—ऐसा नहीं समझना चाहिए; क्योंकि मोहरूप अरिके नष्ट हो जानेपर जन्म, मरणकी परम्परारूप संसारके उत्पादनकी शक्ति शेष कर्मोंमें नहीं रहनेसे उन कर्मोंका सत्त्व असत्त्वके समान हो जाता है। तथा केवलज्ञानादि समस्त आत्मगुणोंके आविर्भावके रोकनेमें समर्थ कारण होनेसे भी मोहको प्रधान शत्रु कहा जाता है। अतः उसके नाश करनेसे 'अरिहन्त' संज्ञा प्राप्त होती है।

अथवा रज—आवरण कर्मोंके नाश करनेसे 'अरिहन्त' यह संज्ञा प्राप्त होती है। ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मधूलिकी तरह बाह्य और अन्तरंग समस्त त्रिकालके विषयभूत अनन्त अर्थपर्याय और व्यंजनपर्यायरूप वस्तुओंको विषय करनेवाले बोध और अनुभवके प्रतिबन्धक होनेसे रज कहलाते हैं। मोहको भी रज कहा जाता है, क्योंकि जिस प्रकार जिनका मुख भस्मसे व्याप्त होता है, उनमें कार्यकी मन्दता देखी जाती है, उसी प्रकार मोहसे जिनकी आत्मा व्याप्त रहती है, उनकी स्वानुभूतिमें कालुष्य, मन्दता पायी जाती है।

अथवा, 'रहस्य'के अभावसे भी अरिहन्त संज्ञा प्राप्त होती है। रहस्य अन्तराय कर्मको कहते हैं। अन्तरायका नाश शेष तीन घातिया कर्मोंके नाशका अविनाभावी है और अन्तराय कर्मके नाश होनेपर अघातिया कर्म भ्रष्ट बीजके समान निःशक्त हो जाते हैं। इस प्रकार अन्तराय कर्मके नाशसे अरिहन्त संज्ञा प्राप्त होती है।

अथवा सातिशय पूजाके योग्य होनेसे अर्हन् संज्ञा प्राप्त होती है; क्योंकि गर्भ, जन्म, दीक्षा, केवल और निर्वाण इन पाँचों कल्याणकोंमें देवों-द्वारा की गयी पूजाएँ, देव, असुर, मनुष्योंकी प्राप्त पूजाओंसे अधिक हैं। अतः इन अतिशयोंके योग्य होनेसे अर्हन् संज्ञा प्राप्त होती है।

इन्द्रादिके द्वारा पूज्य, सिद्धगतिको प्राप्त होनेवाले अर्हन्त या राग-द्वेष रूप शत्रुओंको नाश करनेवाले अरिहन्त अथवा जिस प्रकार जला हुआ बीज उत्पन्न नहीं होता उसी प्रकार कर्म नष्ट हो जानेके कारण पुनर्जन्मसे रहित अर्हन्तोंको

नमस्कार किया है।

कर्मरूपी शत्रुओंके नाश करनेसे तथा कर्मरूपी रज न होनेसे अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्यरूप अनन्तचतुष्टयके प्राप्त होनेपर इन्द्रादि-के द्वारा निर्मित पूजाको प्राप्त होनेवाले अर्हन् अथवा घातिया – ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन चारों कर्मोंके नाश होनेसे अनन्तचतुष्टय विभूति जिनको प्राप्त हो गयी है, उन अर्हन्तोंको नमस्कार किया गया है।

जो संसारसे विरक्त होकर घर छोड़ मुनिधर्म स्वीकार कर लेते हैं तथा अपनी आत्माका स्वभाव साधन कर चार घातिया कर्मोंके नाश-द्वारा अनन्तदर्शन, अनन्त-ज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य इस अनन्त चतुष्टयको प्राप्त कर लेते है, वे अरहन्त है। ये अरहन्त अपने दिव्य ज्ञान-द्वारा संसारके समस्त पदार्थोंकी समस्त अवस्थाओंको प्रत्येक रूपसे जानते हैं, अपने दिव्यदर्शन-द्वारा समस्त पदार्थोंका सामान्य अवलोकन करते हैं। ये आकुलतारहित परम आनन्दका अनुभव करते हैं। क्षुधा, तृषा, भय, राग, द्वेष, मोह, चिन्ता, बुढ़ापा, रोग, मरण, पसीना, खेद, अभिमान, रति, आश्चर्य, जन्म, नीद और शोक इन अठारह दोषोंसे रहित होनेके कारण परम शान्त होते है, अतः वे देव कहलाते हैं। इनका परमौदारिक शरीर उन सभी शास्त्र, वस्त्रादि अथवा अंगविकारादिसे रहित होता है, जो काम, क्रोधादि निन्द्य भावोंके चिह्न है। इनके वचनोंसे लोकमें धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति होती है, जिनसे समस्त प्राणी इनके उपदेशका अनुसरण कर अपना कल्याण करते हैं। अरहन्त परमेष्ठीमें ४६ मूल गुण होते है—दस अतिशय जन्म समयके, दस अतिशय केवलज्ञानके, चौदह अतिशय देवोंके द्वारा निर्मित, आठ प्रातिहार्य और चार अनन्तचतुष्टय। इनमें प्रभुताके अनेक चिह्न वर्तमान रहते है तथा ऐसे अनेक अतिशय और नाना प्रकारके वैभवोंका संयोग पाया जाता है, जिनसे लौकिक जीव आश्चर्यान्वित हो जाते हैं। अर्हन्तोंके मूल दो भेद हैं – सामान्य अर्हन्त और तीर्थं-कर अर्हन्त। अतिशय और धर्मतीर्थका प्रवर्तन तीर्थंकर अर्हन्तमें ही पाया जाता है। अन्य विशेषताएँ दोनोंकी समान होती है। कोई भी आत्मा तपश्चरण-द्वारा घातिया कर्मोंको नष्ट करनेपर अर्हन्तपदको प्राप्त कर सकता है।

प्रत्येक अर्हन्त भगवान्में अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य, क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग और क्षायिक उपभोग

आदि गुणोंके प्रकट हो जानेसे सिद्ध स्वरूपकी झलक आ जाती है, राग-द्वेष और मोहरूप त्रिपुरको नष्ट करनेके कारण त्रिपुरारी, संसारमें शान्ति करनेके कारण शंकर, तीनों नेत्रों – नेत्रद्वय और केवलज्ञानसे संसारके समस्त पदार्थोंको देखनेके कारण त्रिनेत्र एवं कामविकारको जीतनेके कारण कामारि कहलाते हैं[1]।

अर्हन्त भगवान् दिव्य औदारिक[2] शरीरके धारी होते हैं, घातियाकर्ममलसे रहित होनेके कारण उनका आत्मा महान् पवित्र होता है, अनन्त चतुष्टयरूपी लक्ष्मी उनको प्राप्त हो जाती है, अतः वे परमात्मा, स्वयम्भू, जगत्पति, धर्मचक्री,

---

१. आविर्भूतानन्तज्ञानदर्शनसुखवीर्यविरतिक्षायिकसम्यक्त्वदानलाभभोगोपभोगाद्यनन्त-गुणत्वादिहैवात्मसात्कृतसिद्धस्वरूपाःस्फटिकमणिमहीधरगर्भोद्भूतादित्यबिम्बवद्देदीप्यमानाः स्व-शरीरपरिमाणा अपि ज्ञानेन विश्वरूपाः स्वास्थिताशेषप्रमेयत्वतः प्राप्तविश्वरूपाः निर्गताशेषाम-यत्वतो निरामयाः विगताशेषपापुञ्जनपाञ्जत्वेन निरञ्जनाः दोषकलातीतत्वतो निष्कलाः। तेभ्यो-ऽर्हद्भ्यो नमः इति यावत्।

णिहद्ध-मोहतरुणो वित्थिण्णाणाण-सायरुत्तिणा।
णिहय-णिय-विग्घ-वग्गा बहु-बाह-त्रिणिग्गया अयला॥
दलिय-मयण-प्पयावा तिकाल-विसएहि तीहि णयणेहि।
दिट्ठ-सयलट्ठ-सारा सुदद्ध-तिउरा मुणि-व्वइणो॥
ति-रयण-तिसूलधारिय मोहंधासुर-कबंध-बिंद-हरा।
सिद्ध-सयलप्प-रूवा अरहंता दुण्णय-कयंता॥

—धवला टीका, प्रथम पुस्तक, पृ० ४५

२. दिव्यौदारिकदेहस्थो धौतघातिचतुष्टयः।
ज्ञानदृग्वीर्यसौख्याढ्यः सोऽर्हन् धर्मोपदेशकः॥

—पञ्चाध्यायी, अ० २, पृ० १५८

अरहंति णमोक्कारं अरिहा पूजा सुरुत्तमा लोए।
रजहंता अरिहंति य अरहंता तेण उच्चदे॥

—मूलाराधना, गा० ५०५

अरिहंति वंदणणमंसणाइं अरहंति पूयसक्कारं।
सिद्धिगमणं च अरहा अरिहंता तेण वुच्चति॥
देवासुरमणुयाणं अरिहा पूया सुरुत्तमा जम्हा।
अरिणो हंता रयं हंता अरिहंता तेण वुच्चंति॥

—विशेषावश्यकभाष्य ३५८४-३५८५

दयाध्वज, त्रिकालदर्शी, लोकेश, लोकधाता, दृढ़व्रत, पुराणपुरुष, युगमुख्य, कलाधर, जगन्नाथ, जगद्विभु, सर्वज्ञ, प्रशास्ता, बृहस्पति, ज्ञानगर्भ, दयागर्भ, हेमगर्भ, सुदर्शन, शंकर, पुण्डरीकाक्ष, स्वयंवेद्य, पितामह, ब्रह्मनिष्ठ, यज्ञपति, सुयज्वा, वृषभध्वज, हिरण्यगर्भ, स्वयंप्रभु, भूतनाथ, सर्वलोकेश, निरंजन, प्रजापति, श्रीगर्भ आदि नामोंसे पुकारे जाते हैं।

'णमो सिद्धाणं—सिद्धाः[1] निष्ठिताः कृतकृत्याः सिद्धसाध्याः नष्टाष्ट-कर्माणः। नमो—नमस्कारः। केभ्यः? सिद्धेभ्यः, सितं प्रभूतकालेन बद्धं अष्टप्रकारं कर्म शुक्लध्यानाग्निना ध्मातं – भस्मीकृतं यैस्ते निरुक्तिवशात् सिद्धास्तेभ्यः इति। यद्वा सिद्धगतिनामधेयं स्थानं प्राप्ताः सिद्धाः। यद्वा सिद्धाः–सुनिष्ठितार्था मोक्षप्राप्त्या अपुनर्भवत्वेन संपूर्णार्थस्तेभ्यः सिद्धेभ्यः नमः।

अर्थ—जो पूर्णरूपसे अपने स्वरूपमे स्थित है, कृतकृत्य है, जिन्होंने अपने साध्यको सिद्ध कर लिया है और जिनके ज्ञानावरणादि आठ कर्म नष्ट हो चुके है, उन्हे सिद्ध कहते है। इन सिद्धोंको नमस्कार है।

[2]जिन्होने सुदूर भूतकालसे बांधे हुए आठ प्रकारके कर्मोको शुक्लध्यानरूपी अग्निके द्वारा नष्ट कर दिया है, उन सिद्धोंको, अथवा सिद्ध नामकी गति जिन्होने प्राप्त कर ली है और पुनर्जन्मसे छूटकर जिन्होने अपने पूर्णस्वरूपको प्राप्त कर लिया है, उन सिद्धोंको नमस्कार है।

तात्पर्य यह है कि जो गृहस्थावस्थाको त्यागकर मुनि हो चार घातिया कर्मोका नाश कर अनन्तचतुष्टय भावको प्राप्त कर लेते है। पश्चात् योग निरोध कर अवशेष चार अघातिया कर्मोको भी नष्ट कर एवं परम औदारिक शरीरको छोड़ अपने ऊर्ध्वगमन स्वभावसे लोकके अग्रभावमे जाकर विराजमान हो जाते है, वे सिद्ध हैं। समस्त परतन्त्रताओसे छूट जानेके कारण उनको मुक्त कहा जाता है।

आत्मामे सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व और अव्याबाधत्व ये आठ गुण होते है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ये कर्म इन गुणोके बाधक हैं। आत्मापर

१. धवला टीका, प्रथम पुस्तक, पृ० ४६।
२. सप्तस्मरणानि, पृ० ३।

इन कर्मोंका आवरण पड़ जानेसे ये गुण आच्छादित हो जाते हैं; किन्तु जब आत्मा अपने पुरुषार्थसे इन कर्मोंको क्षय कर देता है, तब सिद्ध अवस्थाको प्राप्त कर लेता है और उपर्युक्त आठों गुणोंका आविर्भाव हो जाता है। ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयसे अनन्तज्ञान, दर्शनावरणीय कर्मके क्षयसे अनन्तदर्शन, वेदनीयके क्षयसे अव्याबाधत्व, मोहनीयके क्षयसे सम्यक्त्व, आयुके क्षयसे अवगाहनत्व, नामकर्मके क्षयसे सूक्ष्मत्व, गोत्र-कर्मके क्षयसे अगुरुलघुत्व और अन्तरायके क्षयसे वीर्यगुणका आविर्भाव होता है।[1]

[2] जिन्होंने नाना भेदरूप आठ कर्मोंका नाश कर दिया है, जो तीन लोकके मस्तकके शेखर-स्वरूप हैं, दुःखोंसे रहित हैं, सुखरूपी सागरमें निमग्न हैं, निरंजन हैं, नित्य हैं, आठ गुणोंसे युक्त है, निर्दोष हैं, कृतकृत्य हैं, जिन्होंने समस्त पर्यायों-सहित सम्पूर्ण पदार्थोंको जान लिया है, वज्रशिला निर्मित अभग्न प्रतिमाके समान अभेद्य आकारसे युक्त है, जो पुरुषाकार होनेपर भी गुणोंसे पुरुषके समान नहीं हैं; क्योंकि पुरुष सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंको भिन्न-भिन्न देशोंमें जानता है, परन्तु जो प्रत्येक देशमें सब विषयोंको जानते हैं, वे सिद्ध हैं। आत्माका वास्तविक

---

१. कृत्स्नकर्मक्षयाज्ज्ञानं क्षायिकं दर्शनं पुनः।
प्रत्यक्षं सुखमात्मोत्थं वीर्यं चेति चतुष्टयम्॥
सम्यक्त्वं चैव सूक्ष्मत्वमव्याबाधगुणः स्वतः।
अस्त्यगुरुलघुत्वं च सिद्धे चाष्टगुणाः स्मृताः॥
—पञ्चाध्यायी, अ० २, श्लो० ६७-६८

२. णिहय-विविहट्ठ-कम्मा-तिहुवण-सिर-सेहरा विहुव-दुक्खा।
सुहसायर-मज्झगया णिरंजणा णिच्च अट्ठगुणा॥
अणवज्जा कय-कज्जा सव्वावयवेहि दिट्ठ-सव्वट्ठा।
वज्ज-सिलत्थ-ब्भग्गय-पडिमं वाभेज्ज संठाणा॥
माणुस-संठाणा वि हु सव्वावयवेहि णो गुणेहि समा।
सव्विंदियाण विसयं जमेग-देसे विजाणंति॥
—धवला टीका, प्रथम पुस्तक, पृ० ४८

अट्ठविहकम्मवियला सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा।
अट्ठगुणा किदकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा॥
—गोम्मटसार जीवकाण्ड, गा० ६८

स्वरूप इस सिद्ध पर्यायमें ही प्रकट होता है, सिद्ध ही पूर्ण स्वतन्त्र और शुद्ध हैं। इस प्रकार पूर्ण शुद्ध कृतकृत्य, अचल, अनन्त सुख-ज्ञानमय और स्वतन्त्र सिद्ध आत्माओंको 'णमो सिद्धाणं' पदमें नमस्कार किया गया है :

'णमो आइरियाणं' – णमो[1] नमस्कारः पञ्चविधमाचारं चरन्ति चारयन्तीत्याचार्याः। चतुर्दशविद्यास्थानपारगाः एकादशाङ्गधराः। आचाराङ्गधरो वा तात्कालिकस्वसमयपरसमयपारगो वा मेरुरिव निश्चलः क्षितिरिव सहिष्णुः सागर इव बहिःक्षिप्तमलः सप्तभयविप्रमुक्तः आचार्यः।

णमो – नमस्कारः[2], केभ्यः? आचार्येभ्यः, स्वयं पञ्चविधाचारवन्तोऽन्येषामपि तत्प्रकाशकत्वात् आचारे साधवः आचार्यास्तेभ्यः इति।

अर्थ—आचार्य परमेष्ठीको नमस्कार है। जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और वीर्य इन पाँच आचारोंका स्वयं आचरण करते हैं और दूसरे साधुओंसे आचरण कराते हैं, उन्हें आचार्य कहते हैं। जो चौदह विद्या-स्थानोंके पारंगत हों, ग्यारह अंगके धारी हों अथवा आचारांगमात्रके धारी हों अथवा तत्कालीन स्वसमय और परसमयमें पारंगत हों, मेरुके समान निश्चल हों, पृथ्वीके समान सहनशील हों, जिन्होंने समुद्रके समान मल अर्थात् दोषोंको बाहर फेंक दिया हो और जो सात प्रकारके भयसे रहित हों; उन्हे आचार्य कहते हैं।

आचार्य परमेष्ठीके ३६ मूल गुण होते हैं – १२ तप, १० धर्म, ५ आचार, ६ आवश्यक और ३ गुप्ति। इन ३६ मूल गुणोंका आचार्य परमेष्ठी सावधानीपूर्वक पालन करते है।

तात्पर्य यह है कि जो मुनि सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी अधिकताके कारण प्रधानपदको प्राप्त कर संघके नायक बनते हैं तथा मुख्यरूपसे तो निर्विकल्प-स्वरूपाचरण चारित्रमें ही मगन रहते हैं; किन्तु कभी-कभी धर्मपिपासु जीवोंको रागांशका उदय होनेके कारण करुणाबुद्धिमें उपदेश भी देते हैं। दीक्षा लेनेवालोको दीक्षा देते है तथा अपने दोष निवेदन करनेवालोंको प्रायश्चित्त देकर शुद्ध करते

---

१. धवला टीका, प्रथम पुस्तक, पृ० ४८।

२. सप्तस्मरणानि, पृ० ३।

हैं, वे आचार्य कहलाते हैं[1]।

"परमागमके परिपूर्ण अभ्यास और अनुभवसे जिनकी बुद्धि निर्मल हो गयी है, जो निर्दोष रीतिसे छह आवश्यकोंका पालन करते हैं, जो मेरु पर्वतके समान निष्कम्प हैं, शूरवीर हैं, सिंहके समान निर्भीक है, श्रेष्ठ हैं, देश, कुल और जाति-से शुद्ध है, सौम्य मूर्ति हैं, अन्तरंग और बहिरंग परिग्रहसे रहित हैं, आकाशके समान निर्लेप है, ऐसे आचार्य परमेष्ठी होते हैं। ये दीक्षा और प्रायश्चित्त देते हैं, परमागम अर्थके पूर्ण-ज्ञाता और अपने मूलगुणोंमें निष्ठ रहते हैं।[2]" इस रत्नत्रयके धारी आचार्य परमेष्ठीको नमस्कार किया है।

'णमो उवज्झायाणं' – चतुर्दशविद्यास्थानव्याख्यातारः उपाध्यायाः तात्का-लिकप्रवचनव्याख्यातारो वा आचार्यस्योक्ताशेषलक्षणसमन्विताः संग्रहानु-ग्रहादिहीनाः[3]।

नमो—नमस्कारः। केभ्यः ? उपाध्यायेभ्यः उप एत्य समीपमागत्य येभ्यः सकाशादधीयन्त इत्युपाध्यायास्तेभ्यः, इति। अथवा उप – समीपे अध्यायो – द्वादशाङ्ग्याः पठनं सूत्रतोऽर्थतश्च येषां ते उपाध्यायाः तेभ्यः उपाध्यायेभ्यः नमः[4]।

इक् स्मरणे इति वचनात् वा स्मर्यते सूत्रतो जिनप्रवचनं येभ्यस्ते उपा-ध्यायाः। अथवा उपाधानमुपाधिः – संनिधिस्तेनोपाधिना उपाधौ वा आयो –

---

१. आ मर्यादया तद्विषयविनयरूपया चर्यन्ते सेव्यन्ते जिनशासनार्थोपदेशकतया तदाकाङ्क्षिभिः इत्याचार्याः। उक्तं च—"सुत्तत्थविऊ लक्खणजुत्तो गच्छस्स मेढिभूओ य। गणतत्तिविप्पमुक्को अत्थं वाएइ आइरिओ॥" अथवा आचारो ज्ञानाचारादिः पञ्चधा। आमर्यादया वा चारो विहारः आचारस्तत्र साधवः स्वयंकरणात् प्रभाषणात् प्रदर्शनाच्चेत्याचार्याः। आह च पंचविहं आयारं आयरमाणा तहा पयासंता। आयारं दंसंता आयरिया तेण वुच्चंति॥ अथवा आ ईषद् अपरिपूर्णा इत्यर्थः। चारा हेरिका ये ते आचारा चारकल्पा इत्यर्थः। युक्ता-युक्तविभागनिरूपणनिपुणा विनेयाः, अतस्तेषु साधवो यथावच्छास्त्रार्थोपदेशकतया इत्याचार्याः। नमस्यता चैषामाचारोपदेशकतयोपकारित्वात्।—भग० १, १, १ टीका।

२. धवला टीका, प्र० पु०, पृ० ४९; मूलाचार आवश्यक अ० श्लो०।

३. धवला टीका, प्र० पु०, पृ० ४९।

४. सप्तस्मरणानि, पृ० ४।

लाभः श्रुतस्य येषाम् उपाधीनां वा विशेषणानां प्रक्रमाच्छोमनानामायो – लाभो येभ्यः अथवा उपाधिरेव – संनिधिरेव आयम् – इष्टफलं दैवजनितत्वेन आयानाम् – इष्टफलानां समूहस्तदेकहेतुत्वात् येषाम्; अथवा आधीनां – मनःपीडानामायो – लाभः आध्यायः अधियां वा 'नञः कुत्सार्थत्वात्' कुबुद्धिनामायोऽध्यायः, 'ध्यै चिन्तायाम्' इत्यस्य धातोः प्रयोगान्नञः कुत्सार्थत्वादेव च दुर्ध्यानं वाध्यायः। उपहत आध्यायः अध्यायो वा यैस्ते उपाध्यायाः। नमस्यता चैषां सुसंप्रदायाय तज्जिनवचनाध्यापनतो विनयेन भव्यानामुपकारकत्वादिति[1]।

अर्थात् चौदह विद्यास्थानके व्याख्यान करनेवाले उपाध्याय परमेष्ठीको नमस्कार है। अथवा तत्कालीन परमागमके व्याख्यान करनेवाले उपाध्याय होते हैं। ये संग्रह, अनुग्रह आदि गुणोंको छोड़कर पूर्वोक्त आचार्यके सभी गुणोंसे युक्त होते हैं।

उन उपाध्याय परमेष्ठीके लिए नमस्कार है, जिनके पास अन्य मुनिगण अध्ययन करते हैं, अथवा जिनके निकट द्वादशांग सूत्र और अर्थोंका मुनिगण अध्ययन करते है।

इक् धातुका अर्थ स्मरण करना होता है, अतः जो सूत्रोंके क्रमानुसार जिनागमका स्मरण करते हैं, वे उपाध्याय कहलाते हैं। अथवा उपाध्याय इस उपाधिसे जो विभूषित हों वे उपाध्याय कहलाते है।

जो मुनि परमागमका अभ्यास करके मोक्षमार्गमें स्थित हैं तथा मोक्षके इच्छुक मुनियोंको उपदेश देते हैं, उन मुनीश्वरोंको उपाध्याय परमेष्ठी कहते हैं। उपाध्याय ही जैनागमके ज्ञात होनेके कारण मुनिसंघमें पठन-पाठनके अधिकारी होते हैं। शास्त्रोंके समस्त शब्दार्थको ज्ञात कर आत्मध्यानमें लीन रहते हैं। मुनियोंके अतिरिक्त श्रावकोंको भी अध्ययन कराते हैं। उपाध्याय पदपर वे ही मुनिराज आसीन होते हैं, जो जैनागमके अपूर्व ज्ञाता होते है। ग्यारह अंग और चौदह पूर्वके पाठी, ज्ञान-ध्यानमें लीन, परम निर्ग्रन्थ श्री उपाध्याय परमेष्ठीको हमारा नमस्कार हो। यहाँ 'णमो उवज्झायाणं' पदमें उक्त स्वरूपवाले उपाध्यायको नमस्कार किया गया है।[2]

---

१. भाग० १, १, १ टीका।

२. विशेषके लिए देखें—मूलाचार, अनगारधर्मामृत।

'णमो लोए सव्वसाहूणं' – अनन्तज्ञानादिशुद्धात्मस्वरूपं साधयन्तीति साधवः। पञ्चमहाव्रतधरास्त्रिगुप्तिगुप्ताः अष्टादशशीलसहस्रधराश्चतुरशीतिशत-सहस्रगुणधराश्च साधवः[१]।

नमो – नमस्कारः। केभ्यः? लोके सर्वसाधुभ्यः। लोके – मनुष्यलोके सम्यग्ज्ञानादिभिर्मोक्षसाधकाः सर्वसत्त्वेषु समाश्चेति साधवः, सर्वे च ते स्थविर-कल्पिकादिभेदभिन्नाः साधवश्चेति सर्वसाधवस्तेभ्यः, इति। अथवा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रादिभिः साधयन्ति मोक्षमार्गमिति साधवः। लोके – सार्धद्वयद्वीप-लक्षणे पञ्चचत्वारिंशल्लक्षयोजनप्रमाणे मनुष्यलोके सर्वे च ते साधवश्च। यद्वा – अर्हतः साधवः सर्वसाधवः तेभ्यो नमो – नमस्कारोऽस्तु[२]।

अर्थात् – ढाई द्वीपवर्ती सभी साधुओंको नमस्कार हो। जो अनन्त ज्ञानादि-रूप शुद्ध आत्माके स्वरूपकी साधना करते हैं, तीन गुप्तियोंसे सुरक्षित हैं, अठारह हजार शीलके भेदोंको धारण करते हैं और चौरासी लाख उत्तरगुणोंका पालन करते हैं, वे साधु परमेष्ठी होते हैं।

मनुष्यलोकके समस्त साधुओंको नमस्कार है। जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्रके द्वारा मोक्षमार्गकी साधना करते हैं तथा सभी प्राणियोंमें समान बुद्धि रखते हैं; वे स्थविरकल्पि और जिनकल्पि आदि भेदोंसे युक्त साधु हैं। अथवा ढाई द्वीप – पैंतालीस लाख योजनके विस्तारवाले मनुष्यलोकमें रत्नत्रय-धारी, पंचमहाव्रतोंसे युक्त, दिगम्बर, वीतरागी साधु परमेष्ठीको नमस्कार किया गया है।

"सिंहके[3] समान पराक्रमी, गजके समान स्वाभिमानी या उन्मत्त, बैलके समान भद्र प्रकृति, मृगके समान सरल, पशुके समान निरीह, गोचरी वृत्ति करने-वाले, पवनके समान निस्संग या सर्वत्र बिना रुकावटके विचरण करनेवाले, सूर्यके समान तेजस्वी या समस्त तत्त्वोंके प्रकाशक, समुद्रके समान गम्भीर, सुमेरुके

१. धवला टी०, प्र० पु०, पृ० ५१।

२. सप्तस्मरणानि, पृ० ४।

३. सीह-गय-वसह-मिय-पसु-मारुद-सूरुवहि-मंदरिं दु-मणी।
खिदि-उरगंबर-सरिसा परम-पय-विमग्गया साहू॥

—धवला टीका, प्र० पु०, पृ० ५१

समान परीषह और उपसर्गोंके आनेपर अकम्प और अडोल रहनेवाले, चन्द्रमाके समान शान्तिदायक, मणिके समान प्रभापुंजयुक्त, पृथ्वीके समान सभी प्रकारकी बाधाओंको सहनेवाले, सर्पके समान दूसरेके बनवाये हुए अनियत आश्रयमें रहनेवाले, आकाशके समान निरालम्बी या निर्भीक एवं सर्वदा मोक्षका अन्वेषण करनेवाले साधु परमेष्ठी होते है।"

अभिप्राय यह है कि जो विरक्त होकर समस्त परिग्रहको त्याग शुद्धोपयोग-रूप मुनिधर्मको स्वीकार करते हैं तथा शुद्धोपयोगके द्वारा अपनी आत्माका अनुभव करते हैं, पर-पदार्थोंमें ममत्वबुद्धि नहीं करते तथा ज्ञानादि स्वभावको अपना मानते है, वे मुनि है। यद्यपि ज्ञानका स्वभाव जाननेवाला होनेसे अपने क्षयोपशम-द्वारा प्राभृत पदार्थोंको जानते है, पर उनसे राग-बुद्धि नहीं करते। शरीरमें रोग, बुढापा आदिके होनेपर तथा बाह्य निमित्तोंका संयोग होनेपर सुख-दुःख नही करते है। अपने योग्य समस्त क्रियाओंको करते है, पर रागभाव नही करते। यद्यपि इनका प्रयास सर्वदा शुद्धोपयोगको प्राप्त करनेका ही रहता है, पर कदाचित् प्रबल रागांशका उदय आनेसे शुभोपयोगकी ओर भी प्रवृत्ति करनी पड़ती है। शरीरको सजाना, शृंगार करना आदिसे सर्वदा पृथक् रहते हैं। इनके मूल गुण २८ है। इनके अन्तरंगमें अहिसा भावना सदा वर्तमान रहती है तथा बहिरंगमें सौम्य दिगम्बर मुद्रा। ये ज्ञान, ध्यान और स्वाध्यायमे सर्वदा लीन रहते हैं। बाईस परीषहोंको निश्चल हो सहन करते है। शरीरकी स्थितिके लिए आवश्यक आहार-विहारकी क्रियाएँ सावधानीपूर्वक करते है। इस प्रकारके साधुओं-को 'णमो लोए सव्वसाहूणं' पद-द्वारा नमस्कार किया गया है।

पंचपरमेष्ठीके उपर्युक्त विवेचनसे स्पष्ट है कि आत्मिक विकासकी अपेक्षासे ही अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधुको देव माना गया है। ये पाँचों ही वीतरागी है, अतः स्तुतिके योग्य है। तत्त्वदृष्टिसे सभी जीव समान हैं, किन्तु रागादि विकारोंकी अधिकता और ज्ञानकी हीनतासे जीव निन्दायोग्य, तथा रागादिकी हीनता और ज्ञानकी अधिकतासे स्तुतियोग्य होते है। अरिहन्त और सिद्धोंमें रागभावकी पूर्ण हीनता और ज्ञानकी विशेषता होनेके कारण वीतराग विज्ञानभाव वर्तमान है तथा आचार्य, उपाध्याय और साधुओंमे एकदेश रागादिकी हीनता और क्षयोपशमजन्य ज्ञानकी विशेषता होनेसे एकदेश वीतराग विज्ञान भाव

है, अतएव पाँचों ही परमेष्ठी वीतराग होनेके कारण वन्दनीय हैं। धवला टीकामें पंचपरमेष्ठीके देवत्वका समर्थन निम्न प्रकार किया गया है –

शंका[1]—आत्म-स्वरूपको प्राप्त अरिहन्त और सिद्धोंको देव मानकर नमस्कार करना ठीक है, किन्तु जिन्होंने आत्मस्वरूपको प्राप्त नहीं किया है, ऐसे आचार्य, उपाध्याय और साधुको देव मानकर कैसे नमस्कार किया जाये ?

समाधान—यह शंका ठीक नही है; क्योंकि अपने अनन्त भेदोंसहित सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्रका नाम देव है; अतः इन तीनों गुणोंसे विशिष्ट जो जीव है, वह भी देव कहलाता है। यदि रत्नत्रयको देव नही माना जायेगा तो सभी जीव देव हो जायेंगे। अतएव आचार्य, उपाध्याय और मुनियोंको भी देव मानना चाहिए; क्योंकि रत्नत्रयका अस्तित्व अरहन्तोंकी तरह इनमें भी पाया जाता है।

सिद्ध परमेष्ठीके रत्नत्रयकी अपेक्षा आचार्य आदि परमेष्ठियोंका रत्नत्रय भिन्न नहीं है। यदि इनके रत्नत्रयमें भेद मान लिया जाये, तो आचार्यादिमें रत्नत्रयका अभाव हो जायेगा।

शंका—जिन्होंने रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्रकी पूर्णताको प्राप्त कर लिया है, उन्हीको देव मानना चाहिए; रत्नत्रयकी अपूर्णता जिनमें रहती है, उनको देव मानना असंगत है।

समाधान—यह शंका ठीक नहीं है। यदि एकदेश रत्नत्रयमें देवत्व नहीं माना जायेगा तो सम्पूर्ण रत्नत्रयमें देवत्व नहीं बन सकेगा, अतः आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधु भी देव हैं। जैनाम्नायमें अलौकिक सत्ताधारी किसी परोक्षशक्तिको सच्चा देव नही माना है, पर रत्नत्रयके विकासके अपेक्षा वीतरागी, ज्ञानी और शुद्धोपयोगी आत्माओंको देव कहा है।

इस णमोकारमन्त्रमें सव्व—सर्व और लोए—लोक पद अन्त्य दीपक हैं। जिस प्रकार दीपक भीतर रख देनेसे भीतरके समस्त पदार्थोंका प्रकाशन करता है, उसी प्रकार उक्त दोनों पद भी अन्य समस्त पदोंके ऊपर प्रकाश डालते हैं। अतः सम्पूर्ण क्षेत्रमें रहनेवाले त्रिकालवर्ती अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और

---

१. धवला, प्रथम पुस्तक, पृ० ५२।

साधुओंको नमस्कार समझना चाहिए।

प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकोंमें णमोकार मन्त्रके पाठान्तर भी उपलब्ध होते हैं। श्वेताम्बर आम्नायमें णमोके स्थानपर नमो पाठ प्रचलित है। अतएव संक्षेपमें इस मन्त्रके पाठान्तरोंपर विचार कर लेना भी आवश्यक है। दिगम्बर परम्परामें इस मन्त्रका मूलपाठ तो षट्खण्डागमके प्रारम्भमें लिखित ही है। इस पुस्तकमें भी इसी पाठको मूल-पाठ माना गया है। पाठान्तर दिगम्बर परम्पराके अनुसार निम्न प्रकार हैं—

णमोकार मन्त्रके पाठान्तर

'अरिहंताणं'के स्थानपर मुद्रित ग्रन्थोंमें अरहंताणं, प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंमें अर्हंताणं [1] तथा अरुहंताणं [2] पाठ भी मिलते हैं। इसी प्रकार 'आइरियाणं'के स्थानपर आयरियाणं, [3] आइरीयाणं [4] आइरिआणं [5] पाठ भी पाये जाते है। अन्य पदोंके पाठमे कुछ भी अन्तर नहीं है, ज्योंके त्यों हैं। यदि अरिहंताणंके स्थानपर अरहंताणं और अरुहंताणं या अर्हंताणं पाठ रखे जाते हैं, तो प्राकृत व्याकरणकी दृष्टिसे अरुहंताणं और अरहंताणं दोनों पदोंसे अर्हत् शब्द निष्पन्न होता है। अतः दोनों शुद्ध है; पर अर्थमें अन्तर है। अरुहंतका अर्थ है कि जिनका पुनर्जन्म अब न हो अर्थात् कर्म बीजके जल जानेके कारण जिनका पुनर्जन्मका अभाव हो गया है, वे अर्हंत कहलाते है। देवोंके द्वारा अतिशय पूजनीय होनेके कारण अरहंत कहे जाते है। इसी अरहंतको लेखकोंने अर्हत लिखा है, अर्थात् प्राकृत शब्दको संस्कृत मानकर अर्हंत पाठ भी लिखा जाने लगा।

---

१. यह पाठान्तर $\frac{\text{त}}{१२}$ गुटकेमें—जैनसिद्धान्त भवन आरामें मिलता है।

२. $\frac{\text{त}}{१४}$ गुटकेमें आरम्भ में अरहंताणं लिखा है पश्चात् काटकर अरुहंताणं लिखा गया है। प्राकृत पंचमहागुरु मार्गमें अर्हंताणंके स्थानपर अरुहा पाठ आया है।

३. मुद्रित और हस्तलिखित पूजापाठ-सम्बन्धी अधिकांश प्रतियोंमें।

४. मुद्रित अधिकांश प्रतियोंमें।

५. हस्तलिखित $\frac{\text{त}}{१२}$ गुटकेमें।

षट्खण्डागमकी धवला टीकाके देखनेसे अवगत होता है कि आचार्य वीरसेन-के समयमें भी इस महामन्त्रके अरहंत और अरुहंत पाठान्तर थे। उनके इस मन्त्रकी व्याख्यामें प्रयुक्त **'अतिशयपूजार्हत्वाद्वार्हन्तः'** तथा **'अष्टबीजवन्निशक्तीकृताघातिकर्मणो हननात्'** वाक्योंसे स्पष्ट सिद्ध है कि यह व्याख्या उक्त पाठान्तरोंको दृष्टिमें रखकर ही की गयी होगी। यद्यपि स्वयं वीरसेनाचार्यको मूलपाठ ही अभिप्रेत था, इसी कारण व्याख्याके अन्तमें उन्होंने अरिहंत पद ही प्रयुक्त किया है; फिर भी व्याख्याकी शैलीसे यह स्पष्ट प्रकट हो जाता है कि उनके सामने पाठान्तर थे। व्याकरण और अर्थकी दृष्टिसे उक्त पाठान्तरोंमें कोई मौलिक अन्तर न होनेके कारण उन्होंने उनकी समीक्षा करना उचित न समझा होगा।

इसी प्रकार आइरियाणं, आयरियाणं पाठोंके अर्थमें कोई भी अन्तर नहीं है। प्राकृत व्याकरणके अनुसार तथा उच्चारणादिके कारण इनमें अन्तर पड़ गया है। रकारोत्तरवर्ती इकारको दीर्घ करना केवल उच्चारणकी सरलता तथा लयको गति देनेके लिए हो सकता है। इसी प्रकार इकारके स्थानपर यकारका पाठ भी उच्चारणके सौकर्यके लिए हो किया गया प्रतीत होता है। अतः णमोकार मन्त्रका शुद्ध और आगमसम्मत पाठ निम्न है –

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्व-साहूणं॥

श्वेताम्बर-परम्परामें इस मन्त्रका पाठ निम्न प्रकार उपलब्ध होता है –

नमो अरिहंताणं नमो सिद्धाणं नमो आयरियाणं।
नमो उवज्झायाणं नमो लोए सव्व-साहूणं॥

सप्तस्मरणानिमें 'अरिहंताणं'के तीन पाठ बतलाये गये हैं – **'अत्र पाठत्रयम् – अरहंताणं, अरिहंताणं, अरुहंताणं'**। अर्थात् अरहंत, अरिहंत और अरुहंत इन तीनों पदोंका अर्थ पूर्वके समान इन्द्रादिके द्वारा पूज्य, घातिया कर्मोके नाशक, कर्मबीजके विनाशक रूपमें किया गया है। उच्चारण-सरलताके लिए आइरियाणंके स्थानपर आयरियाणं पाठ है। इसमें अर्थकी कोई विशेषता नहीं है।

इस प्रकार श्वेताम्बर आम्नायके पाठोंमें दिगम्बर आम्नायके पाठोंकी अपेक्षा कोई मौलिक भेद नहीं है। जो कुछ भी अन्तर है वह 'नमो' पाठमें है। इस सम्प्रदायके आगमिक ग्रन्थोंमें भी 'ण' के स्थानपर 'न' पाया जाता है। इसका

कारण यह है कि अर्धमागधी प्राकृतमें विकल्पसे 'ण' के स्थानपर 'न' होता है। दिगम्बर आम्नायके साहित्यकी प्राकृत प्रायः जैन शोरसेनी है जो महाराष्ट्रीके नकारके स्थानपर णकार होनेमें समता रखती है। किन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदायके साहित्यकी प्राकृत भाषा अर्धमागधी है, इसमें णकारके स्थानपर णकार और नकार दोनों प्रयोग पाये जाते हैं। बताया गया है कि **"महाराष्ट्र्यां नकारस्य सर्वदा णकारो जायतेऽर्द्धमागध्यां तु नकारणकारौ द्वावपि।"** यथा **"छणं छणं परिण्णाय लोगसन्नं च सव्वसो।" – आचा० १-२-३-१०३।**

परन्तु इस सम्बन्धमें एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भाषाके परिवर्तनसे शब्दोंकी शक्तिमे कमी आती हैं, जिससे मन्त्रशास्त्रके रूप और मण्डलमें विकृति हो जाती है और साधकको फल-प्राप्ति नही हो पाती है। अतः णमो पाठ ही समीचीन है, इस पाठके उच्चारण, मनन और चिन्तनमें आत्माकी शक्ति अधिक लगती है तथा फलप्राप्ति शीघ्र होती है। मन्त्रोच्चारणसे जिस प्राण-विद्युत्का संचार किया जाता है, वह 'णमो' के घर्षणसे ही उत्पन्न की जा सकती है। अतएव शुद्धपाठ ही काममें लेना चाहिए।

णमोकार मन्त्रका पदक्रम

इस महामन्त्रमें शुद्धात्माओंको क्रमशः नमस्कार किया गया प्रतीत नहीं होता है। रत्नत्रयकी पूर्णता तथा पूर्ण कर्म कलंकका विनाश तो सिद्ध परमेष्ठीमें देखा जाता है, अतः इस महामन्त्रके पहले पदमें सिद्धोंको नमस्कार होना चाहिए था; किन्तु ऐसा नहीं किया गया है। धवला टीकामें आचार्य वीरसेन स्वामीने इस आशंकाको उठाकर निम्नप्रकार समाधान किया है—

विगताशेषलेपेषु सिद्धेषु सत्स्वर्हतां सलेपानामादौ किमिति नमस्कारः क्रियत इति चेन्नैष दोषः, गुणाधिकसिद्धेषु श्रद्धाधिक्यनिबन्धनत्वात्। असत्यर्हत्याप्तागमपदार्थावगमो न भवेदस्मदादीनाम्, संजातश्चैतत् प्रसादादित्युपकारापेक्षया वादावर्हन्नमस्कारः क्रियते। न पक्षपातो दोषाय शुभपक्षवृत्तेः श्रेयोहेतुत्वात्। अद्वैतप्रधाने गुणीभूतद्वैते द्वैतनिबन्धनस्य पक्षपातस्यानुपपत्तेश्च। आप्तश्रद्धाया आप्तागमपदार्थविषयश्रद्धाधिक्यनिबन्धनत्वख्यापनार्थं वार्हतामादौ नमस्कारः।

अर्थात्—सभी प्रकारके कर्म लेपसे रहित सिद्धपरमेष्ठीके विद्यमान रहते हुए अघातिया कर्मोंके लेपसे युक्त अरिहन्तोंको आदिमें नमस्कार क्यों किया है?

इस आशंकाका उत्तर देते हुए वीरसेन स्वामीने लिखा है कि यह कोई दोष नहीं है। क्योंकि सबसे अधिक गुणवाले सिद्धोंमें श्रद्धाकी अधिकताके कारण अरिहंत परमेष्ठो ही हैं – अरिहन्त परमेष्ठीके निमित्तसे ही अधिक गुणवाले सिद्धोंमें सबसे अधिक श्रद्धा उत्पन्न होती है अथवा यदि अरिहन्त परमेष्ठी न होते तो हम लोगोंको आप्त आगम और पदार्थका परिज्ञान नहीं हो सकता था। यतः अरिहन्त-की कृपासे ही हमें बोधकी प्राप्ति हुई है, इसलिए उपकारकी अपेक्षा भी आदिमें अरिहन्तोंको नमस्कार करना युक्ति-संगत है। जो मार्गदर्शक उपकारी होता है उसीका सबसे पहले स्मरण किया जाता है।

यदि कोई यह कहे कि इस प्रकार आदिमें अरिहन्तोंको नमस्कार करना तो पक्षपात है ? इसपर आचार्य उत्तर देते हैं कि ऐसा पक्षपात दोषोत्पादक नहीं है; किन्तु शुभ पक्षमें रहनेसे वह कल्याणका ही कारण है। तथा द्वैतको गौण करके अद्वैतकी प्रधानतासे किये गये नमस्कारमे द्वैतमूलक पक्षपात बन भी तो नही सकता है। अतः उपकारीके रूपमे अरिहन्त भगवान्को सबसे पहले नमस्कार किया है, पश्चात् सिद्ध परमेष्ठीको।

अरिहन्त और सिद्धमे नमस्कारका उक्त क्रम मान लेनेपर, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधुके नमस्कारमे उस क्रमका निर्वाह क्यों नही किया गया है ? यहाँ भी सबसे पहले साधु परमेष्ठीको नमस्कार किया जाता, पश्चात् उपाध्याय और आचार्य परमेष्ठीको नमस्कार होना चाहिए था, पर ऐसा पदक्रम नहीं रखा गया है।

उपर्युक्त आशंकापर विचार करनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि इस महामन्त्रमे परमेष्ठियोंको रत्नत्रय गुणकी पूर्णता और अपूर्णताके कारण दो भागोमें विभक्त किया है। प्रथम विभागमें अर्हन्त और सिद्ध है, द्वितीय विभागमें आचार्य, उपाध्याय और साधु हैं। प्रथम विभागके परमेष्ठियोमे रत्नत्रयगुणकी न्यूनतावाले परमेष्ठीको पहले और रत्नत्रयगुणकी पूर्णतावाले परमेष्ठीको पश्चात् रखा गया है। इस क्रमानुसार अरिहन्तको पहले और सिद्धको बादमें पठित किया है। दूसरे विभागके परमेष्ठियोंमे भी यही क्रम है। आचार्य और उपाध्यायकी अपेक्षा मुनिका स्थान ऊँचा है; क्योंकि गुणस्थान-आरोहण मुनिपदसे ही होता है, आचार्य और उपाध्याय पदसे नहो। और यही कारण है कि अन्तिम समयमें आचार्य और

उपाध्यायोंको अपना-अपना पद छोड़कर मुनिपद धारण करना पड़ता है। मुक्ति भी मुनिपदसे ही होती है तथा रत्नत्रयकी पूर्णता इसी पदमें सम्भव है। अतः दोनों विभागोंमें उन्नत आत्माओंको पश्चात् पठित किया गया है।

एक अन्य समाधान यह भी है कि जिस प्रकार प्रथम विभागके परमेष्ठियोंमें उपकारी परमेष्ठीको पहले रखा गया है, उसी प्रकार द्वितीय विभागके परमेष्ठियोंमें भी उपकारी परमेष्ठीको प्रथम स्थान दिया गया है। आत्मकल्याणकी दृष्टिसे साधुपद उन्नत है, पर लोकोपकारकी दृष्टिसे आचार्यपद श्रेष्ठ है। आचार्य संघका व्यवस्थापक ही नहो होता, बल्कि अपने समयके चतुर्विध संघके रक्षणके साथ धर्म-प्रसार और धर्म-प्रचारका कार्य भी करता है। धार्मिक दृष्टिसे चतुर्विध संघकी सारी व्यवस्था उसीके ऊपर रहती है। उसे लोक-व्यवहारज्ञ भी होना चाहिए जिससे लोकमे तीर्थकर-द्वारा प्रवर्तित धर्मका भलीभाँति संरक्षण कर सके। अतः जनताके उत्थानके साथ आचार्यका सम्बन्ध है, यह अपने धर्मोपदेश-द्वारा जनताको तीर्थकरो-द्वारा उपदिष्ट मार्गका अवलोकन कराता है। भूले-भटकोको धर्मपन्थ सुझाता है। अतएव जनताका धार्मिक नेता होनेके कारण आचार्य अधिक उपकारी है। इसलिए द्वितीय विभागके परमेष्ठियोमे आचार्यपदको प्रथम स्थान दिया गया है।

आचार्यसे कम उपकारी उपाध्याय है। आचार्य सर्वसाधारणको अपने उपदेशसे धर्ममार्गमे लगाते है, किन्तु उपाध्याय उन जिज्ञासुओंको अध्ययन कराते है, जिनके हृदयमें ज्ञानपिपासा है। उनका सम्बन्ध सर्वसाधारणसे नही, बल्कि सीमित अध्ययनार्थियोंसे है। उदाहरणके लिए यों कहा जा सकता है कि एक वह नेता है जो अगणित प्राणियोंकी सभामे अपना मोहक उपदेश देकर उन्हे हितकी ओर ले जाता है और दूसरा वह प्रोफेसर है, जो एक सीमित कमरेमे बैठे हुए छात्रवृन्दको गम्भीर तत्त्व समझाता है। है दोनों ही उपकारी, पर उनके उपकारके परिमाण और गुणोंमें अन्तर है। अतः आचार्यके अनन्तर उपाध्याय पदका पाठ भी उपकार गुणकी न्यूनताके कारण ही रखा गया है।

अन्तमें मुनिपद या साधुपदका पाठ आता है। साधु दो प्रकारके हैं—द्रव्यलिंगी और भावलिंगी। आत्मकल्याण करनेवाले भावलिंगी साधु है। ये अन्तरंग – काम, क्रोध, मान, माया, लोभ रूप परिग्रहसे तथा बहिरंग – धन, धान्य, वस्त्र आदि

सभी प्रकारके परिग्रहसे रहित होकर आत्म-चिन्तनमें लीन रहते हैं। ये सर्वदा लोकोपकारसे पृथक् रहकर आत्मसाधनामें रत रहते हैं। यद्यपि इनकी सौम्य मुद्रा तथा इनके अहिंसक आचरणका प्रभाव भी समाजपर अमिट पड़ता है, पर ये आचार्य या उपाध्यायके समान लोक-कल्याणमें संलग्न नहीं रहते हैं। अतः 'सव्व-साधु' पदका पाठ सबसे अन्तमें रखा गया है।

णमोकार महामन्त्र अनादि है। प्रत्येक कल्पकालमें होनेवाले तीर्थंकरोंके द्वारा इसके अर्थका और उनके गणधरोंके द्वारा इसके शब्दोंका निरूपण किया जाता है।

णमोकार महामन्त्र का अनादि-सादित्व विमर्श

पूजन-पाठके आरम्भमें इस महामन्त्रको अनादि कहकर स्मरण किया गया है। पूजनका आरम्भ ही इस महामन्त्र-से होता है। पाँचों परमेष्ठियोंको एक साथ नमस्कार होनेसे यह मन्त्र पंच परमेष्ठी मन्त्र भी कहलाता है। पंच परमेष्ठी अनादि होनेके कारण यह मन्त्र अनादि माना जाता है। इस महामन्त्रमें नमस्कार किये गये पात्र आदि नहीं, प्रवाहरूपसे अनादि हैं और इनको स्मरण करनेवाला जीव भी अनादि है। वास्त-विकता यह है कि णमोकार मन्त्र आत्माका स्वरूप है, आत्मा अनादि है, अतः यह मन्त्र भी अनादिकालसे गुरुपरम्परा-द्वारा प्रतिपादित होता चला आ रहा है। अध्यात्ममंजरीमें बताया गया है कि "**इदम् अर्थमन्त्रं परमार्थतीर्थपरंपरागुरुपरं-पराप्रसिद्धं विशुद्धोपदेशदम्।**" अर्थात् अभीष्ट सिद्धिकारक यह मन्त्र तीर्थंकरोंकी परम्परा तथा गुरुपरम्परासे अनादिकालसे चला आ रहा है। आत्माके समान यह अनादि और अविनश्वर है। प्रत्येक कल्पकालमें होनेवाले तीर्थंकरोंके द्वारा इसका प्रवचन होता है। द्वितीय छेदसूत्र महानिशीथके पाँचवें अध्यायमें बताया गया है कि – **एयं तु जं पंचमंगलमहासुयक्खंधस्स वक्खाणं तं महया पबंधेण अणंतगय-पज्जवेहिं सुत्तस्स य पियभूयाहिं णिजुत्तिभासचुण्णीहिं जहेव अणंत-नाण-दंसणधरेहिं तित्थयरेहिं वक्खाणियं तहेव समासओ वक्खाणिज्जं तं आसि। अहन्नया कालपरिहाणिदोसेणं ताओ णिज्जुत्ति-भास-चुन्नीओ वुच्छिन्नाओ। इओ य वच्चं तेणं कालेणं समएणं महिड्ढिपत्ते पयाणुसारी वइरसामी नाम दुवाल-संगसुअहरे समुप्पन्ने। तेण य पंचमंगल-महासुयक्खंधस्स उद्धारो मूलसुत्तस्स मज्झे लिहिओ। मूलसुत्तं पुण सुत्तत्ताएगणहरेहिं अत्थत्ताए अरिहंतेहिं भगवंतेहिं धम्मतित्थयरेहिं तिलोगमहिएहिं वारजिणिंदेहिं पन्नवियं त्ति एस वुड्ढसंपयाओ।**"

अर्थात्—इस पंचमंगल महाश्रुतस्कन्धका व्याख्यान महान् प्रबन्धसे अनन्त गुण और पर्यायोंसहित, सूत्रकी प्रियभूत निर्युक्ति, भाष्य और चूर्णियों-द्वारा जैसा अनन्त ज्ञान-दर्शनके धारक तीर्थंकरोंने किया, उसी प्रकार संक्षेपमें व्याख्यान करने योग्य था। परन्तु आगे काल-परिहाणिके दोषसे वे निर्युक्ति, भाष्य और चूर्णियाँ विच्छिन्न हो गयीं। फिर कुछ काल जानेपर यथा समय महाऋद्धिको प्राप्त पदानुसारी वज्रस्वामी नामक द्वादशाग श्रुतज्ञानके धारक उत्पन्न हुए। उन्होंने पंचमंगल महाश्रुतस्कन्धका उद्धार मूल सूत्रके मध्य लिखा। यह मूलसूत्र सूत्रत्वकी अपेक्षा गणधरो-द्वारा तथा अर्थकी अपेक्षा अरिहन्त भगवान्, धर्मतीर्थंकर त्रिलोक-महित वीर जिनेन्द्रके द्वारा प्रज्ञापित है, ऐसा वृद्ध सम्प्रदाय है।

श्वेताम्बर आगमके उक्त विवेचनसे यह स्पष्ट है कि श्वेताम्बर सम्प्रदायमें णमोकार मन्त्रके अर्थका विवेचन तीर्थकरों-द्वारा तथा शब्दोंका विवेचन गणधरों-द्वारा किया गया माना गया है। इस कल्पकालके अन्तिम तीर्थकर भगवान् महावीरने इस महामन्त्रके अर्थका निरूपण तथा गौतम स्वामीने शब्दोंका कथन किया है। कालदोषके कारण तीर्थकर-द्वारा कथित व्याख्यानके विच्छिन्न हो जानेसे द्वादशांग ज्ञानके धारी श्री वज्रस्वामीने इसका उद्धार किया। अतएव यह मन्त्र अनादि है, गुरु-परम्परासे अनादिकालसे प्रवाहरूपमे चला आ रहा है। हाँ, इतनी बात अवश्य है कि प्रत्येक कल्पकालमे इस मन्त्रका व्याख्यान एवं शब्दों-द्वारा प्रणयन अवश्य होता है।

जैसा कि आरम्भमें कहा गया है कि दिगम्बर-परम्परा इस महामन्त्रको अनादि मानती है। जैसे वस्तुएँ अनादि है, उनका कोई कर्ता-धर्ता नहीं है, उसी प्रकार यह मन्त्र भी अनादि है, इसका भी कोई रचयिता नही है। मात्र व्याख्याता हो पाये जाते है। षट्खण्डागमके प्रथम खण्ड जीवट्ठाणके प्रारम्भमें यह मात्र मंगलाचरण रूपसे अंकित किया गया है। धवला टीकाके रचयिता श्री वीरसेनाचार्यने टीकामें ग्रन्थ-रचनाके क्रमका निरूपण करते हुए कहा है—

मंगल-णिमित्त-हेऊ परिमाणं णाम तह य कत्तारं।
वागरिय छ प्पि पच्छा वक्खाणउ सत्थमाइरियो ॥

इदि णायमाइरिय-परंपरागयं मणेणावहारिय पुव्वाइरियायाराणु-सरणं ति-रयण हेउ त्ति पुप्फदंताइरियो मंगलादीणं छण्णं सकारणाणं परूवणट्ठं सुत्तमाह—

"णमो अरिहंताणं" इच्चादि[1]।

अर्थात्—मंगल, निमित्त, हेतु, परिणाम, नाम और कर्ता इन छह अधिकारोंका व्याख्यान करनेके पश्चात् शास्त्रका व्याख्यान आचार्य करते हैं। इस आचार्य-परम्पराको मनमें धारण करना तथा पूर्वाचार्योंकी व्यवहार-परम्पराका अनुसरण करना रत्नत्रयका कारण है, ऐसा समझकर पुष्पदन्ताचार्य मंगलादि छहोंके सकारण प्ररूपणके लिए 'णमो अरिहंताणं' आदि मंगल-सूत्रको कहते हैं। श्री वीरसेनाचार्यने इस मंगलसूत्रको 'तालपलंब' – तालप्रलम्ब सूत्रके समान देशामर्षक कहकर मंगल, निमित्त, हेतु आदि छहो अधिकारवाला सिद्ध किया है।

आगे चलकर वीरसेनाचार्यने मंगल शब्दकी व्युत्पत्ति एवं अनेक दृष्टियोंसे भेद-प्रभेदोंका निरूपण करते हुए मंगलके दो भेद बताये हैं—

"तच्च मंगलं दुविहं णिबद्धमणिबद्धमिदि। तत्थ णिबद्धं णाम जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण णिबद्ध-देवदा-णमोक्कारो तं णिबद्ध-मंगलं। जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण कय देवदा-णमोक्कारो तमणिबद्ध-मंगलं। इदं पुण जीवट्ठाणं णिबद्ध-मंगलं। यत्तो 'इमेसिं चोद्दसण्हं जीवसमासाणं' इदि एदस्स सुत्तस्सादीए णिबद्धं – 'णमो अरिहंताणं' इच्चादिदेवदा णमोक्कार-दंसणादो।[1]"

अर्थात्—मंगल दो प्रकारका है – निबद्ध और अनिबद्ध। सूत्रके आदिमें सूत्रकर्ता-द्वारा जो देवता-नमस्कार अन्यके द्वारा किया गया लिखा जाये अर्थात् पूर्व परम्परामे चले आये किसी मंगलसूत्र या श्लोकको अथवा परम्परा-द्वारा निरूपित अर्थके आधारपर स्वरचित सूत्र या श्लोकको अंकित करना निबद्ध मंगल है। रचनाके आदिमें मनसा या वचसा यों ही सूत्र या मंगल वाक्य बिना लिखे जो नमस्कार किया जाता है, वह अनिबद्ध कहलाता है। यहाँ 'जीवस्थान' नामक प्रथमखण्डागममे 'इमेसिं चोद्दसण्हं जीवसमासाणं' इत्यादि जीवस्थानके सूत्रके पहले 'णमो अरिहन्ताणं' इत्यादि मंगलसूत्र, जो देवता नमस्कार रूपमें विद्यमान है, परम्पराप्राप्त निबद्ध मंगल है।

उपर्युक्त विवेचनका निष्कर्ष यह है कि वीरसेन स्वामीके मान्यतानुसार यह मंगलसूत्र परम्परासे प्राप्त चला आ रहा है, पुष्पदन्तने इसे यहाँ अंकित कर दिया

१. धवला टीका, प्रथम पु०, पृ० ४१।

है। इससे इस महामन्त्रका अनादित्व सिद्ध होता है।

अलंकारचिन्तामणिमें निबद्ध और अनिबद्ध मंगलकी परिभाषा निम्न प्रकार की गयी है। जिनसेनाचार्यने निबद्धका अर्थ लिखित और अनिबद्धका अर्थ अलिखित या अनंकित नही लिया है। वह लिखते है –

स्वकाव्यमुखे स्वकृतं पद्यं निबद्धम्, परकृतमनिबद्धम्।

अर्थात्—स्वरचित मंगल अपने ग्रन्थमें निबद्ध और अन्यरचित मंगलसूत्रको अपने ग्रन्थमें लिखना अनिबद्ध कहा जाता है।

उक्त परिभाषाके आधारपर णमोकार मन्त्रको अनिबद्ध मंगल कहा जायेगा। क्योंकि आचार्य पुष्पदन्त इसके रचयिता नहीं हैं। उन्हे तो यह मन्त्र परम्परासे प्राप्त था, अतः उन्होंने इस मंगलवाक्यको ग्रन्थके आदिमें अंकित कर दिया। इसी आशयको लेकर वीरसेन स्वामीने धवला टीका (१।४१) में इसे अनिबद्ध मंगल कहा है।

वैशाली प्रतिष्ठानके निर्देशक श्री डॉ० हीरालालजीने वेदनाखण्डके 'णमो जिणाणं' इस मंगलसूत्रकी धवला टीकाके[1] आधारपर णमोकारमन्त्रके आदिकर्ता श्री पुष्पदन्ताचार्यको सिद्ध करनेका प्रयास किया है किन्तु अन्य आर्ष ग्रन्थोंके साथ तथा जीवट्ठाणखण्डके मंगलसूत्रकी धवला टीकाके साथ डॉक्टर साहबके मन्तव्यकी तुलना करनेपर प्रतीत होता है कि यह मन्त्र अनादि है। जैसे अग्निका उष्णत्व, जलका शीतत्व, वायुका स्पर्शवत्व एवं आत्माका चेतनधर्म अनादि है, उसी प्रकार यह णमोकार मन्त्र अनादि है। अथवा अनादि जिनवाणीका अंग होनेसे यह मन्त्र अनादि है। महाबन्ध प्रथम भागकी प्रस्तावनामें बताया गया है कि "जिस[2] प्रकार 'णमो जिणाणं' आदि मंगलसूत्र भूतबलि-द्वारा संगृहीत है, ग्रथित नहीं है, उसी प्रकार णमोकार मन्त्र रूपसे ख्यात अनादि मूलमन्त्र नामसे वन्दित 'णमो अरिहंताणं' आदि भी पुष्पदन्त आचार्य-द्वारा संग्रहीत है, ग्रथित नही है।" मोक्ष-मार्ग अनादि है, इस मार्गके उपदेशक और पथिक भी अनादि हैं, तीर्थंकर प्रभुओंकी परम्परा भी अनादि है। अतः यह अनादि मूलमन्त्र भगवान्‌की दिव्य-ध्वनिसे प्राप्त हुआ है। सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवान्‌ने अपनी दिव्य-ध्वनिसे जिन

१. धवला टीका, पुस्तक २, पृ० ३३–३६।
२. महाबन्ध, प्रथम भाग, प्रस्तावना, पृ० ३०।

तत्त्वोंका प्रकाशन किया, गणधरदेवने उन्हें द्वादशांग वाणीका रूप दिया। अतएव अनादि द्वादशांगवाणीका अंग होनेसे यह महामन्त्र अनादि है। इस महामन्त्रके सम्बन्धमें निम्न श्लोक प्रसिद्ध है।

अनादिमूलमन्त्रोऽयं सर्वविघ्नविनाशनः।
मङ्गलेषु च सर्वेषु प्रथमं मङ्गलं मतः॥

द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा यह मंगलसूत्र अनादि है और पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा सादि है। इसी प्रकार यह नित्यानित्य रूप भी है। कुछ ऐतिहासिक विद्वानों-का अभिमत है कि साधु शब्दका प्रयोग साहित्यमें अधिक पुराना नहीं है अतः इस अर्थमें ऋषि-मुनि शब्द ही प्राचीनकालमें प्रचलित थे। णमोकार मन्त्रमें 'साहूणं' पाठ है, अतः यह शब्द ही इस बातका द्योतक है कि यह मन्त्र अनादि नहीं है। इस शब्दका समाधान पहले ही किया जा चुका है, क्योंकि शब्दरूपमें निबद्ध यह मन्त्र अवश्य सादि है, अर्थकी अपेक्षा यह अनादि है। इसे अनादि कहनेका अर्थ यही है कि द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा इसे अनादि कहा गया है।

किसी भी कार्यका फल दो प्रकारसे प्राप्त होता है – तात्कालिक और कालान्तरभावी। इस महामन्त्रके स्मरणसे ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय आदि कर्मोंका क्षय होकर कल्याण – श्रेयोमार्गकी प्राप्ति होना, इसका तात्कालिक फल है। अनादि-कर्म-लिप्त आत्मा इस महामन्त्रके स्मरणसे तत्काल ही श्रद्धालु हो सम्यक्त्वकी ओर अग्रसर होता है। पंचपरमेष्ठीका पवित्र स्मरण व्यक्तिको आत्मिक बल प्रदान करता है। यतः पंचपरमेष्ठीके स्मरणसे आत्मामें पवित्रता आती है, शुभ परिणति उत्पन्न हो जाती है और आत्मामें ऐसी शक्ति उत्पन्न हो जाती है, जिससे वह स्वयमेव ही धर्मकी ओर अग्रसर होती है। अतः तात्कालिक फल आत्मशुद्धि है। कालान्तर-भावी फलमें आत्माकी शुभ परिणतिके कारण अर्थ – धन, ऐश्वर्य, अभ्युदय और काम – सामारिक भोग, सुख, स्वास्थ्य आदिके साथ स्वर्गादिकी प्राप्ति है। वास्तवमें णमोकार मन्त्रका उद्देश्य मोक्ष-प्राप्ति है और यही इस मन्त्रका यथार्थ फल है, किन्तु इस फलकी प्राप्तिके लिए आत्मामें क्षायिक सम्यक्त्वकी योग्यता अपेक्षित है।

हमारे आगममें इस मन्त्रकी बड़ी भारी महिमा बतलायी गयी है। यह

सभी प्रकारकी अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाला है। आत्मशोधनका हेतु होते हुए भी नित्य जाप करनेवालेके रोग, शोक, आधि, व्याधि आदि सभी बाधाएँ दूर हो जाती हैं। पवित्र, अपवित्र, रोगी, दुःखी, सुखी आदि किसी भी अवस्थामें इस मन्त्रका जप करनेसे समस्त पाप भस्म हो जाते है तथा बाह्य और अभ्यन्तर पवित्र हो जाता है! यह समस्त विघ्नोंको दूर करनेवाला तथा समस्त मंगलोंमें प्रथम मंगल है। किसी भी कार्यके आदिमें इसका स्मरण करनेसे वह कार्य निर्विघ्नतया पूर्ण हो जाता है। बताया गया है।

णमोकारमन्त्रका माहात्म्य

एसो पंचणमोयारो सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलं॥

इस गाथाकी व्याख्या करते हुए सिद्धचन्द्रगणिने लिखा है – "एष पञ्चनमस्कारः एष – प्रत्यक्षविधीयमानः पञ्चानामर्हदादीनां नमस्कारः – प्रणामः। स च कीदृशः? सर्वपापप्रणाशनः। सर्वाणि च तानि पापानि च सर्वपापानि इति कर्मधारयः। सर्वपापानां प्रकर्षेण नाशनो – विध्वंसकः सर्वपापप्रणाशनः, इति तत्पुरुषः। सर्वेषां द्रव्यभावभेदभिन्नानां मङ्गलानां प्रथममिदमेव मङ्गलम्। च समुच्चये पञ्चसु पदेषु चतुर्थ्यर्थेषु षष्ठी। अत्र चाष्टषष्टिरक्षराणि, नव पदानि, अष्टौ च संपदो – विश्रामस्थानानि।

पुनः सर्वेषां मङ्गलानां – मङ्गलकारकवस्तूनां दधिदूर्वाक्षतचन्दननालिकेर-पूर्णकलश-स्वस्तिक – दर्पण-भद्रासन-वर्धमान-मत्स्ययुगल-श्रीवत्सनन्द्यावर्तादीनां मध्ये प्रथमं मुख्यं मङ्गलं मङ्गलकारको भवति। यतोऽस्मिन् पठिते जप्ते स्मृते च सर्वाण्यपि मङ्गलानि भवन्तीत्यर्थः।"

अर्थात्—यह णमोकार मन्त्र, जिसमे पंचपरमेष्ठीको नमस्कार किया गया है, सभी प्रकारके पापोंको नष्ट करनेवाला है। पापीसे पापी व्यक्ति भी इस मन्त्रके स्मरणसे पवित्र हो जाता है तथा सभी प्रकारके पाप इस महामन्त्रके स्मरणसे नष्ट हो जाते है। यह दधि, दूर्वा, अक्षत, चन्दन, नारियल, पूर्णकलश, स्वस्तिक, दर्पण, भद्रासन, वर्धमान, मत्स्य-युगल, श्रीवत्स, नन्द्यावर्त आदि मंगल-वस्तुओंमें सबसे उत्कृष्ट मंगल है। इसके स्मरण और जपसे अनेक प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त होती है। अमंगल दूर हो जाता है और पुण्यकी वृद्धि होती है।

तात्पर्य यह है कि किसी भी वस्तुकी महिमा उसके गुणोंके द्वारा व्यक्त होती है। इस महामन्त्रके गुण अचिन्त्य हैं। इसमें इस प्रकारको विद्युत् शक्ति वर्तमान है जिससे इसके उच्चारण मात्रसे पाप और अशुभका विध्वंस हो जाता है तथा परम विभूति और कल्याणकी प्राप्ति होती है। इस महामन्त्रकी महिमा व्यक्त करनेवाली अनेक रचनाएँ है; इसमें णमोकारमन्त्रमाहात्म्य, नमस्कारकल्प, नमस्कारमाहात्म्य आदि प्रधान है। कहा जाता है कि जन्म, मरण, भय पराभव, क्लेश, दुःख, दारिद्र्य आदि इस महामन्त्रके जापसे क्षण-भरमें भस्म हो जाते हैं। इसकी अचिन्त्य महिमाका वर्णन णमोकारमन्त्र-माहात्म्यमें निम्न प्रकार बतलाया गया है[1]—

मन्त्रं संसारसारं त्रिजगदनुपमं सर्वपापारिमन्त्रं
संसारोच्छेदमन्त्रं विषमविषहरं कर्मनिर्मूलमन्त्रम्।
मन्त्रं सिद्धिप्रदानं शिवसुखजननं केवलज्ञानमन्त्रं
मन्त्रं श्रीजैनमन्त्रं जप जप जपितं जन्मनिर्वाणमन्त्रम् ॥१॥
आकृष्टिं सुरसंपदां विदधते मुक्तिश्रियो वश्यतां
उच्चाटं विपदां चतुर्गतिभुवां विद्वेषमात्मैनसाम्।
स्तम्भं दुर्गमनं प्रति प्रयततो मोहस्य संमोहनं
पायात्पञ्चनमस्क्रियाक्षरमयी साराधना देवता ॥२॥
अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा
ध्यायेत् पञ्चनमस्कारं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३॥
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्परमात्मानं स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः ॥४॥
अपराजितमन्त्रोऽयं सर्वविघ्नविनाशनः।
मङ्गलेषु च सर्वेषु प्रथमं मङ्गलं मतः ॥५॥
विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनीभूतपन्नगाः।
विषो निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥६॥
अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम।
तस्मात्कारुण्यभावेन रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥७॥

१. णमोकार-मन्त्र-माहात्म्य—'नित्य-नैमित्तिक पाठावली' में प्रकाशित, पृ० १-२।

अर्थात्—यह महामन्त्र संसारका सार है – जन्म-मरणरूप संसारसे छूटनेका सुकर अवलम्बन और सारतत्त्व है; तीनों लोकोंमें अनुपम है – इस मन्त्रके समान चमत्कारी और प्रभावशाली अन्य कोई मन्त्र नही है, अतः यह तीनों लोकोंमे अद्‌भुत है; समस्त पापोंका अरि है – इस मन्त्रका जाप करनेसे किसी भी प्रकार-का पाप नष्ट हुए बिना नहीं रहता है, जिस प्रकार अग्निका एक कण घास-फूसके बड़े-बड़े ढेरोंको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार यह मन्त्र सभी तरहके पापोंको नष्ट करनेवाला होनेके कारण पापारि है, यह मन्त्र संसारका उच्छेदक, व्यक्तिके भाव-संसार – राग-द्वेषादि और द्रव्य-संसार – ज्ञानावरणादि कर्मोंका विनाशक है; तीक्ष्ण विषोका नाश करनेवाला है अर्थात् इस महामन्त्रके प्रभावसे सभी प्रकारकी विष-बाधाएँ दूर हो जाती है; यह मन्त्र कर्मोंका निर्मूलक – विनाश करनेवाला है, इस मन्त्रका भावसहित उच्चारण करनेसे कर्मोंकी निर्जरा होती है तथा योग-निरोधपूर्वक इसका स्मरण करनेसे कर्मोंका विनाश होता है; यह मन्त्र सभी प्रकारकी सिद्धियोंको देनेवाला है – भावसहित और विधिसहित इस मन्त्रका अनुष्ठान करनेसे सभी तरहकी लौकिक अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है, साधक जिस वस्तुकी कामना करता है, वह उसे प्राप्त हो जाती है। दुर्लभ और असम्भव कार्य भी इस महामन्त्रकी साधनासे पूर्ण हो जाते है; यह मन्त्र मोक्ष-सुखको उत्पन्न करनेवाला है; यह मन्त्र केवलज्ञानमन्त्र कहलाता है अर्थात् इसके जापसे केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है तथा यही मन्त्र निर्वाण-सुखका देनेवाला भी है।

यह णमोकार मन्त्र देवोंकी विभूति और सम्पत्तिको आकृष्ट कर देनेवाला है, मुक्ति-रूपी लक्ष्मीको वश करनेवाला है, चतुर्गतिमें होनेवाले सभी तरहके कष्ट और विपत्तियोंको दूर करनेवाला है, आत्माके समस्त पापको भस्म करनेवाला है, दुर्गतिको रोकनेवाला है, मोहका स्तम्भन करनेवाला है, विषयासक्तिको घटानेवाला है, आत्मश्रद्धाको जाग्रत् करनेवाला है, और सभी प्रकारसे प्राणीकी रक्षा करने-वाला है।

पवित्र या अपवित्र अथवा सोते, जागते, चलते, फिरते किसी भी अवस्थामें इस णमोकार मन्त्रका स्मरण करनेसे आत्मा सर्वपापोंसे मुक्त हो जाता है, शरीर और मन पवित्र हो जाते हैं। यह सप्तधातुमय शरीर सर्वदा अपवित्र रहता है,

इसकी पवित्रता णमोकार मन्त्रके स्मरणसे उत्पन्न निर्मल आत्मपरिणति-द्वारा होती है। अतः निस्सन्देह यह मन्त्र आत्माको पवित्र करनेवाला है। इसका स्मरण किसी भी अवस्थामें किया जा सकता है। यह णमोकार मन्त्र अपराजित है, अन्य किसी मन्त्र-द्वारा इसकी शक्ति प्रतिहत – अवरुद्ध नही की जा सकती है, इसमें अद्भुत सामर्थ्य निहित है। समस्त विघ्नोंको क्षण-भरमें नष्ट करनेमें समर्थ है। इसके द्वारा भूत, पिशाच, शाकिनी, डाकिनी, सर्प, सिंह, अग्नि आदिके विघ्नोको क्षण-भरमें ही दूर किया जा सकता है। जिस प्रकार हलाहल विष तत्काल अपना फल देता और उसका फल अव्यर्थ होता है, उसी प्रकार णमोकार मन्त्र भी तत्काल शुभ पुण्यका आस्रव करता है तथा अशुभोदयके प्रभावको क्षीण करता है। यह मन्त्र सम्पत्ति प्राप्त करनेका एक प्रधान साधन है तथा सम्यक्त्वकी वृद्धिमे सहायक होता है। मनुष्य जीवन-भर पापास्रव करनेपर भी अन्तिम समयमें इस महामन्त्रके स्मरणके प्रभावसे स्वर्गादि सुखोंको प्राप्त कर लेता है। इसलिए इस महामन्त्रका महत्त्व बतलाते हुए कहा गया है –

> कृत्वा पापसहस्राणि हत्वा जन्तुशतानि च।
> अमुं मन्त्रं समाराध्य तिर्यञ्चोऽपि दिवं गताः॥
>
> —ज्ञानार्णव

अर्थात्—तिर्यंच पशु-पक्षी, जो मांसाहारी, क्रूर है, जैसे सर्प, सिंहादि; जीवनमें सहस्रों प्रकारके पाप करते हैं। ये अनेक प्राणियोंकी हिंसा करते हैं, मांसाहारी होते हैं तथा इनमें क्रोध, मान, माया और लोभ कषायोंकी तीव्रता होती है; फिर भी अन्तिम समयमे किसी दयालु-द्वारा णमोकार-मन्त्रका श्रवण करनेमात्रसे उस निन्द्य तिर्यंच पर्यायका त्याग कर स्वर्गमें देव गतिको प्राप्त होते है।

भैया भगवतीदासने णमोकार मन्त्रको समस्त सिद्धियोंका दायक बताया है और अहर्निश इसके जाप करनेपर जोर दिया है। इस मन्त्रके जाप करनेसे सभी प्रकारकी बाधाएँ नष्ट हो जाती है। कहा है –

> जहाँ जपें णमोकार वहाँ अघ कैसे आवें।
> जहाँ जपें णमोकार वहाँ विंतर भग जावें॥

जहाँ जपें णमोकार वहाँ सुख सम्पति होई ।
जहाँ जपें णमोकार वहाँ दुःख रहे न कोई ॥
णमोकार जपत नवनिधि मिलैं, सुख समूह आवे निकट ।
'भैया' नित जपवो करो, महामन्त्र णमोकार है ॥

यह णमोकार मन्त्र सभी प्रकारकी आकुलताओंको दूर करनेवाला और सभी प्रकारकी शान्ति एवं समृद्धियोंका दाता है। इसकी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे बड़े-बड़े कार्य क्षण-भरमें सिद्ध हो जाते हैं। जिस प्रकार रसायनके सम्पर्कसे लौह भस्म आरोग्यप्रद हो जाता है, उसी प्रकार इस महामन्त्रकी ध्वनियोंके स्मरण, मननसे सभी प्रकारकी अद्भुत सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। आचार्य वादीभसिंहने क्षत्रचूड़ामणिमें बताया है—

मरणक्षणलब्धेन येन श्वा देवताऽजनि ।
पञ्चमन्त्रपदं जप्यमिदं केन न धीमता ॥

—१०१४

अर्थात् मरणोन्मुख कुत्तेको जीवन्धर स्वामीने करुणावश णमोकार मन्त्र सुनाया था, इस मन्त्रके प्रभावसे वह पापाचारी श्वान देवताके रूपमें उत्पन्न हुआ। अतः सिद्ध है कि यह मन्त्र आत्मविशुद्धिका बहुत बड़ा कारण है।

बताया गया है कि णमोकार मन्त्रके एक[१] अक्षरका भी भावसहित स्मरण करनेसे सात सागर तक भोगा जानेवाला पाप नष्ट हो जाता है, एक पदका भावसहित स्मरण करनेसे पचास सागर तक भोगे जानेवाले पापका नाश होता है और समग्र मन्त्रका भक्तिभावसहित विधिपूर्वक स्मरण करनेसे पाँच-सौ सागर तक भोगे जानेवाले पापका नाश हो जाता है। अभक्त प्राणी भी इस मन्त्रके स्मरणसे स्वर्गादिके सुखोंको प्राप्त करता है तथा भक्त प्राणी भी इस मन्त्रके जापके प्रभावसे अनेक परिणामोंको इतना निर्मल बना लेता है, जिससे उसके भव-भवान्तरके

१. नवकार इक्कक्खर पावं फेडेइ सत्त सयराणं ।
पन्नासं च पएण सागर पणासया समग्गेणं ॥१॥
जो गुणइ लक्खमेगं, पूएइ जिणनमुक्कारं ।
तित्थयर नामगोअं, सो बंधइ नत्थि संदेहो ॥२॥

संचित पाप नष्ट हो जाते हैं और वह इतना प्रबल पुण्यास्रव करता है, जिससे परम्परानिर्वाणकी प्राप्ति हो जाती है। सिद्धसेनने नमस्कार माहात्म्यमें बताया है —

> योऽसंख्यदुःखक्षयकारणस्मृतिः य ऐहिकामुष्मिकसौख्यकामधुक् ।
> यो दुष्षमायामपि कल्पपादपो मन्त्राधिराजः स कथं न जप्यते ॥
> न यद्दीपेन सूर्येण चन्द्रेणाप्यपरेण वा ।
> तमस्तदपि निर्नाम स्यान्नमस्कारतेजसा ॥
>
> —न० मा०, षष्ठ अ०, श्लो० २३, २४

अर्थात्—भावसहित स्मरण किया गया यह णमोकारमन्त्र असंख्य दुःखोंको क्षय करनेवाला तथा इहलौकिक और पारलौकिक समस्त सुखोंको देनेवाला है। इस पंचमकालमें कल्पवृक्षके समान सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला यह मन्त्र ही है, अतः संसारी प्राणियोंको इसका जप अवश्य करना चाहिए। जिस अज्ञान, पाप और संक्लेशके अन्धकारको सूर्य, चन्द्र और दीपक दूर नहीं कर सकते हैं, उस घने अन्धकारको यह मन्त्र नष्ट कर देता है।

इस मन्त्रके चिन्तन, स्मरण और मनन करनेसे भूत, प्रेत, ग्रहबाधा, राजभय, चोरभय, दुष्टभय, रोगभय आदि सभी कष्ट दूर हो जाते हैं। राग-द्वेषजन्य अशान्ति भी इस मन्त्रके जापसे दूर होती है। यह इस पंचमकालमें कल्पवृक्ष, चिन्तामणिरत्न या कामधेनुके समान अभीष्ट फल देनेवाला है। जिस प्रकार समुद्र-के मन्थनसे सारभूत अमृत एवं दधिके मन्थनसे सारभूत घृत उपलब्ध होता है, उसी प्रकार आगमका सारभूत यह णमोकार मन्त्र है। इसकी आराधनासे सभी प्रकारके कल्याण प्राप्त होते हैं। श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी आदि-की प्राप्ति इस मन्त्रके जपसे होती है। कर्मकी ग्रन्थिको खोलनेवाला यही मन्त्र है तथा भावपूर्वक नित्य जप करनेसे निर्वाण पदकी प्राप्ति होती है।

भगवान्की पूजा, स्वाध्याय, संयम, तप, दान और गुरुभक्तिके साथ प्रतिदिन इस णमोकार मन्त्रका तीनों सन्ध्याओंमें जो भक्तिभावसहित जाप करता है, वह इतना पुण्यास्रव करता है, जिससे चक्रवर्ती, अहमिन्द्र, इन्द्र आदिके पदोंको प्राप्त करनेकी शक्ति उत्पन्न हो जाती है। ऐसा व्यक्ति अपने पुण्यातिशयके कारण तीर्थंकर भी बन सकता है। अपने सातिशय पुण्यके कारण वह तीर्थ-प्रवर्तक पदको

प्राप्त हो जाता है। तथा जो व्यक्ति इस मन्त्रका आठ करोड़[1], आठ लाख, आठ हजार और आठ सौ आठ बार लगातार जाप करता है, वह शाश्वतपदको प्राप्त हो जाता है। लगातार सात लाख जप करनेवाला व्यक्ति सभी प्रकारके कष्टोंसे मुक्ति प्राप्त करता है तथा दारिद्रय भी उसका नष्ट हो जाता है। धूप देकर एक लाख बार जपनेवाला भी अपनी अभीष्ट मनःकामनाको पूर्ण करता है। इस मन्त्रका अचिन्त्य प्रभाव है।

णमोकारमन्त्रके जाप करनेकी विधि

णमोकार मन्त्रका जाप करनेके लिए सर्वप्रथम आठ प्रकारकी शुद्धियोंका होना आवश्यक है। १. द्रव्यशुद्धि – पंचेन्द्रिय तथा मनको वश कर कषाय और परिग्रहका शक्तिके अनुसार त्याग कर कोमल और दयालु-चित्त हो जाप करना। यहाँ द्रव्यशुद्धिका अभिप्राय पात्रकी अन्तरंग शुद्धिसे है। जाप करनेवालेको यथाशक्ति अपने विकारोंको हटाकर ही जाप करना चाहिए। अन्तरंगसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान, माया आदि विकारोंको हटाना आवश्यक है। २. क्षेत्रशुद्धि – निराकुल स्थान, जहाँ हल्ला-गुल्ला न हो तथा डाँस, मच्छर आदि बाधक जन्तु न हों। चित्तमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाले उपद्रव एवं शीत-उष्णकी बाधा न हो, ऐसा एकान्त निर्जन स्थान जाप करनेके लिए उत्तम है। घरके किसी एकान्त प्रदेशमें, जहाँ अन्य किसी प्रकारकी बाधा न हो और पूर्ण शान्ति रह सके, उस स्थानपर भी जाप किया जा सकता है। ३ समय शुद्धि – प्रातः, मध्याह्न और सन्ध्या समय कमसे कम ४५ मिनिट तक लगातार इस महामन्त्रका जाप करना चाहिए। जाप करते समय निश्चिन्त रहना एवं निराकुल होना परम आवश्यक है। ४ आसन-शुद्धि – काष्ठ, शिला, भूमि, चटाई या शीतलपट्टीपर पूर्वदिशा या उत्तरदिशाकी ओर मुँह करके पद्मासन, खड्गासन या अर्धपद्मासन होकर क्षेत्र तथा कालका प्रमाण करके मौनपूर्वक इस मन्त्रका जाप करना चाहिए। ५. विनयशुद्धि – जिस आसनपर बैठकर जाप करना हो, उस आसनको सावधानीपूर्वक ईर्यापथ शुद्धिके साथ साफ करना चाहिए तथा जाप करनेके लिए नम्रतापूर्वक भीतरका अनुराग भी रहना आवश्यक है। जबतक जाप करनेके लिए भीतरका उत्साह नहीं होगा,

---

१. अट्ठेव य अट्ठसया, अट्ठसहस्स अट्ठलक्ख अट्ठकोडीओ।
जो गुणइ भत्तिजुत्तो, सो पावइ सासयं ठाणं ॥३॥

तबतक सच्चे मनसे जाप नहीं किया जा सकता। ६. मन:शुद्धि – विचारोंकी गन्दगीका त्याग कर मनको एकाग्र करना, चंचल मन इधर-उधर न भटकने पाये इसकी चेष्टा करना, मनको पूर्णतया पवित्र बनानेका प्रयास करना ही इस शुद्धिमें अभिप्रेत है। ७. वचनशुद्धि – धीरे-धीरे साम्यभाव-पूर्वक इस मन्त्रका शुद्ध जाप करना अर्थात् उच्चारण करनेमें अशुद्धि न होने पाये तथा उच्चारण मन-मनमें ही होना चाहिए। ८. कायशुद्धि – शौचादि शंकाओंसे निवृत्त होकर यत्नाचारपूर्वक शरीर शुद्ध करके हलन-चलन क्रियासे रहित जाप करना चाहिए। जापके समय शारीरिक शुद्धिका भी ध्यान रखना चाहिए।

इस महामन्त्रका जाप यदि खड़े होकर करना हो तो तीन-तीन श्वासोच्छ्वासोंमें एक बार पढ़ना चाहिए। एक सौ आठ बारके जापमें कुल ३२४ श्वासोच्छ्वास – साँस लेना चाहिए।

जाप करनेकी विधियाँ – कमल जाप्य, हस्तांगुलि जाप्य और माला जाप्य।

कमल जापविधि – अपने हृदयमें आठ पाँखुड़ीके एक श्वेत कमलका विचार करे। उसकी प्रत्येक पाँखुड़ीपर पीतवर्णके बारह-बारह बिन्दुओंकी कल्पना करे तथा मध्यके गोलवृत्त – कर्णिकामें बारह बिन्दुओंका चिन्तन करे। इन १०८ बिन्दुओंके प्रत्येक बिन्दुपर एक-एक मन्त्रका जाप करता हुआ १०८ बार इस मन्त्रका जाप करे। कमलकी आकृति निम्न प्रकार चिन्तन की जायेगी।

मन्त्र जापका हेतु
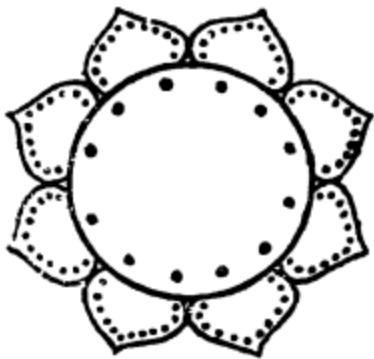
प्रतिदिन व्यक्ति १०८ प्रकारके पाप करता है, अतः १०८ बार मन्त्रका जाप करनेसे उस पापका नाश होता है। आरम्भ, समारम्भ, संरम्भ, इन तीनोंको मन, वचन, कायसे गुणा किया तो ३ × ३ = ९ हुआ। इनको कृत, कारित, अनुमोदित और कषायोंसे गुणा किया तो ९ × ३ × ४ = १०८। बीचवाले गोलवृत्तमें १२

बिन्दु हैं और आठ दलोंमें-से प्रत्येकमें बारह-बारह बिन्दु हैं। इन १२ × ८ = ९६, ९६ + १२ = १०८ बिन्दुओंपर १०८ बार यह मन्त्र पढ़ा जाता है।

हस्तांगुलिजाप—अपने हाथकी अँगुलियोंपर जाप करनेकी प्रक्रिया यह है कि मध्यमा – बीचकी अँगुलीके बीच पोरुयेपर इस मन्त्रको पढ़े, फिर उस अँगुलीके ऊपरी पोरुयेपर, फिर तर्जनी – अँगूठेके पासवाली अँगुलीके ऊपरी पोरुयेपर मन्त्र जाप करे। फिर उसी अँगुलीके बीच पोरुयेपर मन्त्र पढ़े, फिर नीचेके पोरुयेपर जाप करे। अनन्तर बीचकी अँगुलीके निचले पोरुयेपर मन्त्र पढ़े, फिर अनामिका – सबसे छोटी अँगुलीके साथवाली अँगुलीके निचले पोरुयेपर, फिर बीच तथा ऊपरके पोरुयेपर क्रमसे जाप करे। इसी प्रकार पुनः बीचकी अँगुलीके बीचके पोरुयेसे जाप आरम्भ करे। इस प्रकार नौ-नौ बार मन्त्र जपता रहे, इस तरह १२ बार जपनेसे १०८ बारमें पूरा एक जाप होता है।

मालाजाप—एक-सौ आठ दानेकी माला-द्वारा जाप करे।

इन तीनों जापकी विधियोंमें उत्तम कमल-जाप-विधि है। इसमें उपयोग अधिक स्थिर रहता है। तथा कर्म-बन्धनको क्षीण करनेके लिए यही जापविधि अधिक सहायक है। सरल विधि माला-जाप है। इसमें किसी भी तरहका झंझट-झगड़ा नहीं है। सीधे माला लेकर जाप कर लेना है। जाप करनेके पश्चात् भगवान्का दर्शन करना चाहिए। बताया गया है –

> ततः समुत्थाय जिनेन्द्रबिम्बं पश्येत्परं मंगलदानदक्षम्।
> पापप्रणाशं परपुण्यहेतुं सुरासुरैः सेवितपादपद्मम्॥

अर्थात्—प्रातःकालके जापके पश्चात् चैत्यालयमें जाकर सब तरहके मंगल करनेवाले, पापोंको क्षय करनेवाले, सातिशय पुण्यके कारण एवं सुरासुरों-द्वारा वन्दनीय श्रीजिनेन्द्र भगवान्के दर्शन करना चाहिए।

इस णमोकार मन्त्रका जाप विभिन्न प्रकारको इष्टसिद्धियों और अरिष्ट-विनाशनोके लिए अनेक प्रकारसे किया जाता है। किस कार्यके लिए किस प्रकार जाप किया जायेगा, इसका आगे निरूपण किया जायेगा। जापका फल बहुत कुछ विधिपर निर्भर है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचनके अनन्तर यह णमोकार मन्त्र जिनागमका सार कहा गया है। यह समस्त द्वादशांगरूप बतलाया गया है। अतः इस कथनकी सार्थकता

सिद्ध की जाती है।

आचार्योंने द्वादशांग जिनवाणीका वर्णन करते हुए प्रत्येककी पदसंख्या तथा समस्त श्रुतज्ञानके अक्षरोंकी संख्याका वर्णन किया है। इस महामन्त्रमें समस्त

द्वादशांगरूप णमोकारमन्त्र

श्रुतज्ञान विद्यमान है। क्योंकि पंचपरमेष्ठीके अतिरिक्त अन्य श्रुतज्ञान कुछ नहीं है। अतः यह महामन्त्र समस्त द्वादशांग जिनवाणी रूप है। इस महामन्त्रका विश्लेषण करनेपर निम्न निष्कर्ष सामने आते हैं—

इस मन्त्रमें ३५ अक्षर हैं। ५ पद हैं। णमो अरिहंताणं = ७ अक्षर, णमो सिद्धाणं = ५, णमो आइरियाणं = ७, णमो उवज्झायाणं = ७, णमो लोए सव्वसाहूणं = ९ अक्षर, इस प्रकार इस मन्त्रमें कुल ३५ अक्षर हैं। स्वर और व्यंजनोंका विश्लेषण करनेपर प्रतीत होता है कि 'णमो अरिहंताणं = ६ व्यंजन, णमो सिद्धाणं = ५ व्यंजन, णमो आइरियाणं = ५ व्यंजन, णमो उवज्झायाणं = ६ व्यंजन; णमो लोए सव्वसाहूणं = ८, इस प्रकार इस मन्त्रमें कुल ६ + ५ + ५ + ६ + ८ = ३० व्यंजन हैं। स्वर निम्न प्रकार हैं—

इस मन्त्रमें सभी वर्ण अजन्त हैं, यहाँ हलन्त एक भी वर्ण नहीं है। अतः ३५ अक्षरोंमें ३५ स्वर मानने चाहिए। पर वास्तविकता यह है कि ३५ अक्षरोंके होनेपर भी वहाँ स्वर ३४ हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि 'णमो अरिहंताणं' इस पदमें ६ ही स्वर माने जाते हैं। मन्त्रशास्त्रके व्याकरणके अनुसार 'णमो अरिहंताणं' पदके 'अ' का लोप हो जाता है। यद्यपि प्राकृतमें "एङः"[1] — नेत्यनुवर्तते। एङिन्त्येदोतौ। एदोतोः संस्कृतोक्तः सन्धिः प्राकृते तु न भवति। यथा देवो अहिणंदणो, अहो अच्चरिअं, इत्यादि। सूत्रके अनुसार सन्धि न होनेके कारण 'अ' का अस्तित्व ज्योंका त्यों रहता है, अका लोप या खण्डाकार नहीं होता है; किन्तु मन्त्रशास्त्रमे 'बहुलम्' सूत्रकी प्रवृत्ति मानकर 'स्वरयोरव्यवधाने प्रकृतिभावो लोपो वैकस्य'[2] इस सूत्रके अनुसार 'अरिहंताणं' वाले पदके 'अ' का लोप विकल्पसे हो जाता है, अतः इस पदमें छह ही स्वर माने जाते है। इस प्रकार कुल मन्त्रमें ३५ अक्षर होनेपर भी ३४ ही स्वर रहते हैं। कुल स्वर और

१. त्रिविक्रमदेवका प्राकृत व्याकरण, पृ० ४, सूत्रसंख्या २१।
२. जैनसिद्धान्तकौमुदी, पृ० ४, सूत्रसंख्या १।२।२।

व्यंजनोंकी संख्या ३४ + ३० = ६४ है। मूल वर्णोंकी संख्या भी ६४ ही है। प्राकृत भाषाके नियमानुसार अ, इ, उ और ए मूल स्वर तथा ज झ ण त द ध य र ल व स और ह् ये मूल व्यंजन इस मन्त्रमें निहित हैं। अतएव ६४ अनादि मूल वर्णोंको लेकर समस्त श्रुतज्ञानके अक्षरोंका प्रमाण निम्न प्रकार निकाला जा सकता है। गाथासूत्र निम्न प्रकार है –

चउसट्ठिपदं विरलिय दुगं च दाउण सगुणं किच्चा।
सऊणं च कए पुण सुदणाणस्सक्खरा होंति॥

अर्थ—उक्त चौसठ अक्षरोंका विरलन करके प्रत्येक के ऊपर दोका अंक देकर परस्पर सम्पूर्ण दोके अंकोंका गुणा करनेसे लब्धराशिमें एक घटा देनेसे जो प्रमाण रहता है, उतने ही श्रुतज्ञानके अक्षर होते हैं।

यहाँ ६४ अक्षरोंका विरलन कर रखा तो—

२ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २
१। १। १। १। १। १। १। १। १। १। १। १। १। १ .... १। =
१८४४६७४४०७३७०९५५१६१६—१ = १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५

समस्त श्रुतज्ञानके अक्षर। इन अक्षरोंका प्रमाण गाथामे निम्न प्रकार कहा गया है –

एकट्ठ च च य छस्सत्तयं च च य सुण्णसत्ततियसत्ता।
सुण्णं णव पण पंच य एक्कं छक्केक्कगो य पणयं च॥

अर्थात्—एक आठ चार-चार छह सात चार-चार शून्य सात तीन सात शून्य नव पंच-पंच एक छह एक पाँच समस्त श्रुतज्ञानके अक्षर है।

इस प्रकार णमोकार मन्त्रमें समस्त श्रुतज्ञानके अक्षर निहित है। क्योकि अनादि निधन मूलाक्षरोंपर-से ही उक्त प्रमाण निकाला गया है। अतः संक्षेपमें समस्त जिनवाणीरूप यह मन्त्र है। इसका पाठ या स्मरण करनेसे कितना महान् पुण्यका बन्ध होता है। तथा केवल ज्ञान-लक्ष्मीकी प्राप्ति भी इस मन्त्रकी आराधनासे होती है। ज्ञानार्णवमे शुभचन्द्राचार्यने इस मन्त्रकी आराधनाका फल बताते हुए लिखा है –

श्रियमात्यन्तिकीं प्राप्ता योगिनो येऽत्र केचन।
अमुमेव महामन्त्रं ते समाराध्य केवलम्॥

प्रभावमस्य निःशेषं योगिनामप्यगोचरम् ।
अनभिज्ञो जनो ब्रूते यः स मन्येऽनिलार्दितः ॥
अनेनैव विशुद्ध्यन्ति जन्तवः पापपङ्किताः ।
अनेनैव विमुच्यन्ते भवक्लेशान्मनीषिणः ॥

अर्थात् इस लोकमें जितने भी योगियोने आत्यन्तिकी लक्ष्मी – मोक्षलक्ष्मी-को प्राप्त किया है, उन सबोंने श्रुतज्ञानभूत इस महामन्त्रकी आराधना करके ही। समस्त जिनवाणीरूप इस महामन्त्रकी महिमा एवं इसका तत्काल होनेवाला अमिट प्रभाव योगी मुनीश्वरोंके भी अगोचर हैं। वे इसके वास्तविक प्रभावका निरूपण करनेमें असमर्थ हैं। जो साधारण व्यक्ति इस श्रुतज्ञानरूप मन्त्रका प्रभाव कहना चाहता है, वह वायुवश प्रलाप करनेवाला ही माना जायेगा। इस णमोकारमन्त्रका प्रभाव केवली ही जाननेमें समर्थ हैं। जो प्राणी पापसे मलिन हैं, वे इसी मन्त्रसे विशुद्ध होते हैं और इसी मन्त्रके प्रभावसे मनीषीगण संसारके क्लेशोंसे छूटते हैं।

स्वाध्याय और ध्यानका जितना सम्बन्ध आत्मशोधनके साथ है, उतना ही इस मन्त्रका भी सम्बन्ध आत्मकल्याणके साथ है। इस मन्त्रका १०८ बार जाप करनेसे द्वादशांग जिनवाणीके स्वाध्यायका पुण्य होता है तथा मन एकाग्र होता है। इस मन्त्रके प्रति अटूट श्रद्धा या विश्वास होनेसे ही यह मन्त्र कार्यकारी होता है। द्वादशांग जिनवाणीका इतना सरल, सुसंस्कृत एवं सच्चा रूप कहीं नहीं मिल सकता है। ज्ञानरूप आत्माको इसका अनुभव होते ही श्रुतज्ञानकी प्राप्ति होती है। ज्ञानावरणीय कर्मकी निर्जरा या क्षयोपशम रूप शक्ति इस मन्त्रके उच्चारणसे आती है तथा आत्मासे महान् प्रकाश उत्पन्न हो जाता है। अतएव यह महामन्त्र समस्त श्रुतज्ञान रूप है, इसमें जिनवाणीका समस्त रूप निहित है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे यह विचारणीय प्रश्न है कि णमोकार मन्त्रका मनपर क्या प्रभाव पड़ता है? आत्मिक शक्तिका विकास किस प्रकार होता है, जिससे इस मन्त्रको समस्त कार्योंमें सिद्धि देनेवाला कहा गया है। मनोविज्ञान मानता है कि मानवकी दृश्य क्रियाएँ उनके चेतन मनमें और अदृश्य क्रियाएँ अचेतन मनमें होती है। मनकी इन दोनों क्रियाओंको मनोवृत्ति कहा जाता है। यों तो साधारणतः मनोवृत्ति शब्द चेतन मनकी क्रियाके बोधके लिए प्रयुक्त होता

मनोविज्ञान और णमोकार मन्त्र

है। प्रत्येक मनोवृत्तिके तीन पहलू हैं – ज्ञानात्मक, वेदनात्मक और क्रियात्मक। मनोवृत्तिके ये तीनों पहलू एक दूसरेसे अलग नहीं किये जा सकते हैं। मनुष्य-को जो कुछ ज्ञान होता है, उसके साथ-साथ वेदना और क्रियात्मक भावकी भी अनुभूति होती है। अनात्मक मनोवृत्तिके संवेदन, प्रत्यक्षीकरण, स्मरण, कल्पना और विचार ये पाँच भेद हैं। संवेदनात्मकके संवेग, उमंग, स्थायीभाव और भावनाग्रन्थि ये चार भेद एवं क्रियात्मक मनोवृत्तिके सहज क्रिया, मूलवृत्ति, आदत, इच्छित क्रिया और चरित्र ये पाँच भेद किये गये हैं। णमोकारमन्त्रके स्मरणसे ज्ञानात्मक मनोवृत्ति उत्तेजित होती है, जिससे उससे अभिन्नरूपमें सम्बद्ध रहने-वाली उमंग वेदनात्मक अनुभूति और चरित्र नामक क्रियात्मक अनुभूतिको उत्ते-जना मिलती है। अभिप्राय यह है कि मानव मस्तिष्कमें ज्ञानवाही और क्रिया-वाही ये दो प्रकारकी नाड़ियाँ होती हैं। इन दोनों नाड़ियोंका आपसमें सम्बन्ध होता है, परन्तु इन दोनोंके केन्द्र पृथक् हैं। ज्ञानवाही नाड़ियाँ और मानव मस्तिष्कके ज्ञानकेन्द्र मानवके ज्ञानविकासमें एवं क्रियावाही नाड़ियाँ और मानव मस्तिष्कके क्रियाकेन्द्र उसके चरित्रके विकासकी वृद्धिके लिए कार्य करते है। क्रियाकेन्द्र और ज्ञानकेन्द्रका घनिष्ठ सम्बन्ध होनेके कारण णमोकार मन्त्रकी आराधना, स्मरण और चिन्तनसे ज्ञानकेन्द्र और क्रियाकेन्द्रोंका समन्वय होनेसे मानव मन सुदृढ़ होता है और आत्मिक विकासकी प्रेरणा मिलती है।

मनुष्यका चरित्र उसके स्थायी भावोंका समुच्चय मात्र है, जिस मनुष्यके स्थायीभाव जिस प्रकारके होते है, उसका चरित्र भी उसी प्रकारका होता है। मनुष्यका परिमार्जित और आदर्श स्थायीभाव ही हृदयकी अन्य प्रवृत्तियोका नियन्त्रण करता है। जिस मनुष्यके स्थायीभाव सुनियन्त्रित नही अथवा जिसके मनमें उच्चादर्शोंके प्रति श्रद्धास्पद स्थायीभाव नहीं है, उसका व्यक्तित्व सुगठित तथा चरित्र सुन्दर नहीं हो सकता है। दृढ़ और सुन्दर चरित्र बनानेके लिए यह आवश्यक है कि मनुष्यके मनमे उच्चादर्शोंके प्रति श्रद्धास्पद स्थायीभाव हों तथा उसके अन्य स्थायीभाव उसी स्थायीभावके द्वारा नियन्त्रित हों। स्थायी-भाव ही मानवके अनेक प्रकारके विचारोंके जनक होते हैं। इन्हीके द्वारा मानवकी समस्त क्रियाओंका संचालन होता है। उच्च आदर्शजन्य स्थायीभाव और विवेक इन दोनोंमें घनिष्ठ सम्बन्ध है। कभी-कभी विवेकको छोड़कर स्थायी भावोंके

अनुसार ही जीवनक्रियाएँ सम्पन्न की जाती हैं। जैसे विवेकके मना करनेपर भी श्रद्धावश धार्मिक प्राचीन कृत्योंमें प्रवृत्तिका होना तथा किसीसे झगड़ा हो जानेपर उसकी झूठी निन्दा सुननेकी प्रवृत्तिका होना। इन कृत्योंमें विवेक साथ नहीं है, केवल स्थायीभाव ही कार्य कर रहा है। विवेक मानवकी क्रियाओंको रोक या मोड़ सकता है, उसमें स्वयं क्रियाओंके संचालनकी शक्ति नहीं है। अतएव आचरणको परिमार्जित और विकसित करनेके लिए केवल विवेक प्राप्त करना ही आवश्यक नहीं है; बल्कि आवश्यक है उसके स्थायीभावको योग्य और दृढ़ बनाना।

व्यक्तिके मनमें जबतक किसी सुन्दर आदर्शके प्रति या किसी महान् व्यक्तिके प्रति श्रद्धा और प्रेमके स्थायीभाव नहीं, तबतक दुराचारसे हटकर सदाचारमें उनकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती है। ज्ञानकी मात्र जानकारीसे दुराचार नहीं रोका जा सकता है, इसके लिए उच्च आदर्शके प्रति श्रद्धा भावनाका होना अनिवार्य है। णमोकार मन्त्र ऐसा पवित्र उच्च आदर्श है, जिससे सुदृढ़ स्थायीभावकी उत्पत्ति होती है। यतः णमोकार मन्त्रका मनपर जब बार-बार प्रभाव पड़ेगा अर्थात् अधिक समय तक इस महामन्त्रकी भावना जब मनमें बनी रहेगी तब स्थायी भावोंमें परिष्कार हो ही जायेगा और ये ही नियन्त्रित स्थायीभाव मानवके चरित्रके विकासमें सहायक होंगे। इस महामन्त्रके मनन, स्मरण, चिन्तन और ध्यानमें अर्जित भावों – स्थायीरूपसे स्थित कुछ संस्कारमें जिनमें अधिकांश संस्कार विषय-कषाय-सम्बन्धी हो होते – में परिवर्तन होता है। मंगलमय आत्माओंके स्मरणसे मन पवित्र होता हैं और पुरातन प्रवृत्तियोंमें शोधन होता है, जिससे सदाचार व्यक्तिके जीवनमें आता है। उच्च आदर्शसे उत्पन्न स्थायीभावके अभावमें ही व्यक्ति दुराचारकी ओर प्रवृत्त होता है। अतएव मनोविज्ञान स्पष्ट रूपसे कहता है कि मानसिक उद्वेग, वासना एवं मानसिक विकार उच्च आदर्शके प्रति श्रद्धाके अभावमें दूर नहीं किये जा सकते हैं। विकारोंको अधीन करनेकी प्रतिक्रियाका वर्णन करते हुए कहा गया है कि परिणाम-नियम, अभ्यास-नियम और तत्परता-नियमके द्वारा उच्चादर्शको प्राप्त कर विवेक और आचरणको दृढ़ करनेसे ही मानसिक विकार और सहज पाशविक प्रवृत्तियाँ दूर की जा सकती हैं।

णमोकार मन्त्रके परिणाम-नियमका अर्थ यहाँपर है कि इस मन्त्रकी आराधना

कर व्यक्ति जीवनमें सन्तोषकी भावनाको जाग्रत् करे तथा समस्त सुखोंका केन्द्र इसीको समझे। अभ्यास-नियमका तात्पर्य है कि इस मन्त्रका मनन, चिन्तन और स्मरण निरन्तर करता जाये। यह सिद्धान्त है कि जिस योग्यताको अपने भीतर प्रकट करना हो, उस योग्यताका बार-बार चिन्तन, स्मरण किया जाये। प्रत्येक व्यक्तिका चरम लक्ष्य ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्यरूप शुद्ध आत्मशक्तिको प्राप्त करना है; यह शुद्ध अमूर्तिक रत्नत्रय-स्वरूप सच्चिदानन्द आत्मा ही प्राप्त करने योग्य है, अतएव रत्नत्रयस्वरूप पंचपरमेष्ठी वाचक णमोकार महामन्त्रका अभ्यास करना परम आवश्यक है। इस मन्त्रके अभ्यास-द्वारा शुद्ध आत्मस्वरूपमें तत्परताके साथ प्रवृत्ति करना जीवनमें तत्परता नियममें उतारना है। मनुष्यमें अनुकरणकी प्रधान प्रवृत्ति पायी जाती है, इसी प्रवृत्तिके कारण पंचपरमेष्ठीका आदर्श सामने रखकर उनके अनुकरणसे व्यक्ति अपना विकास कर सकता है।

मनोविज्ञान मानता है कि मनुष्यमें भोजन ढूँढ़ना, भागना, लड़ना, उत्सुकता, रचना, संग्रह, विकर्षण, शरणागत होना, काम-प्रवृत्ति, शिशुरक्षा, दूसरोंको चाह, आत्मप्रकाशन, विनीतता और हँसना ये चौदह मूलप्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं। इन मूलप्रवृत्तियोंका अस्तित्व संसारके सभी प्राणियोंमें पाया जाता है, पर मनुष्यकी मूलप्रवृत्तियोंमें यह विशेषता है कि मनुष्य इनमें समुचित परिवर्तन कर लेता है। केवल मूलप्रवृत्तियों-द्वारा संचालित जीवन असभ्य और पाशविक कहलायेगा। अतः मूलप्रवृत्तियोंमें Repression दमन, Inhibition विलयन, Redirection मार्गान्तरीकरण और Sublimation शोधन ये चार परिवर्तन होते रहते हैं।

प्रत्येक मूलप्रवृत्तिका बल उसके बराबर प्रकाशित होनेसे बढ़ता है। यदि किसी मूलप्रवृत्तिके प्रकाशनपर कोई नियन्त्रण नहीं रखा जाता है, तो वह मनुष्यके लिए लाभकारी न बनकर हानिप्रद हो जाती है। अतः दमनकी क्रिया होनी चाहिए। उदाहरणार्थ यों कहा जाता है कि संग्रहकी प्रवृत्ति यदि संयमित रूपमें रहे तो उससे मनुष्यके जीवनकी रक्षा होती है, किन्तु जब यह अधिक बढ़ जाती है तो कृपणता और चोरीका रूप धारण कर लेती है; इसी प्रकार द्वन्द्व या युद्धकी प्रवृत्ति प्राण-रक्षाके लिए उपयोगी है; किन्तु जब यह अधिक बढ़ जाती है तो यह मनुष्यकी रक्षा न कर उसके विनाशका कारण बन जाती है। इसी प्रकार अन्य मूलप्रवृत्तियोंके सम्बन्धमें भी कहा जा सकता है। अतएव जीवनको उपयोगी

बनानेके लिए आवश्यक है कि मनुष्य समय-समयपर अपनी प्रवृत्तियोंका दमन करे और उन्हें अपने नियन्त्रणमें रखे। व्यक्तित्वके विकासके लिए मूलप्रवृत्तियोंका दमन उतना ही आवश्यक है, जितना उनका प्रकाशन।

मूलप्रवृत्तियोंका दमन विचार या विवेक-द्वारा होता है। किसी बाह्य सत्ता-द्वारा किया गया दमन मानव जीवनके विकासके लिए हानिकारक होता है। अतः बचपनसे ही णमोकार मन्त्रके आदर्श-द्वारा मानवको मूलप्रवृत्तियोंका दमन सरल और स्वाभाविक है। इस मन्त्रका आदर्श हृदयमें श्रद्धा और दृढ विश्वासको उत्पन्न करता है; जिससे मूलप्रवृत्तियोंका दमन करनेमे बड़ी सहायता मिलती है। णमोकार मन्त्रके उच्चारण, स्मरण, चिन्तन, मनन और ध्यान-द्वारा मनपर इस प्रकारके सस्कार पडते है, जिससे जीवनमे श्रद्धा और विवेकका उत्पन्न होना स्वाभाविक है। क्योंकि मनुष्यका जीवन श्रद्धा और सद्विचारोंपर ही अवलम्बित है, श्रद्धा और विवेकको छोडकर मनुष्य मनुष्यकी तरह जीवित नही रह सकता है अतः जीवनकी मूलप्रवृत्तियोका दमन या नियन्त्रण करनेके लिए महामंगल वाक्य णमोकार मन्त्रका स्मरण परम आवश्यक है। इस प्रकारके धार्मिक वाक्योंके चिन्तनसे मूलप्रवृत्तियाँ नियन्त्रित हो जाती है तथा जन्मजात स्वभावमें परिवर्तन हो जाता है। अतः नियन्त्रणकी प्रवृत्ति धीरे-धीरे आती है। ज्ञानार्णवमें आचार्य शुभचन्द्रने बतलाया है कि महामंगल वाक्योंकी विद्युत्शक्ति आत्मामें इस प्रकारका झटका देती है, जिससे आहार, भय, मैथुन और परिग्रहजन्य संज्ञाएँ सहजमे परिष्कृत हो जाती है। जीवनके धरातलको उन्नत बनानेके लिए इस प्रकारके मंगल-वाक्योंको जीवनमें उतारना परम आवश्यक है। अतएव जीवनकी मूलप्रवृत्तियोके परिष्कारके लिए दमन क्रियाको प्रयोगमे लाना आवश्यक है।

मूलप्रवृत्तियोंके परिवर्तनका दूसरा उपाय विलयन है। यह दो प्रकारसे हो सकता है—निरोध-द्वारा और विरोध-द्वारा। निरोधका तात्पर्य है कि प्रवृत्तियों-को उत्तेजित होनेका ही अवसर न देना। इससे मूलप्रवृत्तियाँ कुछ समयमे नष्ट हो जाती हैं। विलियम जेम्सका कथन है कि यदि किसी प्रवृत्तिको अधिक काल तक प्रकाशित होनेका अवसर न मिले तो वह नष्ट हो जाती है। अतः धार्मिक आस्था-द्वारा व्यक्ति अपनी विकार प्रवृत्तियोंको अवरुद्ध कर उन्हें नष्ट कर सकता है। दूसरा उपाय जो कि विरोध-द्वारा प्रवृत्तियोंके विलयनके लिए कहा गया है, उसका

अर्थ यह है कि जिस समय एक प्रवृत्ति कार्य कर रही हो, उसी समय उसके विपरीत दूसरी प्रवृत्तिको उत्तेजित होने देना। ऐसा करनेसे—दो पारस्परिक विरोधी प्रवृत्तियोंके एक साथ उभड़नेसे दोनोंका बल घट जाता है। इस तरह दोनोंके प्रकाशनकी रीतिमें अन्तर हो जाता है अथवा दोनों शान्त हो जाती हैं। जैसे द्वन्द्व-प्रवृत्तिके उभड़नेपर यदि सहानुभूतिकी प्रवृत्ति उभाड़ दी जाये तो उक्त प्रवृत्तिका विलयन सरलतासे हो जाता है। णमोकार मन्त्रका स्मरण इस दिशामें भी सहायक सिद्ध होता है। इस शुभ-प्रवृत्तिके उत्पन्न होनेसे अन्य प्रवृत्तियाँ सहज-में विलीन की जा सकती हैं।

मूलप्रवृत्तिके परिवर्तनका तीसरा उपाय मार्गान्तरीकरण है। यह उपाय दमन और विलयनके उपायसे श्रेष्ठ है। मूलप्रवृत्तिके दमनसे मानसिक शक्ति संचित होती है, जबतक इस संचित शक्तिका उपयोग नहीं किया जाये, तबतक यह हानिकारक भी सिद्ध हो सकती है। णमोकार मन्त्रका स्मरण इस प्रकारका अमोघ अस्त्र है, जिसके द्वारा बचपनसे ही व्यक्ति अपनी मूलप्रवृत्तियोंका मार्गान्तरीकरण कर सकता है। चिन्तन करनेकी प्रवृत्ति मनुष्यमें पायी जाती है, यदि मनुष्य इस चिन्तनकी प्रवृत्तिमें विकारी भावनाओंको स्थान नहीं दे और इस प्रकारके मंगल-वाक्योंका ही चिन्तन करे तो चिन्तन-प्रवृत्तिका यह सुन्दर मार्गान्तरीकरण है। यह सत्य है कि मनुष्यका मस्तिष्क निरर्थक नहीं रह सकता है, उसमें किसी न किसी प्रकारके विचार अवश्य आवेंगे। अतः चरित्र भ्रष्ट करनेवाले विचारोंके स्थानपर चरित्र-वर्धक विचारोंको स्थान दिया जाये तो मस्तिष्ककी क्रिया भी चलती रहेगी तथा शुभ प्रभाव भी पड़ता जायेगा। ज्ञानार्णवमें शुभचन्द्राचार्यने बतलाया है—

अपास्य कल्पनाजालं चिदानन्दमये स्वयम्।
यः स्वरूपे लयं प्राप्तः स स्याद्रत्नत्रयास्पदम्॥
नित्यानन्दमयं शुद्धं चित्स्वरूपं सनातनम्।
पश्यात्मनि परं ज्योतिरद्वितीयमनव्ययम्॥

अर्थात्—समस्त कल्पनाजालको दूर करके अपने चैतन्य और आनन्दमय स्वरूपमें लीन होना, निश्चय रत्नत्रयकी प्राप्तिका स्थान है। जो इस विचारमें लीन रहता है कि मैं नित्य आनन्दमय हूँ, शुद्ध हूँ, चैतन्यस्वरूप हूँ, सनातन हूँ,

परमज्योति ज्ञानप्रकाशरूप हूँ, अद्वितीय हूँ, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यसहित हूँ, वह व्यक्ति व्यर्थके विचारोंसे अपनी रक्षा करता है, पवित्र विचार या ध्यानमें अपनेको लीन रखता है। यह मार्गान्तरीकरणका सुन्दर प्रयोग है।

मूलप्रवृत्तियोंके परिवर्तनका चौथा उपाय शोधन है। जो प्रवृत्ति अपने अपरिवर्तित रूपमें निन्दनीय कर्मोंमें प्रकाशित होती है, वह शोधित रूपमें प्रकाशित होनेपर श्लाघनीय हो जाती है। वास्तवमें मूलप्रवृत्तिका शोधन उसका एक प्रकार-से मार्गान्तरीकरण है। किसी मन्त्र या मंगलवाक्यका चिन्तन आर्त और रौद्र ध्यानसे हटाकर धर्मध्यानमें स्थित करता है अतः धर्मध्यानके प्रधान कारण णमो-कारमन्त्रके स्मरण और चिन्तनकी परम आवश्यकता है।

उपर्युक्त मनोवैज्ञानिक विश्लेषणका अभिप्राय यह है कि णमोकारमन्त्रके द्वारा कोई भी व्यक्ति अपने मनको प्रभावित कर सकता है। यह मन्त्र मनुष्यके चेतन, अवचेतन और अचेतन तीनों प्रकारके मनोंको प्रभावित कर अचेतन और अवचेतन-पर सुन्दर स्थायी भावका ऐसा संस्कार डालता है, जिससे मूलप्रवृत्तियोंका परिष्कार हो जाता है और अचेतन मनमें वासनाओंको अर्जित होनेका अवसर नहीं मिल पाता। इस मन्त्रकी आराधनामें ऐसी विद्युत्-शक्ति है, जिससे इसके स्मरण-से व्यक्तिका अन्तर्द्वन्द्व शान्त हो जाता है, नैतिक भावनाओंका उदय होता है, जिससे अनैतिक वासनाओंका दमन होकर नैतिक संस्कार उत्पन्न होते हैं। आभ्य-न्तरमें उत्पन्न विद्युत् बाहर और भीतरमें इतना प्रकाश उत्पन्न करती है, जिससे वासनात्मक संस्कार भस्म हो जाते हैं और ज्ञानका प्रकाश व्याप्त हो जाता है। इस मन्त्रके निरन्तर उच्चारण, स्मरण और चिन्तनसे आत्मामें एक प्रकारकी शक्ति उत्पन्न होती है, जिसे आजकी भाषामें विद्युत् कह सकते हैं, इस शक्ति-द्वारा आत्माका शोधन-कार्य तो किया ही जाता है, साथ ही इससे अन्य आश्चर्य-जनक कार्य भी सम्पन्न किये जा सकते हैं।

मनके साथ जिन ध्वनियोंका घर्षण होनेसे दिव्य ज्योति प्रकट होती है उन ध्वनियोंके समुदायको मन्त्र कहा जाता है। मन्त्र और विज्ञान दोनोंमें अन्तर है;

मन्त्रशास्त्र और णमोकारमन्त्र

क्योंकि विज्ञानका प्रयोग जहाँ भी किया जाता है, फल एक ही होता है। परन्तु मन्त्रमें यह बात नहीं है, उसकी सफ-लता साधक और साध्यके ऊपर निर्भर है, ध्यान के अस्थिर

होनेसे भी मन्त्र असफल हो जाता है। मन्त्र तभी सफल होता है; जब श्रद्धा, इच्छा और दृढ संकल्प ये तीनों ही यथावत् कार्य करते हों। मनोविज्ञानका सिद्धान्त है कि मनुष्यकी अवचेतनामें बहुत-सी आध्यात्मिक शक्तियाँ भरी रहती है, इन्हीं शक्तियोको मन्त्र-द्वारा प्रयोगमे लाया जाता है। मन्त्रकी ध्वनियोंके संघर्ष-द्वारा आध्यात्मिक शक्तिको उत्तेजित किया जाता है। इस कार्यमें अकेली विचारशक्ति ही काम नही करती है, इसकी सहायताके लिए उत्कट इच्छा-शक्ति-के द्वारा ध्वनि-संचालनकी भी आवश्यकता है। मन्त्र-शक्तिके प्रयोगकी सफलता-के लिए मानसिक योग्यता प्राप्त करनी पड़ती है, जिसके लिए नैष्ठिक आचारकी आवश्यकता है। मन्त्रनिर्माणके लिए ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः हा ह सः क्लीं क्लूं द्रां द्रीं द्रूं द्रः श्रीं क्षीं क्ष्वीं क्लीं हं अं फट्, वषट्, सवौषट् घे घै यः ठः खः ह ल्व्यं प वं य झं तं थं दं आदि बीजाक्षरोकी आवश्यकता होती है। साधारण व्यक्ति-को ये बीजाक्षर निरर्थक प्रतीत होते हैं, किन्तु है ये सार्थक और इनमें ऐसी शक्ति अन्तर्निहित रहती है, जिसमें आत्मशक्ति या देवताओंको उत्तेजित किया जा सकता है। अतः ये बीजाक्षर अन्तःकरण और वृत्तिकी शुद्ध प्रेरणाके व्यक्त शब्द है, जिनसे आत्मिक शक्तिका विकास किया जा सकता है।

इन बीजाक्षरोंकी उत्पत्ति प्रधानतः णमोकारमन्त्रसे ही हुई है क्योंकि मातृका ध्वनियाँ इसी मन्त्रसे उद्भूत है। इन सबमे प्रधान 'ओं' बीज है, यह आत्मवाचक मूलभूत है। इसे तेजोबीज, कामबीज और भवबीज माना गया है। पंचपरमेष्ठी वाचक होनेसे ओंको समस्त मन्त्रोंका सारतत्त्व बताया गया है। इसे प्रणववाचक भी कहा जाता है। श्रीको कीर्तिवाचक, ह्रीको कल्याणवाचक, क्षीको शान्तिवाचक, हंको मंगलवाचक, ॐको सुखवाचक, क्ष्वीको योग वाचक, ह्लंको विद्वेष और रोषवाचक, प्रीं प्रीको स्तम्भनवाचक और क्लीको लक्ष्मीप्राप्तिवाचक कहा गया है। सभी तीर्थंकरोंके नामाक्षरोंको मंगलवाचक एवं यक्ष-यक्षिणियोंके नामोंको कीर्ति और प्रीतिवाचक कहा गया है। बीजाक्षरोंका वर्णन निम्न प्रकार किया गया है—

ॐ प्रणवध्रुवं ब्रह्मबीजं, तेजोबीजं वा, ओं तेजोबीजं, ऐं वाग्भवबीजं, लं कामबीजं, क्रों शक्तिबीज, हं सः विषापहारबीजं, क्षीं पृथ्वीबीजं, स्वा वायुबीजं, हा आकाशबीजं, ह्रां मायाबीजं त्रैलोक्यनाथबीज वा, क्रों अंकुशबीजं, जं पाश-बीजं, फट् विसर्जनं चालनं वा, वौषट् पूजाग्रहणं आकर्षणं वा; संवौषट् आमन्त्र-

णम्, ब्लूं द्रावणं, क्लूं आकर्षणं, ग्लौं स्तम्भनं, ह्रौं महाशक्तिः, वषट् आह्वाननं, रं ज्वलनं, क्ष्वीं विषापहारबीजं, ठः चन्द्रबीजं, घे घै ग्रहणबीजं, बैविबन्धो वा; द्रा द्रां क्लीं ब्लूं सः पञ्चवाणी, द्रं विद्वेषणं रोषबीजं वा, स्वाहा शान्तिकं मोहकं वा, स्वधा पौष्टिकं, नमः शोधनबीजं, हं गगनबीजं, ह्रं ज्ञानबीजं, यः विसर्जनबीजं उच्चारणं वा, यं वायुबीजं, जुं विद्वेषणबीजं, क्ष्वीं अमृतबीजं, क्ष्वीं भोगबीजं, हूं दण्डबीजम्, खः स्वादनबीजं, झ्रौं महाशक्तिबीजं, ह् ल्व र्यूं पिण्डबीजं, हँ मंगलबीजं सुखबीजं वा, श्रीं कीर्तिबीजं कल्याणबीजं वा, क्लीं धनबीजं कुबेरबीजं वा तीर्थंकरनामाक्षरशान्तिबीजं मांगल्यबीजं कल्याणबीजं विघ्नविनाशकबीजं वा, अं आकाशबीजं धान्यबीजं वा, अ सुखबीजं तेजोबीजं वा, ई गुणबीजं तेजोबीजं वा, उ वायुबीजं, क्षां क्षीं क्षूं क्षें क्षैं क्षौं क्षः रक्षाबीजं, सर्वकल्याणबीजं सर्वशुद्धिबीजं वा, वं द्रवणबीजं, यं मंगलबीजं, शोधनबीजं, यं रक्षाबीजं, झं शक्तिबीजं तं थं दं कालुष्यनाशकं मंगलवर्धकं च । – बीजकोश

अर्थात्—ओं प्रणव, ध्रुव, ब्रह्मबीज या तेजोबीज है। ऐं वाग्भव बीज, लृं कामबीज, क्रो शक्तिबीज, हं सः विषापहार बीज, क्षी पृथ्वीबीज, स्वा वायुबीज, हा आकाशबीज, ह्रां मायाबीज या त्रैलोक्यनाथ बीज, क्रों अंकुशबीज, जं पाशबीज, फट् विसर्जनात्मक या चालन—दूरकरणार्थक, वौषट् पूजाग्रहण या आकर्षणार्थक, संवौषट् आमन्त्रणार्थक, ब्लूं द्रावणबीज, क्लीं आकर्षणबीज, ग्लौं स्तम्भन बीज, ह्रौं महाशक्तिवाचक, वषट् आह्वानन वाचक, रं ज्वलनवाचक, क्ष्वीं विषापहार बीज, ठः चन्द्रबीज, घे घै ग्रहणबीज, द्रं विद्वेषणार्थक, रोषबीज, स्वाहा शान्ति और हवनवाचक, स्वधा पौष्टिकवाचक, नमः शोधनबीज, हं गगनबीज, ह्रं ज्ञानबीज, यः विसर्जन या उच्चारणवाचक, नु विद्वेषणबीज, क्ष्वीं अमृतबीज, क्ष्वीं भोगबीज, हूँ दण्डबीज, खः स्वादनबीज, झ्रौं महाशक्तिबीज, ह् ल्र्यूं पिण्डबीज, क्ष्री हूँ मंगल और सुखबीज, श्रीं कीर्तिबीज या कल्याणबीज, क्लीं धनबीज, या कुबेरबीज, तीर्थंकरके नामाक्षर शान्तिबीज, ह्रौ ऋद्धि और सिद्धिबीज, ह्रां ह्री ह्रूं ह्रौं ह्रः सर्वशान्ति, मांगल्य, कल्याण, विघ्नविनाशक, सिद्धिदायक, अ आकाशबीज, या धान्यबीज, आ सुखबीज या तेजोबीज, ई गुणबीज या तेजोबीज या वायुबीज, क्षां क्षीं क्षूं क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षः सर्वकल्याण या सर्वशुद्धिबीज, वं द्रवणबीज, यं मंगलबीज, सं शोधनबीज, यं रक्षाबीज, झं

शक्तिबीज और तं थं दं कालुष्यनाशक, मंगलवर्धक और सुखकारक बताया गया है। इन समस्त बीजाक्षरोंकी उत्पत्ति णमोकार मन्त्र तथा इस मन्त्रमें प्रतिपादित पंचपरमेष्ठीके नामाक्षर, तीर्थकर और यक्ष-यक्षिणियोंके नामाक्षरोंपर-से हुई है। मन्त्रके तीन अंग होते हैं, रूप, बीज और फल। जितने भी प्रकारके मन्त्र हैं, उनमें बीजरूप यह णमोकार मन्त्र या इससे निष्पन्न कोई सूक्ष्मतत्त्व रहता है। जिस प्रकार होम्योपैथिक दवामे दवाका अंश जितना अल्प होता जाता है, उतनी ही उसकी शक्ति बढ़ती जाती है और उसका चमत्कार दिखलाई पड़ने लगता है। इसी प्रकार इस णमोकार मन्त्रके सूक्ष्मीकरण-द्वारा जितने सूक्ष्म बीजाक्षर अन्य मन्त्रोंमे निहित किये जाते है, उन मन्त्रोंकी उतनी ही शक्ति बढ़ती जाती है।

मन्त्रोंका बार-बार उच्चारण किसी सोते हुएको बार-बार जगानेके समान है। यह प्रक्रिया इसीके तुल्य है, जिस प्रकार किन्ही दो स्थानोके बीच बिजलीका सम्बन्ध लगा दिया जाये। साधककी विचार-शक्ति स्विचका काम करती है और मन्त्र-शक्ति विद्युत् लहरका। जब मन्त्र सिद्ध हो जाता है तब आत्मिक शक्तिसे आकृष्ट देवता मान्त्रिकके समक्ष अपना आत्मार्पण कर देता है और उस देवताकी सारी शक्ति उस मान्त्रिकमें आ जाती है। सामान्य मन्त्रोके लिए नैतिकताकी विशेष आवश्यकता नही है। साधारण साधक बीजमन्त्र और उनकी ध्वनियोके घर्षणसे अपने भीतर आत्मिक शक्तिका प्रस्फुटन करता है। मन्त्रशास्त्रमे इसी कारण मन्त्रोके अनेक भेद बताये गये है। प्रधान ये है – (१) स्तम्भन (२) मोहन (३) उच्चाटन (४) वश्याकर्षण (५) जृम्भण (६) विद्वेषण (७) मारण (८) शान्तिक और (९) पौष्टिक।

जिन ध्वनियोंके वैज्ञानिक सन्निवेशके घर्षण-द्वारा सर्प, व्याघ्र, सिह आदि भयंकर जन्तुओको; भूत, प्रेत, पिशाच आदि दैविक बाधाओंको, शत्रुसेनाके आक्रमण तथा अन्य व्यक्तियो-द्वारा किये जानेवाले कष्टोंको दूर कर इनको जहाँके तहाँ निष्क्रिय कर स्तम्भित कर दिया जाये, उन ध्वनियोंके सन्निवेशको स्तम्भन मन्त्र, जिन ध्वनियोंके वैज्ञानिक सन्निवेशके घर्षण-द्वारा किसीको मोहित कर दिया जाये उन ध्वनियोके सन्निवेशको मोहित मन्त्र; जिन ध्वनियोके सन्निवेशके घर्षण-द्वारा किसीका मन अस्थिर, उल्लासरहित एवं निरुत्साहित होकर पदभ्रष्ट एवं स्थानभ्रष्ट हो जाये, उन ध्वनियोके सन्निवेशको उच्चाटन मन्त्र; जिन ध्वनियोके

सन्निवेशके घर्षण-द्वारा इच्छित वस्तु या व्यक्ति साधकके पास आ जाये- किसीका विपरीत मन भी साधककी अनुकूलता स्वीकार कर ले, उन ध्वनियोंके सन्निवेशको वश्याकर्षण; जिन ध्वनियोंके वैज्ञानिक सन्निवेशके घर्षण-द्वारा शत्रु, भूत, प्रेत, व्यन्तर साधककी साधनासे भयत्रस्त हो जायें, काँपने लगें, उन ध्वनियोंके सन्निवेशको जृम्भण मन्त्र; जिन ध्वनियोंके वैज्ञानिक सन्निवेशके घर्षण-द्वारा कुटुम्ब, जाति, देश, समाज, राष्ट्र आदिमें परस्पर कलह और वैमनस्यकी क्रान्ति मच जाये, उन ध्वनियोंके सन्निवेशको विद्वेषण मन्त्र; जिन ध्वनियोंके वैज्ञानिक सन्निवेशके घर्षण-द्वारा साधक आततायियोंको प्राणदण्ड दे सके, उन ध्वनियोंके सन्निवेशको मारण मन्त्र; जिन ध्वनियोंके वैज्ञानिक सन्निवेशके घर्षण-द्वारा भयंकरसे भयंकर व्याधि, व्यन्तर – भूत-पिशाचोंकी पीड़ा, क्रूर ग्रह – जंगम स्थावर विष-बाधा, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुर्भिक्षादि ईतियों और चोर आदिका भय प्रशान्त हो जाये, उन ध्वनियोंके सन्निवेशको शान्ति मन्त्र एवं जिन ध्वनियोंके वैज्ञानिक सन्निवेशके घर्षण-द्वारा सुख-सामग्रियोंकी प्राप्ति तथा सन्तान आदिकी प्राप्ति हो, उन ध्वनियोंके सन्निवेशको पौष्टिक मन्त्र कहते हैं। मन्त्रोंमें एकसे तीन ध्वनियों तकके मन्त्रोंका विश्लेषण अर्थकी दृष्टिसे नहीं किया जा सकता है, किन्तु इससे अधिक ध्वनियोंके मन्त्रोंका विश्लेषण हो सकता है। मन्त्रोंसे इच्छाशक्तिका परिष्कार या प्रसारण होता है, जिससे अपूर्व शक्ति आती है।

मन्त्रशास्त्रके बीजोंका विवेचन करनेके उपरान्त आचार्योंने उनके रूपका निरूपण करते हुए बतलाया है कि – अ आ ऋ ह श य क ख ग घ ङ ये वर्ण वायुतत्त्व संज्ञक; च छ ज झ ञ इ ई ॠ अ र प ये वर्ण अग्नितत्त्व संज्ञक; त ट द ड उ ऊ ण ॡ व ल ये वर्ण पृथ्वी संज्ञक; ठ थ ध ढ न ए ऐ ॡ स ये वर्ण जलतत्त्व संज्ञक एवं प फ ब भ म ओ औ अं अः ये वर्ण आकाशतत्त्व संज्ञक है। अ उ ऊ ऐ ओ औ अं क ख ग ट ठ ड ढ त थ प फ ब ज झ ध य म प क्ष ये वर्ण पुल्लिग; आ ई च छ ल व वर्ण स्त्रीलिंग और इ ऋ ॠ ऌ ॡ ए अः घ भ य र ह द ञ ण ङ ये वर्ण नपुंसक लिंग संज्ञक होते है। मन्त्रशास्त्रमें स्वर और ऊष्मध्वनियाँ ब्राह्मण वर्ण संज्ञक; अन्तस्थ और कवर्ग ध्वनियाँ क्षत्रियवर्ण संज्ञक; चवर्ग और पवर्ग ध्वनियाँ वैश्यवर्ण संज्ञक एवं टवर्ग और तवर्ग ध्वनियाँ शूद्रवर्ण-संज्ञक होती है।

वश्य, आकर्षण और उच्चाटनमें 'हुं' का प्रयोग; मारणमें 'फट्'का प्रयोग; स्तम्भन, विद्वेषण और मोहनमें 'नमः'का प्रयोग एवं शान्ति और पौष्टिकके लिए 'वषट्' शब्दका प्रयोग किया जाता है। मन्त्रके अन्तमें 'स्वाहा' शब्द रहता है। यह शब्द पापनाशक, मंगलकारक तथा आत्माकी आन्तरिक शान्तिको उद्‌बुद्ध करनेवाला बतलाया गया है। मन्त्रको शक्तिशाली बनानेवाली अन्तिम ध्वनियोंमें स्वाहाको स्त्रीलिंग; वषट्, फट्, स्वधाको पुल्लिंग और नमःको नपुंसक लिंग माना है। मन्त्र-सिद्धिके लिए चार पीठोंका वर्णन जैनशास्त्रोंमें मिलता है — श्मशानपीठ, शवपीठ, अरण्यपीठ और श्यामापीठ।

भयानक श्मशानभूमिमें जाकर मन्त्रकी आराधना करना श्मशानपीठ है। अभीष्ट मन्त्रकी सिद्धिका जितना काल शास्त्रोंमें बताया गया है, उतने काल तक श्मशानमें जाकर मन्त्र साधन करना आवश्यक है। भीरु साधक इस पीठका उपयोग नहीं कर सकता है। प्रथमानुयोगमें आया है कि सुकुमाल मुनिराजने णमोकार मन्त्रकी आराधना इस पीठमें करके आत्मसिद्धि प्राप्त की थी। इस पीठमें सभी प्रकारके मन्त्रोंकी साधना की जा सकती है। शवपीठमें कर्ण-पिशाचिनी, कर्णेश्वरी आदि विद्याओंकी सिद्धिके लिए मृतक कलेवरपर आसन लगाकर मन्त्र साधना करनी होती है। आत्मसाधना करनेवाला व्यक्ति इस घृणित पीठसे दूर रहता है। वह तो एकान्त निर्जन भूमिमें स्थित होकर आत्माकी साधना करता है। अरण्यपीठमें एकान्त निर्जन स्थान, जो हिंसक जन्तुओंसे समाकीर्ण है, में जाकर निर्भय एकाग्र चित्तसे मन्त्रकी आराधना की जाती है। णमोकार मन्त्रकी आराधनाके लिए अरण्यपीठ ही सबसे उत्तम माना गया है। निर्ग्रन्थ परम तपस्वी निर्जन अरण्योंमें जाकर ही पंचपरमेष्ठीकी आराधना-द्वारा निर्वाण लाभ करते हैं। राग-द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया और लोभ आदि विकारोंको जीतनेका एक मात्र स्थान अरण्य ही है, अतएव इस महामन्त्रकी साधना इसी स्थानपर यथार्थ रूपसे हो सकती है। एकान्त निर्जन स्थानमें षोडशी नवयौवना सुन्दरीको वस्त्ररहित कर सामने बैठाकर मन्त्र सिद्ध करना एवं अपने मनको तिलमात्र भी चलायमान नहीं करना और ब्रह्मचर्यव्रतमें दृढ़ रहना श्यामा-पीठ है। इन चारों पीठोंका उपयोग मन्त्र-सिद्धिके लिए किया जाता है। किन्तु णमोकार मन्त्रकी साधनाके लिए इस प्रकारके पीठोंकी आवश्यकता नहीं है। यह

तो कहीं भी और किसी भी स्थितिमें सिद्ध किया जा सकता है।

उपर्युक्त मन्त्र-शास्त्रके संक्षिप्त विश्लेषण और विवेचनका निष्कर्ष यह है कि मन्त्रोंके बीजाक्षर, सन्निविष्ट ध्वनियोंके रूप विधानमें उपयोगी लिंग और तत्त्वोंका विधान एवं मन्त्रके अन्तिम भागमें प्रयुक्त होनेवाला पल्लव—अन्तिम ध्वनिसमूहका मूलस्रोत णमोकार मन्त्र है। जिस प्रकार समुद्रका जल नवीन घड़ेमें भर देनेपर नवीन प्रतीत होने लगता है, उसी प्रकार णमोकार मन्त्ररूपी समुद्रमें-से कुछ ध्वनियोंको निकालकर मन्त्रोंका सृजन हुआ है। 'सिद्धो वर्णसमाम्नायः' नियम बतलाता है कि वर्णोंका समूह अनादि है। णमोकार मन्त्रमें कण्ठ, तालु, मूर्धन्य, अन्तस्थ, ऊष्म, उपध्मानीय, वर्त्स्य आदि सभी ध्वनियोंके बीज विद्यमान हैं। बीजाक्षर मन्त्रोंके प्राण हैं। ये बीजाक्षर ही स्वयं इस बातको प्रकट करते हैं कि इनकी उत्पत्ति कहाँसे हुई है। बीजकोशमें बताया गया है कि ॐ बीज समस्त णमोकार मन्त्रसे, ह्रोंकी उत्पत्ति णमोकार मन्त्रके प्रथमपदसे, श्रींकी उत्पत्ति णमोकार मन्त्रके द्वितीयपदसे, क्षीं और क्ष्वींकी उत्पत्ति णमोकार मन्त्रके प्रथम, द्वितीय और तृतीय पदोंसे, क्लींकी उत्पत्ति प्रथमपदमें प्रतिपादित तीर्थंकरोंकी यक्षिणियोंसे, अत्यन्त शक्तिशाली सकल मन्त्रोंमें व्याप्त 'र्हं' की उत्पत्ति णमोकार मन्त्रके प्रथम पदसे, द्रा द्रीकी उत्पत्ति उक्त मन्त्रके चतुर्थ और पंचमपदसे हुई है। ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः ये बीजाक्षर प्रथम पदसे, क्षां क्षीं क्षूं क्षे क्षै क्षौः क्षः बीजाक्षर प्रथम, द्वितीय और पंचमपदसे निष्पन्न हैं। णमोकार मन्त्रकल्प, भक्तामर यन्त्र-मन्त्र, कल्याणमन्दिर यन्त्र-मन्त्र, यन्त्र-मन्त्र संग्रह, पद्मावती मन्त्र कल्प आदि मान्त्रिक ग्रन्थोंके अवलोकनसे पता लगता है कि समस्त मन्त्रोंके रूप बीज पल्लव इसी महामन्त्रसे निकले हैं। ज्ञानार्णवमें षोडशाक्षर, षडक्षर, चतुरक्षर, द्वयक्षर, एकाक्षर, पंचाक्षर, त्रयोदशाक्षर, सप्ताक्षर, अक्षरपंक्ति इत्यादि नाना प्रकारके मन्त्रोंकी उत्पत्ति इसी महामन्त्रसे मानी है। षोडशाक्षर मन्त्रकी उत्पत्तिका वर्णन करते हुए कहा गया है :

> स्मर पञ्चपदोद्भूतां महाविद्यां जगन्नुताम्।
> गुरुपञ्चकनामोत्थां षोडशाक्षरराजिताम्॥
> अस्याः शतद्वयं ध्यानी जपन्नेकाग्रमानसः।
> अनिच्छन्नप्यवाप्नोति चतुर्थतपसः फलम्॥

विद्यां षड्वर्णसंभूतामजय्यां पुण्यशालिनीम् ।
जपन्प्रागुक्तमभ्येति फलं ध्यानी शतत्रयम् ॥
चतुर्वर्णमयं मन्त्रं चतुर्वर्गफलप्रदम् ।
चतुःशतं जपन् योगी चतुर्थस्य फलं लभेत् ॥
वर्णयुग्मं श्रुतस्कन्धसारभूतं शिवप्रदम् ।
ध्यायेज्जन्मोद्भवाशेषक्लेशविध्वंसनक्षमम् ॥
सिद्धेः सौधं समारोढुमियं सोपानमालिका ।
त्रयोदशाक्षरोत्पन्ना विद्या विश्वातिशायिनी ॥

अर्थात्—षोडशाक्षरी महाविद्या पंचपदों और पंचगुरुओंके नामोंसे उत्पन्न हुई है, इसका ध्यान करनेसे सभी प्रकारके अभ्युदयोंकी प्राप्ति होती है। यह सोलह अक्षरका मन्त्र यह है—"**अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः**।" जो व्यक्ति एकाग्र मन होकर इस सोलह अक्षरके मन्त्रका ध्यान करता है, उसे चतुर्थ तप—एक उपवासका फल प्राप्त होता है। णमोकार मन्त्रसे निःसृत—'अरिहन्त सिद्ध' इन छह अक्षरोंसे उत्पन्न हुई विद्याका तीन-सौ बार—तीन माला प्रमाण जाप करनेवाला एक उपवासके फलको प्राप्त होता है; क्योंकि षडक्षरी विद्या अजय्य है और पुण्यको उत्पन्न करनेवाली तथा पुण्यसे शोभित है। उक्त महासमुद्रसे निकला हुआ 'अरिहन्त' यह चार अक्षरोंवाला मन्त्र धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप फलको देनेवाला है, इसकी जो चार मालाएँ प्रतिदिन जाप करता है, उसे एक उपवासका फल मिलता है। 'सिद्ध' यह दो अक्षरोंका मन्त्र द्वादशांग जिनवाणीका सारभूत है, मोक्षको देनेवाला है, तथा संसारसे उत्पन्न हुए समस्त क्लेशोंका नाश करनेवाला है। णमोकार महामन्त्रसे उत्पन्न तेरह अक्षरोंके समूहरूप मन्त्र मोक्षमहलपर चढ़नेके लिए सीढ़ीके समान है। वह मन्त्र है – "ॐ अर्हत्सिद्धसयोगकेवली स्वाहा।"

आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीने द्रव्यसंग्रहकी ४९वीं गाथामें इस णमोकार मन्त्रसे उत्पन्न आत्मसाधक तथा चमत्कार उत्पन्न करनेवाले मन्त्रोंका उल्लेख करते हुए कहा है—

पणतीस सोल छप्पण चउदुगमेगं च जवह ज्झाएह ।
परमेट्ठिवाचयाणं अण्णं च गुरूवएसेण ॥

अर्थात्—पंचपरमेष्ठीवाचक पैंतीस, सोलह, छह, पाँच, चार, दो और एक

अक्षररूप मन्त्रोंका जप और ध्यान करना चाहिए। स्पष्टताके लिए इन मन्त्रोंको यहाँ क्रमशः दिया जाता है।

सोलह अक्षरका मन्त्र – अरिहंत-सिद्ध-आइरिय-उवज्झाय-साहू अथवा अर्हत्सिद्धाचार्यउपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः।

छह अक्षरका मन्त्र – अरिहंतसिद्ध, अरिहंत सि सा, ॐ नमः सिद्धेभ्यः, नमोऽर्हत्सिद्धेभ्यः।

पाँच अक्षरका मन्त्र – अ सि आ उ सा। णमो सिद्धाणं।

चार अक्षरका मन्त्र – अरिहंत। अ सि साहू।

सात अक्षरका मन्त्र – ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं नमः।

आठ अक्षरका मन्त्र – ॐ णमो अरिहंताणं।

तेरह अक्षरका मन्त्र – ॐ अर्हत् सिद्धसयोगकेवली स्वाहा।

दो अक्षरका मन्त्र – ॐ ह्रीं। सिद्ध। अ सि।

एक अक्षरका मन्त्र – ॐ, ओं, ओम्, अ, सि।

त्रयोदशाक्षरात्मक विद्या – ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमः।

अक्षरपंक्ति विद्या – ॐ नमोऽर्हते केवलिने परमयोगिनेऽनन्तशुद्धिपरिणामविस्फुरदुरुशुक्लध्यानाग्निर्दग्धकर्मबीजाय प्राप्तानन्तचतुष्टयाय सौम्याय शान्ताय मंगलाय वरदाय अष्टादशदोषरहिताय स्वाहा। यह अभय स्थान मन्त्र भी कहा गया है। इसके जपनेसे कामनाएँ पूर्ण होती हैं। प्रणवयुगल और मायायुगल मन्त्र – ह्रीं ॐ, ॐ ह्रीं, हं सः।

अचिन्त्य फलप्रदायक मन्त्र – ॐ ह्रीं स्वर्हं णमो णमो अरिहंताणं ह्रीं नमः।

पापभक्षिणी विद्यारूप मन्त्र – ॐ अर्हन्मुखकमलवासिनि पापात्मक्षयंकरि, श्रुतिज्ञानज्वालासहस्रप्रज्वलिते सरस्वति मत्पापं हन हन दह दह क्षां क्षीं क्षूं क्षौं क्षः क्षीरवरधवले अमृतसंभवे वं वं हूं हूं स्वाहा। इस मन्त्रके जपके प्रभावसे साधकका चित्त प्रसन्नता धारण करता है और समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं और आत्मामें पवित्र भावनाओंका संचार हो जाता है।

गणधरवलयमें आये हुए 'ॐ णमो अरिहंताणं', 'ॐ णमो सिद्धाणं', 'ॐ णमो आइरियाणं', 'ॐ णमो उवज्झायाणं', 'ॐ णमो लोए सव्वसाहूणं' आदि मन्त्र णमोकार महामन्त्रके अभिन्न अंग ही हैं।

णमोकार मन्त्र कल्पके सभी मन्त्र इस महामन्त्रसे निकले हैं। ४६ मन्त्र इस कल्पके ऐसे हैं, जिनमें इस महामन्त्रके पदोंका संयोग पृथक् रूपमें विद्यमान है। इन मन्त्रोंका उपयोग भिन्न-भिन्न कार्योंके लिए किया जाता है। यहाँपर कुछ मन्त्र दिये जा रहे है –

रक्षामन्त्र (किसी भी कार्यके आरम्भमे इन रक्षा-मन्त्रोंके जपसे उस कार्यमें विघ्न नहीं आता है) –

ॐ णमो अरिहंताणं ह्रां हृदयं रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा।

ॐ णमो सिद्धाणं ह्रीं सिरो रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा।

ॐ णमो आइरियाणं ह्रू शिखां रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा।

ॐ णमो उवज्झायाणं ह्रैं एहि एहिं भगवति वज्रकवचवज्रिणि रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा। ॐ णमो लोए सव्वसाहूणं ह्रः क्षिप्र साधय साधय वज्रहस्ते शूलिनि दुष्टान् रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा।

रोग-निवारणमन्त्र (इन मन्त्रोको १०८ बार लिखकर रोगीके हाथपर रखनेसे सभी रोग दूर होते है। मन्त्र सिद्ध कर लेनेके पश्चात् किसी भी मन्त्रसे १०८ बार पढकर फूँक देनेसे रोग अच्छा होता है) –

ॐ णमो अरिहताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाण णमो उवज्झायाण णमो लोए सव्वसाहूणं। ॐ णमो भगवति सुअदे वयाणवार संग एव, यण जणर्णाये, सरस्सई ए सव्व, वाहंणि सवणवणे, ॐ अवतर अवतर, देवी मयम्भरीरं वपिस पुछं, तस्स पविससत्व जण मयहरीये अरिहंत सिरिसिरिए स्वाहा।

सिरकी पीड़ा दूर करनेके मन्त्र (१०८ बार जलको मन्त्रित कर पिला देनेसे सिर दर्द दूर होता है) –

ॐ णमो अरिहंताणं, ॐ णमो सिद्धाण, ॐ णमो आइरियाण, ॐ णमो उवज्झायाणं, ॐ णमो लोए सव्वसाहूण। ॐ णमो णाणाय, ॐ णमो दसणाय, ॐ णमो चारित्ताय, ॐ ह्रीं त्रैलोक्यवश्यंकरी ह्रीं स्वाहा।

बुखार, तिजारी और एकतरा दूर करनेका मन्त्र –

ॐ णमो लोए सव्वसाहूणं ॐ णमो उवज्झायाणं ॐ णमो आइरियाणं ॐ णमो सिद्धाणं ओं णमो अरिहताणं।

विधि—एक सफेद चादरके एक किनारेको लेकर एक बार मन्त्र पढ़कर

एक स्थानपर मोड़ दे, इस प्रकार १०८ बार चादरको मन्त्रित कर मोड़ देनेके पश्चात् उस चादरको रोगीको उढा देनेपर रोगीका बुखार उतर जाता है।

अग्निनिवारक मन्त्र –

ॐ णमो ॐ अर्हं अ सि आ उ सा, णमो अरिहंताणं नमः।

विधि – एक लोटेमे शुद्ध पवित्र जल लेकर उसमें-से थोड़ा-सा जल चुल्लूमे अलग निकालकर उस चुल्लूके जलको २१ बार उपयुक्त मन्त्रसे मन्त्रित कर चुल्लूके जलमे एक रेखा खींच दे तो अग्नि उस रेखामे आगे नहीं बढती है। इस प्रकार चारों दिशाओंमे जलसे रेखा खींचकर अग्निका स्तम्भन करे। पश्चात् लोटेके जलको लेकर १०८ बार मन्त्रित कर अग्निपर छीटे दे तो अग्नि शान्त हो जाती है। इस मन्त्रका आत्मकल्याणके लिए १०८ बार जाप करनेसे एक उपवासका फल मिलता है।

लक्ष्मी-प्राप्ति मन्त्र –

ॐ णमो अरिहंताणं ॐ णमो सिद्धाणं ॐ णमो आइरियाणं ॐ णमो उवज्झायाणं ॐ णमो लोए सव्वसाहूणं। ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः स्वाहा।

विधि – मन्त्रको सिद्ध करनेके लिए पुष्य नक्षत्रके दिन पीला आसन, पीली माला और पीले वस्त्र पहनकर एकान्तमे जप करना आरम्भ करे। सवा लाख मन्त्रका जाप करनेपर मन्त्र सिद्ध होता है। साधनाके दिनोंमे एक बार भोजन, भूमिपर शयन, ब्रह्मचर्यका पालन, सप्तव्यसनका त्याग, पंचपापका त्याग करना चाहिए। स्वाहा शब्दके साथ प्रत्येक मन्त्रपर धूप देता जाये तथा दीप जलाता रहे। मन्त्रसिद्धिके पश्चात् प्रतिदिन एक माला जपनेसे धनकी वृद्धि होती है।

सर्वसिद्धिमन्त्र (ब्रह्मचर्य और शुद्धतापूर्वक सवालाख जाप करनेसे सभी कार्य सिद्ध होते हैं) –

ॐ अ सि आ उ सा नमः।

पुत्र और सम्पदा-प्राप्तिका मन्त्र –

ॐ ह्रीं श्रीं ह्रीं क्लीं अ सि आ उ सा चलु चलु हुलु हुलु मुलु मुलु इच्छियं मे कुरु कुरु स्वाहा।

त्रिभुवनस्वामिनी विद्या –

ॐ ह्रां णमो सिद्धाणं ॐ ह्रीं णमो आइरियाणं ओ ह्रूं णमो अरिहन्ताणं ओं

ह्रौं णमो उवज्झायाणं ओं ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं। श्रीं क्लीं नमः क्षां क्षीं क्षूं क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षः स्वाहा।

विधि—मन्त्र सिद्ध करनेके लिए सामने धूप जलाकर रख ले तथा **२४** हजार श्वेत पुष्पोंपर इस मन्त्रको सिद्ध करे। एक फूलपर एक बार मन्त्र पढ़े।

राजा, मन्त्री, या किसी अधिकारीको वश करनेका मन्त्र –

ॐ ह्रां णमो अरिहंताणं ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं ॐ ह्रीं णमो आइरियाणं ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं ॐ ह्रौं णमो लोए सव्वसाहूणं। अमुकं मम वश्यं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—पहले ११ हजार जाप कर मन्त्रको सिद्ध कर लेना चाहिए। जब राजा, मन्त्री या अन्य किसी अधिकारीके यहाँ जाये तो सिरके वस्त्रको २१ बार मन्त्रित कर धारण करे, इससे वह व्यक्ति वशमें हो जाता है। अमुकके स्थानपर जिस व्यक्तिको वश करना हो उसका नाम जोड़ देना चाहिए।

महामृत्युंजय मन्त्र –

ॐ ह्रां णमो अरिहंताणं ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं ॐ ह्रूं णमो आइरियाणं ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाण ॐ ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं। मम सर्वग्रहारिष्टान् निवारय निवारय अपमृत्युं घातय घातय सर्वशान्तिं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—दीप जलाकर धूप देते हुए नैष्ठिक रहकर इस मन्त्रका स्वयं जाप करे या अन्य-द्वारा करावे। यदि अन्य व्यक्ति जाप करे तो 'मम' के स्थानपर उस व्यक्तिका नाम जोड़ ले – अमुकस्य सर्वग्रहारिष्टान् निवारय आदि। इस मन्त्रका सवा लाख जाप करने से ग्रहबाधा दूर हो जाती है। कम से कम इस मन्त्रका ३१ हजार जाप करना चाहिए। जापके अनन्तर दशांश आहुति देकर हवन भी करे।

सिर, अक्षि, कर्ण, श्वास रोग एवं पादरोगविनाशक मन्त्र –

ॐ ह्रीं अर्हं णमो ओहिजिणाणं परमोहिजिणाणं शिरोरोगविनाशनं भवतु।

ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोहिजिणाणं अक्षिरोगविनाशनं भवतु।

ॐ ह्रीं अर्हं णमो अणंतोहिजिणाणं कर्णरोगविनाशनं भवतु।

ॐ ह्रीं अर्हं णमो संभिण्णसोदराणं श्वासरोगविनाशनं भवतु।

ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वजिणाणं पादादिसर्वरोगविनाशनं भवतु।

विवेक प्राप्ति मन्त्र –

ॐ ह्रीं अर्हं णमो कोट्ठबुद्धीणं बीजबुद्धीणं ममात्मनि विवेकज्ञानं भवतु ।

विरोध-विनाशक मन्त्र –

ॐ ह्रीं अर्हं णमो पादानुसारीणं परस्परविरोधविनाशनं भवतु ।

प्रतिवादीकी शक्तिको स्तम्भन करनेका मन्त्र –

ॐ ह्रीं अर्हं णमो पत्तेयबुद्धाणं प्रतिवादिविद्याविनाशनं भवतु ।

विद्या और कवित्व प्राप्तिके मन्त्र

ॐ ह्रीं अर्हं णमो सयंबुद्धाणं कवित्वं पाण्डित्यं च भवतु ।

ॐ ह्रीं दिवसरात्रिभेदविवर्जितपरमज्ञानार्कचन्द्रातिशयाय श्रीप्रथमजिनेन्द्राय नमः ।

सर्वकार्यसाधक मन्त्र (मन, वचन और कायकी शुद्धिपूर्वक प्रातः, सायं और मध्याह्नकालमें जाप करना चाहिए)

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नमः स्वाहा ।

सर्वशान्तिदायक मन्त्र –

ॐ ह्रीं श्री क्लीं ब्लूं अर्हं नमः ।

व्यन्तर बाधा विनाशक मन्त्र –

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं अ सि आ उ सा अनावृतविद्यायै णमो अरिहंताणं ह्रौं सर्वशान्तिर्भवतु स्वाहा ।

ओं नमोऽर्हते सर्वं रक्ष रक्ष हुँ फट स्वाहा ।

उपर्युक्त मन्त्रोंके अतिरिक्त सहस्रों मन्त्र इसी महामन्त्रसे निकले हैं । सकलीकरण क्रियाके मन्त्र, ऋषिमन्त्र, पीठिकामन्त्र, प्रोक्षणमन्त्र, प्रतिष्ठामन्त्र, शान्तिमन्त्र, इष्टसिद्धि-अरिष्टनिवारकमन्त्र, विभिन्न मांगलिक कृत्योंके अवसरपर उपयोगमें आनेवाले मन्त्र, विवाह, यज्ञोपवीत आदि संस्कारोंके अवसरपर हवन-पूजनके लिए प्रयुक्त होनेवाले मन्त्र प्रभृति समस्त मन्त्र णमोकार महामन्त्रसे प्रादुर्भूत हुए हैं । इस महामन्त्रकी ध्वनियोंके संयोग, वियोग, विश्लेषण और संश्लेषणके द्वारा ही मन्त्रशास्त्रकी उत्पत्ति हुई है । प्रवचन-सारोद्धारके वृत्तिकारने बताया है –

सर्वमन्त्ररत्नानामुत्पत्त्याकरस्य प्रथमस्य कल्पितपदार्थकरणैककल्पद्रुमस्य विषविषधरशाकिनीडाकिनीयाकिन्यादिनिग्रहनिरवग्रहस्वभावस्य सकलजगद्वशी-

करणाकृष्टयाद्यन्यभिचारप्रौढप्रभावस्य चतुर्दशपूर्वाणां सारभूतस्य पञ्चपरमेष्ठि-नमस्कारस्य महिमात्यद्भुतं वरीवर्तते, त्रिजगत्याकालमिति निष्प्रतिपक्षमेतत्सर्व-समयविदाम्।

अर्थात् – यह णमोकार मन्त्र सभी मन्त्रोंकी उत्पत्तिके लिए समुद्रके समान है। जिस प्रकार समुद्रमे अनेक मूल्यवान् रत्न उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार इस महामन्त्रमे अनेक उपयोगी और शक्तिशाली मन्त्र उत्पन्न हुए हैं। यह मन्त्र कल्पवृक्ष है, इसकी आराधनासे सभी प्रकारकी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। इस मन्त्रसे विष, सर्प, शाकिनी, डाकिनी, याकिनी, भूत, पिशाच आदि सब वशमे हो जाते है। यह मन्त्र ग्यारह अंग और चौदह पूर्वका सारभूत है। मन्त्रोको आचार्योंने वश्य, आकर्षण आदि नौ भागोंमे विभक्त किया है। ये नौ प्रकारके मन्त्र इसी महामन्त्रसे निष्पन्न है; क्योंकि उन मन्त्रोंके रूप इस मन्त्रोक्त वर्णो या ध्वनियोंसे ही निष्पन्न है। मन्त्रोके प्राण बीजाक्षर तो इसी मन्त्रसे निःसृत हैं तथा मन्त्रोका विकास और निकास इसी महासमुद्रसे हुआ है। जिस प्रकार गंगा, सिन्धु आदि नदियाँ पद्महृदादिसे निकलकर समुद्रोंमे मिल जाती है, उसी प्रकार सभी मन्त्र इसी महामन्त्रसे निकलकर इसी महामन्त्रके तत्त्वोमें मिश्रित हैं।

जिनकीर्तिसूरिने अपने नमस्कारस्तवके पुष्पिकावाक्यमें बताया है कि इस महामन्त्रमे समस्त मन्त्रशास्त्र उसी प्रकार निवास करता है, जिस प्रकार एक परमाणुमे त्रिकोणाकृति। और यही कारण है कि इस महामन्त्रकी आराधनासे सभी प्रकारके शुभ और आत्मानुभवरूप शुद्ध फल प्राप्त होते हैं। इसीलिए यह सब मन्त्रोंमें प्रधान और अन्य मन्त्रोंका जनक है –

एवं श्रीपञ्चपरमेष्ठीनमस्कारमहामन्त्रः सकलसमीहितार्थ-प्रापणकल्पद्रुमाभ्य-धिकमहिमाशान्तिपौष्टिकाद्यष्टकर्मकृत्। ऐहिकपारलौकिकस्वामिमतार्थसिद्धये यथा श्रीगुर्वाम्नायं ज्ञातव्यः।

अर्थात्—यह णमोकार मन्त्र, जिसे पंचपरमेष्ठीको नमस्कार किये जानेके कारण पंचनमस्कार भी कहा जाता है, समस्त अभीष्ट कार्योंकी सिद्धिके लिए कल्पद्रुमसे भी अधिक शक्तिशाली है। लौकिक और पारलौकिक सभी कार्योंमें इसकी आराधनासे सफलता मिलती है। अतः अपनी आम्नायके अनुसार इसका ध्यान करना चाहिए।

निष्कर्ष यह है कि णमोकार महामन्त्रकी बीज ध्वनियाँ ही समस्त मन्त्रशास्त्र-की आधारशिला है। इसीसे यह शास्त्र उत्पन्न हुआ है।

योगशास्त्र और णमोकार महामन्त्र

मनुष्य अहर्निश सुख प्राप्त करनेकी चेष्टा करता है, किन्तु विश्वके अशान्त वातावरणके कारण उसे एक क्षणको भी शान्ति नहीं मिलती है। मनीषियोंका कथन है कि चित्तवृत्तियोंका निरोध कर लेनेपर व्यक्तिको शान्ति प्राप्त हो सकती है। जैनागममें चित्तवृत्तिका निरोध करनेके लिए योगका वर्णन किया गया है। आत्माका उत्कर्ष साधन एवं विकास योग – उत्कृष्ट ध्यानके सामर्थ्यपर अवलम्बित है। योगवलसे केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है तथा पूर्ण अहिंसा शक्ति या शीलकी प्राप्ति-द्वारा संचित कर्ममल दूर कर निर्वाण प्राप्त किया जाता है। साधारण ऋद्धि-सिद्धियाँ तो उत्कृष्ट ध्यान करनेवालों के चरणोंमें लोटती हैं। योगसाधना करने-वालेको शरीर-मनपर अधिकार प्राप्त हो जाता है।

मनुष्यको चित्तकी चंचलताके कारण ही अशान्तिका अनुभव करना पड़ता है; क्योंकि अनावश्यक संकल्प-विकल्प ही दुःखोंके कारण हैं। मोह-जन्य वासनाएँ मानवके हृदयका मन्थन कर विषयोंकी ओर प्रेरित करती हैं जिससे व्यक्तिके जीवनमें अशान्तिका सूत्रपात होता है। योग-शास्त्रियोंने इस अशान्तिको रोकनेके विधानोंका वर्णन करते हुए बतलाया है कि मनकी चंचलतापर पूर्ण आधिपत्य कर लिया जाये तो चित्तकी वृत्तियोंका इधर-उधर जाना रुक जाता है। अतएव व्यक्तिकी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नतिका एक साधन योगाभ्यास भी है। मुनिराज मन, वचन और कायकी चंचलताको रोकनेके लिए गुप्ति और समितियोंका पालन करते हैं। यह प्रक्रिया भी योगके अन्तर्गत है। कारण स्पष्ट है कि चित्तकी एकाग्रता समस्त शक्तियोंको एक केन्द्रगामी बनाने तथा साध्य तक पहुँचानेमें समर्थ है। जीवनमें पूर्ण सफलता इसी शक्तिके द्वारा प्राप्त होती है।

जैनग्रन्थोंमे सभी जिनेश्वरोंको योगी माना गया है। श्रीपूज्यपादस्वामीने दशभक्तिमे बताया है – **"योगीश्वरान् जिनान् सर्वान् योगनिर्धूतकल्मषान्। योगैस्त्रिभिरहं वन्दे योगस्कन्धप्रतिष्ठितान्"**। इससे स्पष्ट है कि जैनागममें योग-का पर्याप्त महत्त्व स्वीकार किया गया है। योगशास्त्रके इतिहासपर दृष्टिपात करनेसे प्रतीत होता है कि इस कल्पकालमें भगवान् आदिनाथने योगका उपदेश

दिया। पश्चात् अन्य तीर्थकरोंने अपने-अपने समयमें इस योगमार्गका प्रचार किया। जैनग्रन्थोंमें योगके अर्थमें प्रधानतया ध्यान शब्दका प्रयोग हुआ है। ध्यानके लक्षण, भेद, प्रभेद, आलम्बन आदिका विस्तृत वर्णन अंग और अंगबाह्य ग्रन्थोंमें मिलता है। श्रीउमास्वामी आचार्यने अपने तत्त्वार्थसूत्रमें ध्यानका वर्णन किया है, इस ग्रन्थके टीकाकारोंने अपनी-अपनी टीकाओंमें ध्यानपर बहुत कुछ विचार किया है। ध्यानसार और योगप्रदीपमें योगपर पूरा प्रकाश डाला गया है। आचार्य शुभचन्द्रने ज्ञानार्णवमें योगपर पर्याप्त लिखा है। इनके अतिरिक्त श्वेताम्बर सम्प्रदायमें श्रीहरिभद्रसूरिने नयी शैलीमें बहुत लिखा है। इनके रचे हुए योगबिन्दु, योगदृष्टिसमुच्चय, योगविंशिका, योगशतक और षोडशक ग्रन्थ हैं। इन्होंने जैनदृष्टिसे योगशास्त्रका वर्णन कर पातंजल योगशास्त्रकी अनेक बातोंकी तुलना जैन संकेतोंके साथ की है। योगदृष्टिसमुच्चयमें योगकी आठ दृष्टियोंका कथन है, जिनसे समस्त योग साहित्यमें एक नवीन दिशा प्रदर्शित की गयी है। हेमचन्द्राचार्यने आठ योगांगोंका जैन शैलीके अनुसार वर्णन किया है तथा प्राणायामसे सम्बन्ध रखनेवाली अनेक बातें बतलायी हैं।

श्रीशुभचन्द्राचार्यने अपने ज्ञानार्णवमें ध्यानके पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत भेदोंका वर्णन विस्तारके साथ करते हुए मनके विक्षिप्त, यातायात, श्लिष्ट और सुलीन इन चारों भेदोंका वर्णन बड़ी रोचकता और नवीन शैलीमें किया है। उपाध्याय यशोविजयने अध्यात्मसार, अध्यात्मोपनिषद् आदि ग्रन्थोंमें योग-विषयका निरूपण किया है। दिगम्बर सभी आध्यात्मिक ग्रन्थोंमें ध्यान या समाधिका विस्तृत वर्णन प्राप्त है।

योग शब्द युज् धातुसे घञ् प्रत्यय कर देनेसे सिद्ध होता है। युज्के दो अर्थ हैं – जोड़ना और मन स्थिर करना। निष्कर्ष रूपमें योगको मनकी स्थिरताके अर्थमें व्यवहृत करते हैं। हरिभद्र सूरिने मोक्ष प्राप्त करनेवाले साधनका नाम योग कहा है। पतंजलिने अपने योगशास्त्रमें **"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"** – चित्तवृत्तिका रोकना योग बताया है। इन दोनों लक्षणोंका समन्वय करनेपर फलितार्थ यह निकलता है कि जिस क्रिया या व्यापारके द्वारा संसारोन्मुख वृत्तियाँ रुक जायें और मोक्षकी प्राप्ति हो, योग है। अतएव समस्त आत्मिक शक्तियोंका पूर्ण विकास करनेवाली क्रिया – आत्मोन्मुख चेष्टा योग है। योगके आठ अंग माने जाते हैं –

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इन योगांगोंके अभ्याससे मन स्थिर हो जाता है तथा उसकी शुद्धि होकर वह शुद्धोपयोगकी ओर बढता है या शुद्धोपयोगको प्राप्त हो जाता है। शुभचन्द्राचार्यने बतलाया है –

> यमादिषु कृताभ्यासो निःसङ्गो निर्ममो मुनिः।
> रागादिक्लेशनिर्मुक्तं करोति स्ववशं मनः॥
> एक एव मनोरोधः सर्वाभ्युदयसाधकः।
> यमेवालम्ब्य संप्राप्ता योगिनस्तत्त्वनिश्चयम्॥
> मनःशुद्ध्यैव शुद्धिः स्याद्देहिनां नात्र संशयः।
> वृथा तद्व्यतिरेकेण कायस्यैव कदर्थनम्॥
>
> – ज्ञानार्णव प्र० २२, श्लो० ३, १२, १४

अर्थात्—जिसने यमादिकका अभ्यास किया है, परिग्रह और ममतासे रहित है ऐसा मुनि ही अपने मनको रागादिसे निर्मुक्त तथा वश करनेमें समर्थ होता है। निस्सन्देह मनकी शुद्धिसे ही जीवोंकी शुद्धि होती है, मनकी शुद्धिके बिना शरीरको क्षीण करना व्यर्थ है। मनकी शुद्धिसे इस प्रकारका ध्यान होता है, जिससे कर्म-जाल कट जाता है। एक मनका निरोध ही समस्त अभ्युदयोंको प्राप्त करानेवाला है; मनके स्थिर हुए बिना आत्मस्वरूपमें लीन होना कठिन है। अतएव योगांगोंका प्रयोग मनको स्थिर करनेके लिए अवश्य करना चाहिए। यह एक ऐसा साधन है, जिससे मन स्थिर करनेमें सबसे अधिक सहायता मिलती है।

यम और नियम—जैनधर्म निवृत्तिप्रधान है, अतः यम-नियमका अर्थ भी निवृत्तिपरक है। अतएव विभाव परिणतिसे हटकर स्वभावकी ओर रुचि होना ही यम-नियम है। जैनागममें इन दोनों योगांगोंका विस्तृत वर्णन मिलता है। यम या संयमके प्रधान दो भेद हैं—प्राणिसंयम और इन्द्रियसंयम। समस्त प्राणियोंकी रक्षा करना, मन-वचन-कायसे किसी भी प्राणीको कष्ट न पहुँचाना तथा मनमें राग-द्वेषकी भावना न उत्पन्न होने देना प्राणिसंयम है और पंचेन्द्रियोंपर नियन्त्रण करना इन्द्रियसंयम है। पाँचों व्रतोंका धारण, पाँचों समितियोंके पालन, चारों कषायोंका निग्रह, तीन दण्डों—मन, वचन, कायकी विपरीत परिणतिका त्याग और पाँचों इन्द्रियोंका विजय करना ये सब संयमके अंग हैं। जैन आम्नायमें यम-

नियमोंका विधान राग-द्वेषमयी प्रवृत्तिको वश करनेके लिए ही किया गया है। अतः ये दोनों प्रवृत्तियाँ ही मानवोंको परमानन्दसे हटाती रहती हैं। रागी जीव कर्मोको बाँधता है और वीतरागी कर्मोंसे छूटता है। अतः राग और द्वेषकी प्रवृत्तिको इन्द्रियनिग्रह एवं मनोनिग्रह आत्मभावनाके द्वारा दूर करना चाहिए। कहा गया है—

> रागी बध्नाति कर्माणि वीतरागो विमुच्यते।
> जीवो जिनोपदेशोऽयं समासाद् बन्धमोक्षयोः ॥
> यत्र रागः पदं धत्ते द्वेषस्तत्रैति निश्चयः।
> उभावेतौ समालम्ब्य विक्रामत्यधिकं मनः ॥
> रागद्वेषविषोद्यानं मोहबीजं जिनैर्मतम्।
> अतः स एव निःशेषदोषसेनानरेश्वरः ॥
> रागादिवैरिणः क्रूरान्मोहभूपेन्द्रपालितान्।
> निकृत्य शमशास्त्रेण मोक्षमार्गं निरूपयः ॥

—ज्ञानार्णव प्र० २३, श्लो० १, २५, ३०, ३७

अर्थात्—अनादिसे लगे हुए राग-द्वेष ही संसारके कारण हैं, जहाँ राग-द्वेष है, वहाँ नियमतः कर्मबन्ध होता है। वीतरागताके प्राप्त होते ही कर्मका बन्ध रुक जाता है और कर्मोंकी निर्जरा होने लगती है। जहाँ राग रहता है वहाँ उसका अविनाभावी द्वेष भी अवश्य रहता है। अतः इन दोनोंका अवलम्बन करके मनमें नाना प्रकारके विकार उत्पन्न होते हैं। राग-द्वेषरूपी विषवनका मोह बीज है, अतः समस्त विषय-कषायोंकी सेनाका मोह ही राजा है। यही संसारमें उत्पन्न हुआ दावानल है तथा अत्यन्त दृढ़ कर्मबन्धनका हेतु है। यह संसारी प्राणी मोह-निद्राके कारण हो मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योगरूपी पिशाचोंके अधीन होता है। इसी मोहकी ज्वालासे अपने ज्ञानादिको भस्म करता है। मोह-रूपी राजाके द्वारा पालित राग-द्वेषरूपी शत्रुओंको नष्ट कर मोक्षमार्गका अवलम्बन लेना चाहिए। राग, द्वेष, मोहरूप त्रिपुरको ध्यानरूपी अग्नि द्वारा भस्म करना चाहिए।

यम-नियम निवृत्तिपरक होनेपर ही उपर्युक्त त्रिपुरका भस्म कर व्यक्तिके ध्यानसिद्धिका कारण हो सकते हैं। अतः जैनागममें यम-नियमका अर्थ समताभाव-

की प्राप्ति-द्वारा उक्त त्रिपुरको भस्म करना है, क्योंकि इसीसे ध्यानकी सिद्धि होती है। आर्तध्यान और रौद्रध्यानका निवारण धर्म-ध्यान और शुक्लध्यानकी सिद्धिमें सहायक होता है।

आसन – समाधिके लिए मनकी तरह शरीरको भी साधना अत्यावश्यक है। आसन बैठनेके ढंगको कहते हैं। योगीको आसन लगानेका अभ्यास होना चाहिए। श्रीशुभचन्द्राचार्यने ध्यानके योग्य सिद्धक्षेत्र, नदी-सरोवर-समुद्रका निर्जन तट, पर्वतका शिखर, कमलवन, अरण्य, श्मशानभूमि, पर्वतकी गुफा, उपवन, निर्जन गृह या चैत्यालय, निर्जन प्रदेशको स्थान माना है। इन स्थानोंमें जाकर योगी काष्ठके टुकड़े पर या शिलातलपर अथवा भूमि या बालुकापर स्थिर होकर आसन लगावे। पर्यंकासन, अर्द्धपर्यंकासन, वज्रासन, सुखासन, कमलासन और कायोत्सर्ग ये ध्यानके योग्य आसन माने गये हैं। जिस आसनसे ध्यान करते समय साधकका मन खिन्न न हो, वही उपादेय है। बताया गया है –

कायोत्सर्गश्च पर्यङ्कः प्रशस्तं कैश्चिदीरितम्।
देहिनां वीर्यवैकल्यात्कालदोषेण सम्प्रति॥

– ज्ञानार्णव प्र० २८, श्लो० २२

अर्थात् – इस समय कालदोषसे जीवोंके सामर्थ्यकी हीनता है, इस कारण पद्मासन और कायोत्सर्ग ये ही आसन ध्यान करनेके लिए उत्तम हैं। तात्पर्य यह है कि जिस आसनसे बैठकर साधक अपने मनको निश्चल कर सके, वही आसन उसके लिए प्रशस्त है।

प्राणायाम – श्वास और उच्छ्वासके साधनेको प्राणायाम कहते हैं। ध्यानकी सिद्धि और मनको एकाग्र करनेके लिए प्राणायाम किया जाता है। प्राणायाम पवनके साधनकी क्रिया है। शरीरस्थ पवन जब वश हो जाता है। तो मन भी अधीन हो जाता है। इनके तीन भेद हैं – पूरक, कुम्भक और रेचक।[1] नासिका

---

१. समाकृष्य यदा प्राणधारणं स तु पूरकः।
नाभिमध्ये स्थिरीकृत्य रोधनं स तु कुम्भकः॥
यत्कोष्ठादतियत्नेन नासाब्रह्मपुरातनैः।
बहिः प्रक्षेपणं वायोः स रेचक इति स्मृतः॥

छिद्रके द्वारा वायुको खींचकर शरीरमें भरना पूरक, उस पूरक पवनको नाभिके मध्यमे स्थिर करना कुम्भक और उसे धीरे-धीरे बाहर निकालना रेचक है। यह वायुमण्डल चार प्रकारका बतलाया गया है – पृथ्वीमण्डल, जलमण्डल, वायुमण्डल और अग्निमण्डल। इन चारोंकी पहचान बताते हुए कहा है कि क्षितिबीजसे युक्त, गले हुए स्वर्णके समान काचन प्रभावाला, वज्रके चिह्नसे संयुक्त, चौकोर पृथ्वीमण्डल है। वरुणबीजसे युक्त, अर्धचन्द्राकार, चन्द्रसदृश शुक्लवर्ण और अमृतस्वरूप जलसे सिंचित अप्मण्डल है। पवनबीजाक्षरयुक्त, सुवृत्त, बिन्दुओंसहित नीलांजन घनके समान, दुर्लक्ष्य वायुमण्डल है। अग्निके स्फुलिंग समान पिंगलवर्ण, भीम – रौद्ररूप, ऊर्ध्वगमन करनेवाला, त्रिकोणाकार, स्वस्तिकसे युक्त एवं वह्नि-बीजयुक्त अग्निमण्डल होता है। इस प्रकार चारों वायुमण्डलोंकी पहचानके लक्षण बतलाये है, परन्तु इन लक्षणोंके आधारसे पहचानना अतीव दुष्कर है। प्राणायाम-के अत्यन्त अभ्याससे ही किसी साधकविशेषको इनका संवेदन हो सकता है। इन चारों वायुओंके प्रवेश और निस्सरणसे जय-पराजय, जीवन-मरण, हानि-लाभ आदि अनेक प्रश्नोंका उत्तर दिया जा सकता[1] है। इन पवनोंकी साधनासे योगीमे अनेक प्रकारकी अलौकिक और चमत्कारपूर्ण शक्तियोंका प्रादुर्भाव हो जाता है। प्राणायामकी क्रियाका उद्देश्य भी मनको स्थिर करना है, प्रमादको दूर भगाना है। जो साधक यत्नपूर्वक मनको वायुके साथ-साथ हृदय-कमलकी कर्णिकामे प्रवेश कराकर वहाँ स्थिर करता है, उसके चित्तमे विकल्प नही उठते और विषयोंकी आशा भी नष्ट हो जाती है तथा अन्तरंगमे विशेष ज्ञानका प्रकाश होने लगता है। प्राणायामकी महत्ताका वर्णन करते हुए शुभचन्द्राचार्यने बतलाया है –

शनैः शनैर्मनोऽजस्रं वितन्द्रः सह वायुना।
प्रवेश्य हृदयाम्भोजकर्णिकायां नियन्त्रयेत् ॥
विकल्पा न प्रसूयन्ते विषयाशा निवर्त्तते।
अन्तः स्फुरति विज्ञानं तत्र चित्ते स्थिरीकृते ॥

—ज्ञानार्णव प्र० २९, श्लो० १, २, १०, ११

१. सुख दुःख-जय-पराजय-जीवित-मरणानि विद्म इति केचित्।
वायुः प्रपञ्चरचनामवेदिनां कथमयं मानः ॥

–ज्ञा० प्र० २९, श्लो० ७७

जन्मशतजनितमुग्रं प्राणायामाद्विलीयते पापम् ।
नाडीयुगलस्यान्ते यतेर्जिताक्षस्य वीरस्य ॥

– ज्ञानार्णव प्र० २९, श्लो० १०२

अर्थ – पवनोंके साधनरूप प्राणायामसे इन्द्रियोंके विजय करनेवाले साधकोंके सैकड़ों जन्मके संचित किये गये तीव्र पाप दो घड़ीके भीतर लय हो जाते हैं।

प्रत्याहार – इन्द्रिय और मनको अपने-अपने विषयोंसे खींचकर अपनी इच्छानुसार किसी कल्याणकारी ध्येयमें लगानेको प्रत्याहार कहते हैं। अभिप्राय यह है कि विषयोंसे इन्द्रियोंको और इन्द्रियोंसे मनको पृथक् कर मनको निराकुल करके ललाटपर धारण करना प्रत्याहार-विधि है। प्रत्याहारके सिद्ध हो जानेपर इन्द्रियाँ वशीभूत हो जाती हैं और मनोहरसे मनोहर विषयकी ओर भी प्रवृत्त नहीं होती हैं। इसका अभ्यास प्राणायामके उपरान्त किया जाता है। प्राणायाम-द्वारा ज्ञानतन्तुओंके अधीन होनेपर इन्द्रियोंका वशमें आना सुगम है। जैसे कछुआ अपने हस्त-पादादि अंगोंको अपने भीतर संकुचित कर लेता है, वैसे ही स्पर्श, रसना आदि इन्द्रियोंकी प्रवृत्तिको आत्मरूपमें लीन करना प्रत्याहारका कार्य है। राग-द्वेष आदि विकारोंसे मन दूर हट जाता है। कहा गया है–

सम्यक्समाधिसिद्धयर्थं प्रत्याहारः प्रशस्यते ।
प्राणायामेन विक्षिप्तं मनः स्वास्थ्यं न विन्दति ॥
प्रत्याहृतं पुनः स्वस्थं सर्वोपाधिविवर्जितम् ।
चेतः समत्वमापन्नं स्वस्मिन्नेव लयं व्रजेत् ॥
वायोः संचारचातुर्यमणिमाद्यङ्गसाधनम् ।
प्रायः प्रत्यूहबीजं स्यान्मुनेर्मुक्तिमभीप्सतः ॥

अर्थात् – प्राणायाममें पवनके साधनसे विक्षिप्त हुआ मन स्वास्थ्यको प्राप्त नहीं करता, इस कारण समाधि सिद्धिके लिए प्रत्याहार करना आवश्यक है। इसके द्वारा मन राग-द्वेषसे रहित होकर आत्मामें लय हो जाता है। पवनसाधन शरीर-सिद्धिका कारण है, अतः मोक्षकी वांछा करनेवाले साधकके लिए विघ्नकारक हो सकता है। अतएव प्रत्याहार-द्वारा राग-द्वेषको दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिए।

धारणा – जिसका ध्यान किया जाये, उस विषयमें निश्चलरूपसे मनको लगा देना, धारणा है। धारणा-द्वारा ध्यानका अभ्यास किया जाता है।

ध्यान और समाधि – योग, ध्यान और समाधि ये प्रायः एकार्थवाचक हैं। योग कहनेसे जैनाम्नायमें ध्यान और समाधिका ही बोध होता है। ध्यानकी चरम सीमाको समाधि कहा जाता है। ध्यानके सम्बन्धमें ध्यान, ध्याता, ध्येय और फल इन चारों बातोंका विचार किया गया है। ध्यान चार प्रकारका है – आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल। इनमें आर्त और रौद्र ध्यान दुर्ध्यान हैं एवं धर्म और शुक्ल ध्यान शुभ ध्यान हैं। इष्ट-वियोग, अनिष्ट-संयोग, शारीरिक वेदना आदि व्यथाओंको दूर करनेके लिए संकल्प-विकल्प करना आर्तध्यान और हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह इन पाँचों पापोंके सेवनमें आनन्दका अनुभव करना और इस आनन्दकी उपलब्धिके लिए नाना तरहकी चिन्ताएँ करना रौद्रध्यान है।

धर्मसे सम्बद्ध बातोंका सतत चिन्तन करना धर्मध्यान है। इसके चार भेद हैं – आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय। जिनागमके अनुसार तत्त्वोंका विचार करना आज्ञाविचय; अपने तथा दूसरोंके राग, द्वेष, मोह आदि विकारोंको नाश करनेका उपाय चिन्तन करना अपायविचय, अपने तथा परके सुख-दुःख देखकर कर्मप्रकृतियोंके स्वरूपका चिन्तन करना विपाकविचय एवं लोकके स्वरूपका विचार करना संस्थानविचय धर्मध्यान है। इसके भी चार भेद हैं – पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत। शरीर स्थित आत्माका चिन्तन करना पिण्डस्थ ध्यान है। इसकी पाँच धारणाएँ बतायी गयी हैं – पार्थिवी, आग्नेयी, वायवी, जलीय और तत्त्वरूपवती।

पार्थिवी – इस धारणामें एक मध्यलोकके बराबर निर्मल जलका समुद्र चिन्तन करे और उसके मध्यमें जम्बू द्वीपके समान एक लाख योजन चौड़ा स्वर्ण-रंगके कमलका चिन्तन करे, इसकी कर्णिकाके मध्यमें सुमेरुपर्वतका चिन्तन करे। उस सुमेरुपर्वतके ऊपर पाण्डुक वनमें पाण्डुकशिला तथा उस शिलापर स्फटिक-मणिके आसनका एवं उस आसनपर पद्मासन लगाये ध्यान करते हुए अपना चिन्तन करे। इतना चिन्तन बार-बार करना पृथ्वी धारणा है।

आग्नेयी धारणा – उसी सिंहासनपर स्थिर होकर यह विचारे कि मेरे नाभि-कमलके स्थानपर भीतर ऊपरको उठा हुआ सोलह पत्तोंका एक कमल है

उसपर पीतरंगके अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः ये सोलह स्वर अंकित हैं तथा बीचमें 'हँ' लिखा है। दूसरा कमल हृदयस्थानपर नाभि-कमलके ऊपर आठ पत्तोंका औंधा कमल विचारना चाहिए। इसे ज्ञानावरणादि आठ कर्मोका कमल कहा गया है। पश्चात् नाभिकमलके बीच 'हँ' लिखा है, उसकी रेफसे धुँआ निकलता हुआ सोचे, पुनः अग्निकी शिखा उठती हुई सोचना चाहिए। आगकी ज्वाला उठकर आठों कर्मोके कमलको जलाने लगी। कमलके बीचसे फूटकर अग्निकी लौ मस्तकपर आ गयी। इसका आधा भाग शरीरके एक तरफ और शेष आधा भाग शरीरके दूसरी तरफ मिलकर दोनों कोने मिल गये। अग्निमय त्रिकोण सब प्रकारसे शरीरको वेष्टित किये हुए है। इस त्रिकोणमें र र र र र र र र अक्षरोंको अग्निमय फैले हुए विचारे अर्थात् इस त्रिकोणके तीनों कोण अग्निमय र र र अक्षरोंके बने हुए है। इसके बाहरी तीनों कोणोंपर अग्निमय साथिया तथा भीतरी तीनों कोणोंपर अग्निमय ॐ र्ह लिखा हुआ सोचे। पश्चात् सोचे कि भीतरी अग्निकी ज्वाला कर्मोको और बाहरी अग्निकी ज्वाला शरीरको जला रही है। जलते-जलते कर्म और शरीर दोनों ही जलकर राख हो गये है तथा अग्निकी ज्वाला शान्त हो गयी है अथवा पहलेकी रेफमे समा गयी है, जहाँसे वह उठी थी; इतना अभ्यास करना अग्नि-धारणा है।

वायु-धारणा – पुनः साधक चिन्तन करे कि मेरे चारो ओर प्रचण्ड वायु चल रही है। वह वायु गोल मण्डलाकार होकर मुझे चारों ओरसे घेरे हुए है। इस मण्डलमें आठ जगह 'स्वायँ-स्वायँ' लिखा है। यह वायुमण्डल कर्म तथा शरीरकी रजको उड़ा रहा है, आत्मा स्वच्छ तथा निर्मल होता जा रहा है। इस प्रकार ध्यान करना वायु-धारणा है।

जल-धारणा – पश्चात् चिन्तन करे कि आकाश मेघाच्छन्न हो गया है, बादल गरजने लगे हैं; बिजली चमकने लगी है और खूब जोरकी वर्षा होने लगी है। ऊपर पानीका एक अर्धचन्द्राकार मण्डल बन गया है, जिसपर प प प प प प प प कर्मस्थानोंपर लिखा है। गिरनेवाले पानीकी सहस्रधाराएँ आत्माके ऊपर लगी हुई कर्मरजको धोकर आत्माको साफ कर रही है। इस प्रकार चिन्तन करना जल-धारणा है।

तत्त्वरूपवती धारणा – वही साधक आगे चिन्तन करे कि अब मैं सिद्ध,

बुद्ध, सर्वज्ञ, निर्मल, निरंजन, कर्म तथा शरीरसे रहित चैतन्य आत्मा हूँ। पुरुषाकार चैतन्य धातुकी बनी हुई मूर्तिके समान हूँ। पूर्ण चन्द्रमाके समान ज्योतिरूप देदीप्यमान हूँ। इस प्रकार इन पाँचों धारणाओंके द्वारा पिण्डस्थ ध्यान किया जाता है।

पदस्थ ध्यान – मन्त्र-पदोंके द्वारा अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु तथा आत्माके स्वरूपका विचारना पदस्थ ध्यान है। किसी नियत स्थान – नासिकाग्र या भृकुटिके मध्यमें णमोकार मन्त्रको विराजमान कर उसको देखते हुए चित्तको जमाना तथा उस मन्त्रके स्वरूपका चिन्तन करना चाहिए। इस ध्यानका सरल और साध्य उपाय यह है कि हृदयमें आठ पत्तोंके कमलका चिन्तन करे। इस आठों पत्तों – दलोंमें-से पाँच पत्तोंपर क्रमशः '**णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।**' इन पाँच पदोंको तथा शेष तीन पत्तोंपर क्रमशः '**सम्यग्दर्शनाय नमः, सम्यग्ज्ञानाय नमः, सम्यक्चारित्राय नमः**' इन तीन पदोंको और कर्णिकापर '**सम्यक् तपसे नमः**' इस पदको लिखा हुआ सोचे। इस प्रकार प्रत्येक पत्तेपर लिखे हुए मन्त्रोंका ध्यान जितने समय तक कर सके, करे।

रूपस्थ – अरिहन्त भगवान्‌के स्वरूपका विचार करे कि भगवान् समवशरणमें द्वादश सभाओंके मध्यमें ध्यानस्थ विराजमान है। अथवा ध्यानस्थ प्रभु-मुद्राका ध्यान करे।

रूपातीत – सिद्धोंके गुणोंका विचार करे कि सिद्ध अमूर्तिक, चैतन्य, पुरुषाकार, कृतकृत्य, परमशान्त, निष्कलंक, अष्टकर्मरहित, सम्यक्त्वादि आठ गुणसहित, निर्लिप्त, निर्विकार एवं लोकाग्रमें विराजमान है। पश्चात् अपने-आपको सिद्ध स्वरूप समझकर लीन हो जाना रूपातीत ध्यान है।

शुक्लध्यान – जो ध्यान उज्ज्वल सफेद रंगके समान अत्यन्त निर्मल और निर्विकार होता है उसे शुक्लध्यान कहते हैं। इसके चार भेद हैं – पृथक्त्ववितर्कवीचार, एकत्ववितर्क अवीचार, सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाति और व्युपरतक्रियानिवृत्ति।

ध्याता – ध्यान करनेवाला ध्याता होता है। आत्मविकासकी दृष्टिसे ध्याता १४ गुणस्थानोंमें रहनेवाले जीव हैं, अतः इसके १४ भेद हैं। पहले गुणस्थानमें आर्तध्यान या रौद्रध्यान ही होता है। चौथे गुणस्थानमें धर्मध्यान होता है।

ध्येय – ध्यानके स्वरूपका कथन करते समय ध्येयके स्वरूपका प्रायः विवेचन किया जा चुका है। ध्येयके चार भेद हैं – नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। णमोकार मन्त्र नामध्येय है। तीर्थकरोंकी मूर्तियाँ स्थापनाध्येय हैं। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पंचपरमेष्ठी द्रव्यध्येय हैं और इनके गुण भावध्येय हैं। यों तो सभी शुद्धात्माएँ ध्येय हो सकती हैं। जिस साध्यको प्राप्त करना है, वह साध्य ध्येय होता है।

योगशास्त्रके इस संक्षिप्त विवेचनके प्रकाशमें हम पाते हैं कि णमोकारका योगके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। योगकी क्रियाओंका इसी मन्त्रराजकी साधना करनेके लिए विधान किया गया है। जैनाम्नायमें प्रधान स्थान ध्यानको दिया गया है। योगके आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार-क्रियाएँ शरीरको स्थिर करती हैं। साधक इन क्रियाओंके अभ्यास-द्वारा णमोकार मन्त्रका साधनाके योग्य अपने शरीरको बनाता है। धारणा-द्वारा मनकी क्रियाको अधीन करता है। तात्पर्य यह है कि योगों – मन, वचन, कायको स्थिर करनेके लिए योगाभ्यास करना पड़ता है। इन तीनों योगोंकी क्रिया तभी स्थिर होती है, जब साधक आरम्भिक साधनाके द्वारा अपनेको इस योग्य बना लेता है। इस विषयके स्पष्टीकरणके लिए गणितका गति-नियामक सिद्धान्त अधिक उपयोगी होगा। गणितशास्त्रमें आया है कि किसी भी गतिमान् पदार्थको स्थिर करनेके लिए उसे तीन लम्बसूत्रों-द्वारा स्थिर करना पड़ता है। इन तीन सूत्रोंसे आबद्ध करनेपर उसकी गति स्थिर हो जाती है। उदाहरणके लिए यों कहा जा सकता है कि वायुके द्वारा नाचते हुए बिजलीके बल्बको यदि स्थिर करना हो तो उसे तीन सम सूत्रोंके द्वारा आबद्ध कर देना होगा। क्योंकि वायु या अन्य किसी भी प्रकारके धक्केको रोकनेके लिए चौथे सूत्रसे आबद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं होगी। इसी प्रकार णमोकार मन्त्रकी स्थिर साधना करनेके लिए साधकको अपनी त्रिसूत्र रूप मन, वचन और कायकी क्रियाको अवरुद्ध करना पड़ेगा। इसीके लिए आसन, प्राणायाम और प्रत्याहारकी आवश्यकता है। मनके स्थिर करनेसे ही ध्यानकी क्रिया निर्विघ्नतया चल सकती है।

ध्यान करनेका विषय—ध्येय णमोकार मन्त्रसे बढ़कर और कोई पदार्थ नहीं हो सकता है। पूर्वोक्त नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इन चारों प्रकारके ध्येयों-

द्वारा णमोकारमन्त्रका ही विधान किया गया है। साधक इस मन्त्रकी आराधना-द्वारा अनात्मिक भावोंको दूर कर आत्मिक भावोंका विकास करता जाता है और गुणस्थानारोहण कर निर्विकल्प समाधिके पहले तक इस मन्त्रका या इस मन्त्रमें वर्णित पंचपरमेष्ठीका अथवा उनके गुणोंका ध्यान करता हुआ आगे बढ़ता रहता है। ज्ञानार्णवमें बताया गया है –

> गुरुपञ्चनमस्कारलक्षणं मन्त्रमूर्जितम् ।
> विचिन्तयेज्जगज्जन्तुपवित्रीकरणक्षमम् ॥
> अनेनैव विशुद्धयन्ति जन्तवः पापपङ्किताः ।
> अनेनैव विमुच्यन्ते भवक्लेशान्मनीषिणः ॥
> – ज्ञानार्णव प्र० ३८, श्लो० ३८, ४३

अर्थात् – णमोकार जो कि पंचपरमेष्ठी नमस्कार रूप है, जगत्के जीवको पवित्र करनेमें समर्थ है। इसी मन्त्रके ध्यानसे प्राणी पापसे छूटते हैं तथा बुद्धिमान् व्यक्ति संसारके कष्टोंसे भी। इसी मन्त्रकी आराधना-द्वारा सुख प्राप्त करते है। यह ध्यानका प्रधान विषय है। हृदय-कमलमें इसका जप करनेसे चित्त शुद्ध होता है।

जाप तीन प्रकारसे किया जाता है – वाचक, उपांशु और मानस। वाचक जापमें शब्दोंका उच्चारण किया जाता है अर्थात् मन्त्रको मुँहसे बोल-बोलकर जाप किया जाता है। उपांशुमें भीतरसे शब्दोच्चारणकी क्रिया होती है, पर कण्ठ-स्थानपर मन्त्रके शब्द गूँजते रहते है किन्तु मुखसे नही निकल पाते। इस विधिमें शब्दोच्चारणकी क्रियाके लिए बाहरी और भीतरी प्रयास किया जाता हैं, परन्तु शब्द भीतर गूँजते रहते हैं, बाहर प्रकट नही हो पाते। मानस जापमें बाहरी और भीतरी शब्दोच्चारणका प्रयास रुक जाता है, हृदयमें णमोकार मन्त्रका चिन्तन होता रहता है। यही क्रिया ध्यानका रूप धारण करती है। यशस्तिलकचम्पूमें इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है –

> वचसा वा मनसा वा कार्यो जाप्यः समाहितस्वान्ते ।
> शतगुणमाद्ये पुण्ये सहस्रसंख्यं द्वितीये तु ॥
> – य० भा० २, पृ० ३८

वाचक जापसे उपांशुमें शतगुणा पुण्य और उपांशु जापकी अपेक्षा मानसजापमें सहस्रगुणा पुण्य होता है। मानस जाप ही ध्यानका रूप है, यह अन्तर्जल्परहित मौनरूप होता है। बृहद्द्रव्यसंग्रहमें बताया गया है –"**एतेषां पदानां सर्वमन्त्रवाद-पदेषु मध्ये सारभूतानां इहलोकपरलोकेष्टफलप्रदानामर्थं ज्ञात्वा पश्चादनन्तज्ञाना-दिगुणस्मरणरूपेण वचनोच्चारणेन च जापं कुरुत। तथैव शुभोपयोगरूपत्रिगुप्ता-वस्थायां मौनेन ध्यायत।**" अर्थात् – सब मन्त्रशास्त्रके पदोंमें सारभूत और इस लोक तथा परलोकमें इष्ट फलको देनेवाले परमेष्ठी वाचक पंच पदोंका अर्थ जान-कर, पुनः अनन्तज्ञानादि गुणोंके स्मरणरूप वचनका उच्चारण करके जप करना चाहिए और इसी प्रकार शुभोपयोगरूप इस मन्त्रका मन, वचन और काय गुप्तिको रोककर मौन-द्वारा ध्यान करना चाहिए। सर्वभूतहितरत, अचिन्त्यचरित्र ज्ञानामृत-पयःपूर्ण तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाले, दिव्य, निर्विकार, निरंजन विशुद्ध ज्ञान-लोचनके धारक, नवकेवललब्धियोंके स्वामी, अष्टमहाप्रातिहार्योंसे विभूषित स्वयंबुद्ध अरिहन्त परमेष्ठीका ध्यान भी किया जाता है, अथवा सामूहिक रूपमें पंचपरमेष्ठीका मौन चिन्तन भी ध्यानका रूप ग्रहण कर लेता है।

पदस्थ और रूपस्थ दोनों प्रकारके ध्यानोंमें इस महामन्त्रके स्मरण-द्वारा ही आत्माकी सिद्धि की जाती है; क्योंकि महामन्त्र और शुद्धात्मामें कोई अन्तर नहीं है। शुद्धात्माका वर्णन ही महामन्त्रमें है और उसीके ध्यानसे निर्वि-कल्प समाधिकी प्राप्ति होती है। अतः ध्यानका दृढ़ अभ्यास हो जानेपर साधकको यह अनुभव करना आवश्यक है कि मैं परमात्मा हूँ, सर्वज्ञ हूँ, मैं ही साध्य, हूँ, मैं ही सिद्ध हूँ, सर्वदर्शी भी मैं ही हूँ। मैं सत्, चित्त, आनन्दरूप हूँ, अज हूँ, निरंजन हूँ। इस प्रकार चिन्तन करता हुआ साधक जब समस्त संकल्प-विकल्पोंसे विमुक्त हो अपने-आपमें विलीन हो जाता है, तब उसे निर्विकल्प ध्यान या परम समाधिकी प्राप्ति होती है।

हेमचन्द्राचार्यने अपने योगशास्त्रमें योगांगोंके साथ णमोकार मन्त्रका सम्बन्ध दिखलाते हुए बतलाया है कि योगाभ्यास-द्वारा शरीर और मनकी क्रियाओंका नियन्त्रण कर आत्माको ध्यानके मार्गमें ले जाना चाहिए। साधक सविकल्प समाधिकी अवस्थामें इस अनादिसिद्ध मन्त्रके ध्यानसे अन्तःआत्माको पवित्र करता है। पंचपरमेष्ठीके तुल्य शुद्ध होकर निर्वाण मार्गका आश्रय लेता है। बताया

गया है –

> ध्यायतोऽनादिसंसिद्धान् वर्णानेतान् यथाविधि ।
> नष्टादिविषये ज्ञानं ध्यातुरुत्पद्यते क्षणात् ॥
> तथा पुण्यतमं मन्त्रं जगत्त्रितयपावनम् ।
> योगी पञ्चपरमेष्ठिनमस्कारं विचिन्तयेत् ॥
> विशुद्धया चिन्तयंस्तस्य शतमष्टोत्तरं मुनिः ।
> भुञ्जानोऽपि लभेतैव चतुर्थतपसः फलम् ॥
> एनमेव महामन्त्रं समाराध्येह योगिनः ।
> त्रिलोक्यापि महीयन्तेऽधिगताः परमां श्रियम् ॥

अर्थात्—अनादि सिद्ध णमोकार मन्त्रके वर्णोंका ध्यान करनेसे साधकको इष्टादि विषयका ज्ञान क्षण-भरमें हो जाता है। यह मन्त्र तीनों लोकोंके जीवोंको पवित्र करता है। इसके ध्यानमें – अन्तर्जल्परहित चिन्तनसे आत्मामें अपूर्व शक्ति आती है। नित्य मन, वचन और कायकी शुद्धिपूर्वक इस मन्त्रका १०८ बार ध्यान करनेसे भोजन करनेपर भी चतुर्थोपवास – प्रोषधोपवासका फल प्राप्त होता है। योगी व्यक्ति इस मन्त्रकी आराधनासे अनेक प्रकारकी सिद्धियोंको प्राप्त होता है तथा तीनों लोकोंमें पूज्य हो जाता है।

णमोकार मन्त्रकी सभी मात्राएँ अत्यन्त पवित्र हैं, इन मात्राओंमें-से किसी मात्राका तथा णमोकार मन्त्रके ३५ अक्षरों और पाँच पदोंमें-से किसी अक्षर और पदका अथवा इन अक्षरों, पदों और मात्राओंके संयोगसे उत्पन्न अक्षर, पदों और मात्राओंका जो ध्यान करता है, वह सिद्धिको प्राप्त होता है। ध्यानके अवलम्बन णमोकार मन्त्रके अक्षर, पद और ध्वनियाँ ही हैं। जबतक साधक सविकल्प समाधिमें रहता है, तबतक उसके ध्यानका अवलम्बन णमोकार ही होता है। हेमचन्द्राचार्यने पदस्थ ध्यानका वर्णन करते हुए बताया है –

> यत्पदानि पवित्राणि समालम्ब्य विधीयते ।
> तत्पदस्थं समाख्यातं ध्यानं सिद्धान्तपारगैः ॥

अर्थात्—पवित्र णमोकार मन्त्रके पदोंका आलम्बन लेकर जो ध्यान किया जाता है, उसको पदस्थ ध्यान सिद्धान्तशास्त्रके ज्ञाताओंने कहा है। रूपस्थ ध्यान-

में अरिहन्तके स्वरूपका अथवा णमोकार मन्त्रके स्वरूपका चिन्तन करना चाहिए। रूपस्थ ध्यानमें आकृतिविशेषका ध्यान करनेका विधान है। यह आकृतिविशेष पंचपरमेष्ठीकी होती है तथा विशेष रूपसे इसमें अरिहन्त भगवान्की मुद्राका ही आलम्बन किया जाता है।

रूपातीतमें ज्ञानावरणादि आठ कर्म और औदारिकादि पाँच शरीरोंसे रहित, लोक और अलोकके ज्ञाता, द्रष्टा, पुरुषाकारके धारक, लोकाग्रपर विराजमान सिद्ध-परमेष्ठी ध्यानके विषय हैं तथा णमोकार मन्त्रकी रूपाकृतिरहित, उसका भाव या पंचपरमेष्ठीके अमूर्तिक गुण ध्यानका आलम्बन होते हैं। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती और शुभचन्द्रने रूपातीत ध्यानमें अमूर्तिक अवलम्बन माना है तथा यह अमूर्तिक अवलम्बन णमोकार मन्त्रके पदोक्त गुणोंका होता है। हरिभद्रसूरिने अपने योगबिन्दु ग्रन्थमें "अक्षरद्वयमेतत् श्रूयमाणं विधा-नतः" इस श्लोककी स्वोपज्ञटीकामें योगशास्त्रका सार णमोकार मन्त्रको बताया है। इस महामन्त्रकी आराधनासे समता भावकी प्राप्ति होती है तथा आत्मसिद्धि भी इसी मन्त्रके ध्यानसे आती है। अधिक क्या, इस मन्त्रके अक्षर स्वयं योग हैं। इसकी प्रत्येक मात्रा, प्रत्येक पद, प्रत्येक वर्ण अमितशक्तिसम्पन्न हैं। वह लिखते हैं – "अक्षरद्वयमपि किं पुनः पञ्चनमस्कारादीन्यनेकान्यक्षराणीत्यपि शब्दार्थः। एतत् 'योगः' इति शब्दलक्षणं श्रूयमाणमाकर्ण्यमानम्। तथाविधार्थानवबोधेऽपि 'विधानतो' विधानेन श्रद्धासंवेगादिशुद्धभावोल्लासकरकुड्मलयोजनादिलक्षणेन, गीतयुक्तं पापक्षयाय मिथ्यात्वमोहाद्यकुशलकर्मनिर्मूलनायोच्चैरित्यर्थम्"। अर्थात् ध्यान करनेके लिए ध्येय णमोकार मन्त्रके अक्षर, पद एवं ध्वनियाँ हैं। इन्हींको योग भी कहा जाता है, यदि इन शब्दोंको सुनकर भी अर्थका बोध न हो तो भी श्रद्धा, संवेग और शुद्ध भावोल्लासपूर्वक हाथ जोड़कर इस मन्त्रका जाप करनेसे मिथ्यात्व मोह आदि अशुभ कर्मोंका नाश होता है। इससे स्पष्ट है कि हरिभद्रसूरिने पंचपरमेष्ठी वाचक णमोकार मन्त्रके अक्षरोंको 'योग' कहा है। अतएव णमोकारमन्त्र स्वयं योगशास्त्र है, योगशास्त्रके सभी ग्रन्थोंका प्रणयन इस महामन्त्रको हृदयंगम करने तथा इसके ध्यान-द्वारा आत्माको पवित्र करनेके लिए हुआ है। 'योग' शब्दका अर्थ जो संयोग किया जाता है, उस दृष्टिसे णमोकार मन्त्रके अक्षरोंका संयोग – शुद्धात्माको चिन्तन कर अर्थात् शुद्धात्माओंसे अपना

सम्बन्ध जोड़कर अपनी आत्माको शुद्ध बनाना है। 'धर्म-व्यापार' को जब योग कहा जाता है, उस समय णमोकार मन्त्रोक्त शुद्धात्माके व्यापार-प्रयोग-ध्यान, चिन्तन-द्वारा अपनी आत्माको शुद्ध करना अभिप्रेत है। अतएव णमोकार मन्त्र और योगका प्रतिपाद्य-प्रतिपादकभाव सम्बन्ध है; क्योंकि आचार्योंने अभेद विवक्षा-से णमोकारमन्त्रको योग कहा है, इस दृष्टिसे योगका तादात्म्यभाव सम्बन्ध भी सिद्ध होता है। तथा भेद विवक्षासे णमोकार मन्त्रकी साधनाके लिए योगका विधान किया है। अर्थात् योग-क्रिया-द्वारा णमोकार मन्त्रकी साधना की जाती है, अतः इस अपेक्षासे योगको साधन और णमोकार मन्त्रको साध्य कहा जा सकता है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्यय इन पंचागों-द्वारा णमोकार मन्त्रको साधने योग्य शरीर और मनको एकाग्र किया जाता है। ध्यान और धारणा क्रिया-द्वारा मन, वचन और कायकी चंचलता बिलकुल रुक जाती है तथा साधक णमोकार मन्त्र रूप होकर सविकल्प समाधिको पार करनेके उपरान्त निर्विकल्प समाधिको प्राप्त होता है। जिस प्रकार रातमें समस्त बाहरी कोलाहलके रुक जानेपर रेडियोकी आवाज साफ सुनाई पड़ती है तथा दिनमे शब्द-लहरोंपर बाहरी वाता-वरणका घात-प्रतिघात होता रहता है, अतः आवाज साफ सुनाई नही पड़ती है। पर रातमें शब्द-लहरोंपर-से आघात छूट जानेपर स्पष्ट आवाज सुनाई पड़ने लगती है। इसी प्रकार जबतक हमारे मन, वचन और काय स्थिर नहीं होते हैं, तबतक णमोकार मन्त्रकी साधनामें आत्माको स्थिरता प्राप्त नही होती है; किन्तु उक्त तीनों– मन, वचन और कायके स्थिर होते ही साधनामें निश्चलता आ जाती है। इसी कारण कहा गया है कि साधकको ध्यान-सिद्धिके लिए चित्तकी स्थिरता रखनी परम आवश्यक है। मनकी चंचलतामें ध्यान बनता नही। अतः मनोनुकूल स्त्री, वस्त्र, भोजनादि इष्ट पदार्थोंमे मोह न करो, राग न करो और मनके प्रतिकूल पड़नेवाले सर्प, विष, कण्टक, शत्रु, व्याधि आदि अनिष्ट पदार्थोंमें द्वेष मत करो, क्योंकि इन इष्ट-अनिष्ट पदार्थोंमें राग-द्वेष करनेसे मन चंचल होता है और मनके चंचल रहनेसे निर्विकल्प समाधिरूप ध्यानका होना सम्भव नही। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीने इसी बातको स्पष्ट किया है—

मा मुज्झह मा रज्जह मा दूसह इट्ठणिट्ठट्ठेसु।
थिरमिच्छह जइ चित्तं विचित्तझाणप्पसिद्धीए॥

णमोकार मन्त्रका बार-बार स्मरण, चिन्तन करनेसे मस्तिष्कमें स्मृति-चिह्न (Memory Trace) बन जाते हैं, जिससे इस मन्त्रकी धारणा (Retaining) हो जानेसे व्यक्ति अपने मनको आत्मचिन्तनमें लगा सकता है। अभिरुचि, अर्थ, अभ्यास, अभिप्राय, जिज्ञासा और मनोवृत्तिके कारण ध्यानमें मजबूती आती है। जब ध्येयके प्रति अभिरुचि उत्पन्न हो जाती है तथा ध्येयका अर्थ अवगत हो जाता है और उस अर्थको बार-बार हृदयंगम करनेकी जिज्ञासा और मनोवृत्ति बन जाती है, तब ध्यानकी क्रिया पूर्णताको प्राप्त हो जाती है। अतएव योग-मार्गके द्वारा णमोकार मन्त्रकी साधनामें सहायता प्राप्त होती है। इस मार्गकी अनभिज्ञता-मे व्यक्तिको ध्येय वस्तुके प्रति अभिरुचि, अर्थ, अभ्यास आदिका आविर्भाव नहीं हो पाता है। अतः णमोकार मन्त्रकी साधना योग-द्वारा करना चाहिए।

आगम साहित्यको श्रुतज्ञान कहा जाता है। णमोकार मन्त्रमें समस्त श्रुतज्ञान है तथा यह समस्त आगमका सार है। दिगम्बर, श्वेताम्बर और स्थानकवासी

आगम-साहित्य और णमोकारमन्त्र

इन तीनों ही सम्प्रदायके आगममें णमोकार महामन्त्रके सम्बन्धमें बहुत कुछ पाया जाता है। आचारांग, सूत्र-कृतांग, स्थानांग आदि नाम द्वादशांगके तीनों ही सम्प्रदायमें एक है। दिगम्बर सम्प्रदायमें १४ अंग बाह्य तथा ४ अनुयोग प्रमाण-भूत; श्वेताम्बर सम्प्रदायमें ३४ अंग बाह्य – १२ उपांग, १० प्रकीर्णक, ६ छेदसूत्र, ४ मूलसूत्र और दो चूलिका सूत्र प्रमाणभूत एवं स्थानकवासी सम्प्रदायमें २१ अंग बाह्य, १२ उपांग, ४ छेदसूत्र, ४ मूलसूत्र और १ आवश्यक प्रमाणभूत माने गये है। इन सभी आगम ग्रन्थोंमें णमोकारका व्याख्यान, उत्पत्ति, निक्षेप, पद, पदार्थ, प्ररूपणा, वस्तु, आक्षेप, प्रसिद्धि, क्रम, प्रयोजन और फल इन दृष्टि-कोणोंसे किया गया है।

उत्पत्ति–द्वारमें नयोंका अवलम्बन लेकर णमोकारमन्त्रकी उत्पत्ति और अनुत्पत्ति – नित्यानित्यत्वका विस्तारसे विचार किया गया है। क्योंकि वस्तुके स्वरूपका वास्तविक विवेचन नय और प्रमाणके बिना हो नहीं सकता। नयके जैनागममें सात भेद हैं – नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूत। सामान्यसे नयके द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक ये दो भेद किये जाते हैं। द्रव्यको प्रधान रूपसे विषय करनेवाला नय द्रव्यार्थिक और पर्यायको प्रधानतः

विषय करनेवाला पर्यायार्थिक कहा जाता है। पूर्वोक्त सातों नयोंमें-से नैगम, संग्रह और व्यवहार ये तीन भेद द्रव्यार्थिकके और ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत पर्यायार्थिक नयके भेद हैं। सातों नयोंकी अपेक्षासे इस महामन्त्रकी उत्पत्ति और अनुत्पत्तिके सम्बन्धमें विचार करते हुए कहा जाता है कि द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा यह मन्त्र नित्य है। शब्दरूप पुद्गलवर्गणाएँ नित्य हैं, उनका कभी विनाश नहीं होता है। कहा भी है –

उप्पणाणुप्पणो इत्थ नया णोगमस्सणुप्पण्णो।
सेसाणं उप्पण्णो जइ कत्तो तिविह सामित्ता॥

अर्थात् – नैगमनकी अपेक्षा यह णमोकार मन्त्र अनुत्पन्न – नित्य है। सामान्य मात्र विषयको ग्रहण करनेके कारण इस नयका विषय ध्रौव्यमात्र है। उत्पाद और व्ययको यह नहीं ग्रहण करता, अतएव इस नयकी अपेक्षासे यह मन्त्र नित्य है। विशेष पर्यायको ग्रहण करनेवाले नयोंकी अपेक्षासे यह मन्त्र उत्पाद-व्ययसे युक्त है। क्योंकि इस महामन्त्रकी उत्पत्तिके हेतु समुत्थान, वचन और लब्धि ये तीन हैं। णमोकारमन्त्रका धारण सशरीरी प्राणी करता है और शरीरकी प्राप्ति अनादिकालसे बीजांकुर न्यायसे होती आ रही है तथा प्रत्येक जन्ममें भिन्न-भिन्न शरीर होते हैं, अतः वर्तमान जन्मके शरीरकी अपेक्षा णमोकार मन्त्र सादि और सोत्पत्तिक है। इस मन्त्रकी प्राप्ति गुरुवचनोंसे होती है, अतः उत्पत्तिवाला होनेसे सादि है। इस महामन्त्रकी प्राप्ति योग्य श्रुतज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होनेपर ही होती है, इस अपेक्षासे यह मन्त्र उत्पाद-व्ययवाला प्रमाणित होता है।

उपर्युक्त विवेचनसे सिद्ध होता है कि नैगम, संग्रह और व्यवहार नयकी अपेक्षा यह मन्त्र नित्य, अनित्य दोनों प्रकारका है। ऋजुसूत्र नयकी अपेक्षा इस महामन्त्रकी उत्पत्तिमें वचन – उपदेश और लब्धि ज्ञानावरणीय और वीर्यान्तरायकर्मका क्षयोपशम विशेष कारण है तथा शब्दादि नयकी अपेक्षा केवललब्धि ही कारण है। इन पर्यायार्थिक नयोंको अपेक्षासे यह णमोकारमन्त्र उत्पाद-व्ययात्मक है। कहा भी गया है –

"आद्यनैगमः सत्तामात्रग्राही, ततस्तस्याद्यनैगमस्य मतेन सर्ववस्तु नाभूतं नाविषमानं किंतु सर्वदैव सर्वं सदेव। अतः आद्यं नैगमस्य, स नमस्कारो नित्य

एव वस्तुत्वात् नभोवत्।"

शब्द और अर्थकी अपेक्षासे भी यह णमोकारमन्त्र नित्यानित्यात्मक है। शब्द नित्य और अनित्य दोनों प्रकारके होते हैं। अतः सर्वथा शब्दोंको नित्य माना जाये तो सभी स्थानोंपर शब्दोंके श्रवणका प्रसंग आ येगा और अनित्य माना जाये तो नित्य सुमेरु, चन्द्र, सूर्य आदिका संकेत शब्दसे नहीं हो सकेगा। अतः पौद्गलिक शब्द-वर्गणाएँ नित्य हैं यथा व्यवहारमें आनेवाले शब्द अनित्य हैं। शब्दोंके नित्यानित्यात्मक होनेसे णमोकार मन्त्र भी नित्यानित्यात्मक है। अर्थकी दृष्टिसे यह नित्य है, क्योंकि इसका अर्थ वस्तुरूप है और वस्तु अनादिकालसे अपने स्वरूपमें अवस्थित चली आ रही है और अनन्तकाल तक अवस्थित चली जायेगी। सामान्य विशेषात्मक वस्तुका ग्रहण और विवेचन नेय तथा प्रमाणके द्वारा ही हो सकता है। प्रमाणनयात्मक वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक हुआ करती है और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक ही वस्तु नित्यानित्य कही जाती है।

निक्षेप—अर्थ-विस्तारको निक्षेप कहते हैं। निक्षेप-विस्तारमें णमोकार मन्त्रके अर्थका विस्तार किया जाता है। निक्षेपके चार भेद हैं – नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। णमोकार मन्त्रका भी नाम नमस्कार, स्थापना नमस्कार, द्रव्य नमस्कार और भाव नमस्कार इन चार अर्थोंमें प्रयोग होता है। 'नमः' कहकर अक्षरोंका उच्चारण करना नाम नमस्कार और मूर्ति, चित्र आदिमें पंचपरमेष्ठीकी स्थापना कर नमस्कार करना स्थापना नमस्कार है। द्रव्य नमस्कारके दो भेद हैं – आगम द्रव्य नमस्कार और नोआगम द्रव्य नमस्कार। उपयोगरहित 'नमः' इस शब्दका प्रयोग करना आगम नमस्कार और उपयोगसहित नमस्कार करना नोआगम नमस्कार होता है। इसके तीन भेद हैं – ज्ञायक, भाव्य और तद्व्यतिरिक्त। भाव नमस्कारके भी दो भेद हैं – आगमभाव नमस्कार और नोआगम-

---

१. अनभिनिर्वृत्तार्थसंकल्पमात्रग्राही नैगमः। स्वजात्यविरोधेनैकध्यमुपनीय पर्यायानाक्रान्तभेदानविशेषेण समस्तग्रहणात्संग्रहः। संग्रहनयाक्षिप्तानामर्थानां विधिपूर्वकमवहरणं व्यवहारः। ऋजुं प्रगुणं सूत्रयति तन्त्रयति इति ऋजुसूत्रः। लिङ्गसंख्यासाधनादिव्यभिचारनिवृत्तिपरः शब्दनयः। नानार्थसमभिरोहणात् समभिरूढः। येनात्मना भूतस्तेनैवाध्यवसाययतीत्येवंभूतः। अथवा येनात्मना येन ज्ञानेन भूतः परिणतस्तेनैवाध्यवसाययति।

—सर्वार्थसिद्धि, पृ० ८४-८७

भाव नमस्कार। णमोकार मन्त्रका अर्थज्ञाता, उपयोगवान् आत्मा आगमभाव नमस्कार और उपयोगसहित 'णमो अरिहंताणं' इन वचनोंका उच्चारण तथा हाथ, पाँव, मस्तक आदिकी नमस्कार-सम्बन्धी क्रियाको करना नोआगमभाव नमस्कार है। इस प्रकार निक्षेप-द्वारा णमोकार मन्त्रके अर्थका आशय हृदयंगम किया जाता है।[1]

पद-द्वार – "पद्यते गम्यतेऽर्थोऽनेनेति पदम्" अर्थात् जिसके द्वारा अर्थबोध हो, उसे पद कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं – नामिक, नैपातिक, औपसर्गिक, आख्यातिक और मिश्र। संज्ञावाचक प्रत्ययोंसे सिद्ध होनेवाले शब्द नामिक कहे जाते हैं, जैसे अश्व, घट आदि। अव्ययवाची शब्द नैपातिक कहे जाते हैं, जैसे खलु, ननु, च आदि। उपसर्गवाचक प्रत्ययोंको शब्दोंके पहले जोड़ देनेसे जो नवीन शब्द बनते हैं, वे औपसर्गिक कहे जाते हैं। जैसे परिगच्छति, परिधावति। क्रियावाचक धातुओं से निष्पन्न होनेवाले शब्द आख्यातिक कहलाते हैं, जैसे धावति, गच्छति आदि। कृदन्त – कृत् प्रत्यय और तद्धित प्रत्ययों से निष्पन्न शब्द मिश्र कहे जाते हैं, जैसे नायकः, पावकः, जैनः, संयतः आदि। पद-द्वारका प्रयोजन णमोकार मन्त्रमें प्रयुक्त शब्दोंका वर्गीकरण कर उनके अर्थका अवधारण करना है– शब्दोंकी निष्पत्तिको ध्यान मे रखकर नैपातिक प्रभृति शब्दोका अर्थ एवं उनका रहस्य अवगत करना ही इस द्वार का उद्देश्य है। कहा गया है – "निपतत्यर्हदादिपदानामादिपर्यन्तयोरिति निपातः, निपातादागतं तेन वा निर्वृत्तं स एव वा स्वार्थिकप्रत्ययविधान्नैपातिकम् – नमः इति पदम्"। तात्पर्य यह है कि णमोकार मन्त्रके पदोंकी प्रकृति और प्रत्ययकी दृष्टिसे व्याख्या करना पद-द्वार है। इस द्वारकी उपयोगिता शब्दों की शक्तिको अवगत करने में है। शब्दोमे नैसर्गिक शक्ति पायी जाती है और इस शक्तिका बोध इसी द्वारके द्वारा सम्भव है। जबतक शब्दोंका व्याकरणके प्रकृति-प्रत्ययकी दृष्टिसे वर्गीकरण नहीं किया जाता है, तबतक यथार्थ रूपमें शब्द-शक्तिका बोध नहीं हो सकता। णमोकार मन्त्रके समस्त पद कितने शक्तिशाली हैं तथा पृथक्-पृथक् पदोंमें कितनी शक्ति है और इन पदोंकी शक्तिका उपयोग आत्म-कल्याणके लिए किस प्रकार किया जा सकता है?

---

१. विशेषके लिए देखें, धवला टीका, प्रथम पुस्तक, पृ० ८-६०।

आत्माकी कर्मावरणके कारण अवरुद्ध शक्ति किस प्रकार इस महामन्त्रकी शक्तिके द्वारा प्रस्फुटित हो सकती है ? आदि बातोंका विचार इस पद-द्वार में होता है। यह केवल शब्दोंकी रचना या उस रचना-द्वारा सम्पन्न व्युत्पत्तिका ही प्रदर्शन नहीं करता, बल्कि इस मन्त्रकी पद, अक्षर और ध्वनि शक्तिका विश्लेषण करता है।

पदार्थद्वार – द्रव्य और भावपूर्वक णमोकार मन्त्रके पदोंकी व्याख्या करना पदार्थद्वार है। "इह नमोऽर्हद्भ्यः, इत्यादिषु यत् नमः इति पदं तस्य नम इति पदस्यार्थः पदार्थः, स च पूजालक्षणः, स च कः ? इत्याह द्रव्यसंकोचनं भावसंकोचनं च। तत्र द्रव्यसंकोचनं करशिरःपदादिसंकोचः। भावसंकोचनं तु विशुद्धस्य मनसोऽर्हदादिगुणेषु निवेशः।" अर्थात् 'नमः अर्हद्भ्यः' इत्यादि पदोंमें नमः शब्द पूजार्थक है। पूजा दो प्रकार से सम्पन्न की जाती है – द्रव्य-संकोच और भाव-संकोच-द्वारा। द्रव्य-संकोचसे अभिप्राय है हाथ, सिर आदिका झुकाना–नम्रीभूत करना और भाव-संकोचका तात्पर्य भगवान् अरिहन्तके गुणोंमें मनको लगाना। द्रव्य-संकोच और भाव-संकोच के संयोगी चार भंग होते हैं – [१] द्रव्य-संकोच न भाव-संकोच, [२] भाव-संकोच न द्रव्य-संकोच, [३] द्रव्य-संकोच भाव-संकोच और [४] न द्रव्य-संकोच न भाव-संकोच। हाथ, सिर आदिको नम्र करना, परन्तु भीतरी अन्तरंग परिणतिमें नम्रताका न आना अर्थात् अन्तरंग परिणामों में श्रद्धाभावका अभाव हो और ऊपरसे श्रद्धा प्रकट करना यह प्रथम भंगका अर्थ है। दूसरे भंगके अनुसार भीतर परिणामोंमें श्रद्धा-भाव रहे, किन्तु ऊपर श्रद्धा न दिखलाना। फलतः नमस्कार करते समय भीतर श्रद्धा रहनेपर भी; हाथ न जोड़ना और सिरको न झुकाना। तृतीय भंगका अर्थ है कि भीतर भी श्रद्धा हो और ऊपर से भी हाथ जोडना, सिर झुकाना आदि नमस्कार की क्रियाओंको सम्पन्न करे। चौथे भंगका अर्थ है कि भीतर भी श्रद्धाकी कमी और ऊपर भी नमस्कार-सम्बन्धी क्रियाओंका अभाव रहे।

पदार्थद्वारका तात्पर्य यह है कि द्रव्यभावशुद्धिपूर्वक णमोकार मन्त्रका स्मरण, मनन और जप करना। श्रद्धापूर्वक पंचपरमेष्ठीकी शरणमें जाने तथा शरणसूचक शारीरिक क्रियाओंके सम्पन्न करनेसे ही आत्मामें शक्तिका जागरण होता है। कर्माविष्ट आत्मा शुद्धात्माओंको द्रव्यभावकी शुद्धिपूर्वक नमस्कार करनेसे उनके आदर्शसे तद्रूप बनती है।

प्ररूपणाद्वार – वाच्य-वाचक प्रतिपाद्य-प्रतिपादक विषय-विषयी भावकी दृष्टिसे णमोकार मन्त्रके पदोंका व्याख्यान करना प्ररूपणाद्वार है। इसमें किं, कस्य, केन, क्व, कियत्कालं और कतिविधं इन छह प्रश्नोंका अर्थात् निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधानका समाधान किया जाता है। सबसे पहले यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि णमोकारमन्त्र क्या वस्तु है ? जीव है या अजीव ? जीव-अजीवमें भी द्रव्य है या गुण ? नैगम आदि नयोंकी अपेक्षा जीव ही णमोकार है; क्योंकि ज्ञानमय जीव होता है और णमोकार श्रुतज्ञानमय है। अतएव पंचपरमेष्ठी-वाचक णमोकारमन्त्र जीव है। इसकी रूपाकृति – शब्दोंको अजीव कहा जा सकता है; पर भाव जो कि ज्ञानमय है, जीवस्वरूप है। द्रव्य और गुणके प्रश्नोंमें गुणोंका समुदाय द्रव्य होता है तथा द्रव्य और गुणमें कथंचित् भेदाभेदात्मक सम्बन्ध है; अतः णमोकार मन्त्र कथंचित् द्रव्यात्मक और कथंचित् गुणात्मक है।

यह नमस्कार किसको किया जाता है, इस प्रश्नका उत्तर यह है कि यह नमस्कार पूज्य – नमस्कार करने योग्योंको किया जाता है। पूज्य जीव और अजीव दोनों हो सकते हैं। जीवमें अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु तथा अजीवमें इनकी प्रतिमाएँ नमस्कार्य होती हैं।

'केन' किस प्रकार णमोकार मन्त्रकी उपलब्धि होती है, इस प्ररूपणामें निर्युक्तिकारने बताया है कि जबतक अन्तरंगमें क्षयोपशमकी वृद्धि नहीं होती है, इस मन्त्रपर आस्था नहीं उत्पन्न हो सकती है। कहा है –

> णाणावरणिज्जस्स य, दंसणमोहस्स जो खओवसमो।
> जीवमजीवे अट्ठसु भंगेसु य होइ सव्वत्थ ॥२८९३॥

अर्थात् – जीवको ज्ञानावरणादि आठों कर्मोंमें-से – मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमके साथ मोहनीयकर्मका क्षयोपशम होनेपर णमोकार मन्त्रकी प्राप्ति होती है। णमोकार मन्त्र श्रुतज्ञानरूप होता है और श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक ही होता है, अतः मतिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमके साथ, मोहनीय कर्मका क्षयोपशम भी होना आवश्यक है। क्योंकि आत्मस्वरूपके प्रति आस्था मिथ्यात्व कर्मके अभावमें ही होती है। अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभके विसंयोजनके साथ मिथ्यात्वका क्षय उपशम या क्षयोपशम होना इस मन्त्रकी उपलब्धिके लिए आवश्यक है। इस महामन्त्रकी उपलब्धिमें अन्तरायकर्मका क्षयोपशम भी एक कारण

है। यतः भीतरी योग्यताके प्रकट होनेपर ही इस महामन्त्रकी उपलब्धि होती है।

'क्व' यह नमस्कार कहाँ होता है? इसका आधार क्या है? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि यह नमस्कार जीवमें, अजीवमें, जीव-अजीवमें, जीव-अजीवोंमे, अजीव-जीवोंमे, जीवों-अजीवोंमे, जीवोंमें और अजीवोंमें कथंचिद् भेदात्मकता होनेके कारण होता है। क्योंकी भिन्न-भिन्न दृष्टियाँ होनेके कारण उपर्युक्त आठ भंगोंमें-से कभी एक भंग आधार, कभी दो भंग आधार, कभी तीन भंग आधार और कभी इससे अधिक भंग आधार होते हैं।

'कियत्काल' – नमस्कार कितने समय तक होता है, इस प्रश्नका समाधान करते हुए बताया गया है कि उपयोगकी अपेक्षासे नमस्कारका उत्कृष्ट और जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। कर्मावरण क्षयोपशमरूप लब्धिका जघन्यकाल अन्तर्मूहूर्त और उत्कृष्टकाल ६६ सागरसे अधिक होता है।

'कतिविधो नमस्कारः' – कितने प्रकारका नमस्कार होता है, इस प्ररूपणामें बताया गया है कि अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन पाँचों पदोंके पूर्वमे णमो – नमः शब्द पाया जाता है। अतः पाँच प्रकारका नमस्कार होता है। इस प्रकार इस प्ररूपणा-द्वारमे निर्देश, स्वामित्व, साधन,क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्प-बहुत्वकी अपेक्षा भी वर्णन किया गया है।

वस्तुद्वार – गुण-गुणीमें कथंचिद्भेदाभेदात्मकता होनेसे अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पाँचों परमेष्ठी ही नमस्कार करने योग्य वस्तु हैं। व्यक्ति रत्नत्रयरूप गुणोंको इसलिए नमस्कार करता है कि गुणों की प्राप्ति उसे अभीष्ट होती है। संसार-अटवीसे पार होनेका एकमात्र साधन रत्नत्रय है, अतः गुणगुणीमे भेदात्मकता होनेके कारण रत्नत्रय गुणको तथा उनके धारण करनेवाले पंचपरमेष्ठियोंको नमस्कार किया गया है। यही इस णमोकारमन्त्रकी वस्तु है।

आक्षेपद्वार – णमोकारमन्त्रके सम्बन्धमें कुछ शंकाएँ की गयी हैं। इन शंकाओंका विवरण ही इस द्वारमे किया गया है। बताया गया है कि सिद्ध और साधु इन दोनोंको नमस्कार करनेसे काम चल सकता है, फिर पाँच शुद्धात्माओंको नमस्कार क्यों किया गया है? क्योंकि जीवन्मुक्त अरिहन्तका सिद्धमें और न्यून रत्नत्रय गुणधारी आचार्य और उपाध्यायका साधुपरमेष्ठीमे अन्तर्भाव हो जाता है, अतः पंचपरमेष्ठीको नमस्कार करना उचित नहीं। यदि यह कहा जाये कि

विशेष दृष्टिसे भिन्नत्वकी सूचना देनेके लिए नमस्कार किया है तो सिद्धोंके अवगाहना, तीर्थ, लिंग, क्षेत्र आदिकी अपेक्षासे अनेक भेद होते है तथा अरिहन्तों- के तीर्थंकर अरिहन्त, सामान्य अरिहन्त आदि भी अनेक भेद हैं। इसी प्रकार आचार्य और उपाध्याय परमेष्ठीके भी अनेक भेद हो जाते हैं। इसी प्रकार सब परमेष्ठी अनन्त हो जायेंगे, फिर इन्हें पाँच मानकर नमस्कार करना कैसे उपयुक्त कहा जायेगा।

प्रसिद्धिद्वार – इस द्वारमें पूर्वोक्त द्वारमें आपादित शंकाओंका निराकरण किया गया है। द्विविध नमस्कार नहीं किया जा सकता है; क्योंकि अव्यापकपनेका दोष आयेगा। सिद्ध कहनेसे अरिहन्तके समस्त गुणोंका बोध नहीं होता है, इसी प्रकार साधु कहनेसे आचार्य और उपाध्यायके गुणोंका भी ग्रहण नहीं होता है। अतएव संक्षेपसे द्विविध परमेष्ठीको नमस्कार करना अयुक्त है। निर्युक्तिकारने भी बताया है –

अरिहंताई नियमा, साहूसाहू उ ते सू भइयव्वा।
तम्हा पंचविहो खलु हेउनिमित्तं हवइ सिद्धो ॥३२०२॥

साधुमात्रनमस्कारो विशिष्टोऽर्हदादिगुणनमस्कृतिफलप्रापणसमर्थो न भवति। तत्सामान्याभिधाननमस्कारकृतत्वात्, मनुष्यमात्रनमस्कारवत्, जीवमात्रनम- स्कारवद्वेति। तस्मात्संक्षेपतोऽपि पञ्चविध एव नमस्कारो, न तु द्विविधः अव्यापकत्वात्; विस्तरतस्तु नमस्कारो न विधीयते अशक्यत्वात्।

अर्थात् – साधुमात्रका कथन करनेसे आचार्य और उपाध्यायके गुणोंका स्मरण नही हो सकता है। क्योंकि सामान्य कथनसे विशेषकी उपलब्धि नहीं हो सकती है। जिस प्रकार मनुष्य सामान्यको नमस्कार करनेसे अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुके गुणोंका स्मरण नही हो सकता है और न तद्रूप बननेको प्रेरणा ही मिल सकती है। अतः पंचपरमेष्ठीको नमस्कार करना आवश्यक है, परमेष्ठियोंके नमस्कारसे कार्य नहीं चल सकता है। जो अनन्त परमेष्ठियोंको नमस्कार करनेकी बात कही गयी है, उसका समाधान 'सव्व' पदके द्वारा हो जाता है। यह पद सभी परमेष्ठियोंके साथ जोड़ा जा सकता है, जिससे अनन्त अर्हन्त, अनन्त सिद्ध, अनन्त आचार्य, अनन्त उपाध्याय और अनन्त साधुओंका ग्रहण हो ही जाता है। शक्ति सीमित होनेके कारण पृथक् अनन्त परमेष्ठियोंका

निरूपण नहीं किया गया है। सामान्यके अन्तर्गत विशेष भेदोंका भी ग्रहण हो गया है।

क्रमद्वार[1] – किसी भी वस्तुका विवेचन क्रमसे किया जाता है। णमोकार मन्त्रके विवेचनमें पदोंका क्रम ठीक नहीं रखा गया है। क्रम दो प्रकारका होता है – पूर्वानुपूर्वी और पश्चानुपूर्वी। णमोकार मन्त्रमें पूर्वानुपूर्वी क्रमका निर्वाह नहीं किया गया है क्योंकि सिद्धोंका आत्मा पूर्ण विशुद्ध है, समस्त आत्मिक गुणोंका विकास सिद्धोंमें ही है। अतएव विशुद्धिकी अपेक्षा पूज्य होनेके कारण सिद्धोंको सर्वप्रथम नमस्कार होना चाहिए था, पर णमोकार मन्त्रमें ऐसा नहीं किया गया है। अतः पूर्वानुपूर्वी क्रम यहाँपर नहीं है। पश्चानुपूर्वी क्रमका भी निर्वाह यहाँ-पर नहीं किया गया है; क्योंकि इस क्रममें सबसे पहले साधुको नमस्कार और सबसे पीछे सिद्धोंको नमस्कार होना चाहिए था। समाधान – उपर्युक्त शंका ठीक नहीं है। यहाँ पूर्वानुपूर्वी क्रम ही है। सिद्धोंकी अपेक्षा अरिहन्त अधिक उपकारी है; क्योंकि इन्हींके उपदेशसे हमें सिद्धोंका ज्ञान प्राप्त होता है। इसके अनन्तर गुणोंकी न्यूनता और अधिकताकी अपेक्षा अन्य परमेष्ठियोंको नमस्कार किया गया है। यों तो 'पादक्रम' प्रकरणमें इसका विस्तृत विवेचन किया जा चुका है। अतः यहाँपर उन सभी युक्तियों और प्रमाणोंको उद्धृत करना असंगत होगा।

प्रयोजनफल द्वार – णमोकार मन्त्रकी आराधनासे लौकिक और पारलौकिक फलोंकी प्राप्ति किस प्रकारसे होती है, इसका वर्णन इस द्वारमें किया गया है।

इस प्रकार नय, निक्षेप एवं विभिन्न हेतुओंके द्वारा णमोकार मन्त्रका वर्णन जैनागममें मिलता है।

१. पुव्वाणुपुव्वि न कमो, नेव य पच्छाणुपुव्वि स भवे। सिद्धार्हया पढमा। बिइयाए साहुणो आइ ॥३२१०॥ इह क्रमस्तावत् द्विविधः—पूर्वानुपूर्वी वा पश्चानुपूर्वी वेति। अनानुपूर्वी किल क्रम एव न भवति असङ्गतत्वात्। तत्रायमर्हदादिक्रमः पूर्वानुपूर्वी न भवति, सिद्धानामादावनभिधानादेकान्तकृतकृत्वेन। अर्हन्नमस्कार्यत्वेन सिद्धानां प्रधानत्वात्, प्रधानस्य चाभ्यर्हितत्वेन पूर्वाभिधानादिति भावार्थः। तथा नेव च पश्चानुपूर्वी, एष क्रमो भवेत् साधूनां प्रथममनभिधानात्, इहाप्रधानत्वात्सर्वपाश्चात्या हि साधवः। ततश्च तानादौ प्रतिपाद्य यदि पर्यन्ते सिद्धाभिधानं स्यात् तदा भवेत्पश्चानुपूर्वी। तस्मात् प्रथमायाः सिद्धादित्वात्, द्वितीयायास्तु साध्वादित्वात् नेयं पूर्वानुपूर्वी, नापि पश्चानुपूर्वी। इति चेन्न—इह तावदयं पूर्वानुपूर्वी क्रम एव। यतोऽर्हदुपदेशेनैव सिद्धा अपि ज्ञायन्ते। —नियुक्ति

अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामीके दिव्य उपदेशका संकलन द्वादशांग साहित्यके रूपमें गणधर देवने किया है। इस संकलनमें कर्मप्रवाद नामके पूर्वमें

कर्म-साहित्य और महामन्त्र

कर्म विषयका वर्णन विस्तारसे किया गया है। इसके सिवा द्वितीय पूर्वके एक विभागका नाम कर्म-प्राभृत और पंचम पूर्वके एक विभागका नाम कषाय-प्राभृत है। इनमें भी कर्मविषयक वर्णन है। इसी प्राचीन साहित्यके आधारपर रचे गये दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायमें कषाय-प्राभृत, महाबन्ध, गोम्मटसार कर्मकाण्ड, पंचसंग्रह, कर्मप्रकृति, कर्मस्तव, कर्मप्रकृति-प्राभृत, कर्मग्रन्थ, षडशीति एवं सप्ततिका आदि कई ग्रन्थ हैं, जिनमें इस विषयका वर्णन विस्तारके साथ किया गया है। ज्ञानावरणादि आठों कर्मोंके स्वरूप, भेद-प्रभेद, उनके फल, कर्मोंकी अवस्थाएँ – बन्ध, उदय, उदीरणा, सत्त्व, उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण, निघत्ति और निकाचनाका स्वरूप मार्गणा और गुणस्थानोंके आश्रयसे कर्मप्रकृतियोंमें बन्ध, उदय और सत्त्वके स्वामियोंका विवेचन, मार्गणास्थानोंमें जीवस्थान, गुणस्थान, योग, उपयोग, लेश्या और अल्प बहुत्वका विवेचन कर्म साहित्यका प्रधान विषय है। कर्मवादका जैन अध्यात्मवादके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। आचार्योंने चिन्तन और मननको विपाक-विचय नामक धर्मध्यान बताया है। मनको प्रारम्भमें एकाग्र करनेके लिए कर्म-विषयक गहन साहित्यके निर्जन वनप्रदेशमें प्रवेश करना आवश्यक-सा है। इस साहित्यके अध्ययनसे मनको शान्ति मिलती है तथा इधर-उधर जाता हुआ मन एकाग्र होता है, जिससे ध्यानकी सिद्धि प्राप्त होती है।

णमोकार महामन्त्र और कर्मसाहित्यका निकटतम सम्बन्ध है; क्योंकि कर्म-साहित्य णमोकार मन्त्रके उपयोगकी विधिका निरूपण करता है। इस महामन्त्रका उपयोग किस प्रकार किया जाये, जिससे आत्मा अनादिकालीन बन्धनको तोड़ सके। आत्माके साथ अनादिकालीन कर्मप्रवाहके कारण सूक्ष्म शरीर रहता है, जिससे यह आत्मा शरीरमे आबद्ध दिखलाई पड़ता है। मन, वचन और कायकी क्रियाके कारण कषाय – राग, द्वेष, क्रोध, मान आदि भावोंके निमित्तसे कर्म-परमाणु आत्माके साथ बँधते है। योग शक्ति जैसी तीव्र या मन्द होती है, वैसी ही संख्यामे कम या अधिक परमाणु आत्माकी ओर खिच आते है। जब योग उत्कट रहता है, उस समय कर्मपरमाणु अधिक तादादमें और जब योग जघन्य होता है, उस

समय कर्मपरमाणु कम तादादमें जीवकी ओर आते हैं। इसी प्रकार तीव्र कषायके होनेपर कर्मपरमाणु अधिक समय तक आत्माके साथ रहते हैं। तथा तीव्र फल देते हैं। मन्द कषाय होनेपर कम समय तक रहते हैं तथा मन्द ही फल देते हैं। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामीने बतलाया है कि णमोकार मन्त्रोक्त पंचपरमेष्ठियोंकी विशुद्ध आत्माओंका ध्यान या चिन्तन करनेसे आत्मासे चिपटा राग कम होता है। राग और द्वेषसे युक्त आत्मा ही कर्मबन्धन करता है –

परिणमदि जदा अप्पा सुहम्मि असुहम्मि रागदोषजुदो।
तं पविसदि कम्मरयं णाणावरणादिभावेहिं ॥

अर्थात् – जब राग-द्वेषसे युक्त आत्मा अच्छे या बुरे कामोंमें लगता है, तब कर्मरूपी रज ज्ञानावरणादि रूपसे आत्मामें प्रवेश करता है। यह कर्मचक्र जीवके साथ अनादिकालसे चला आ रहा है। पंचास्तिकायमें बताया है—"संसारमें स्थित जीवके राग-द्वेषरूप परिणाम होते है, परिणामोसे नये कर्म बंधते है। कर्मोंसे गतियोंमें जन्म लेना पड़ता है, जन्म लेनेसे शरीर होता है, शरीरमें इन्द्रियाँ होती हैं, इन्द्रियोंसे विषयका ग्रहण होता है। विषयोंके ज्ञानसे राग-द्वेष परिणाम होते है। इस तरह संसाररूपी चक्रमें पड़े जीवोंके भावोंसे कर्म और कर्मोंसे भाव होते रहते हैं। यह प्रवाह अभव्य जीवकी अपेक्षा अनादि अनन्त और भव्य जीवकी अपेक्षा अनादि सान्त है। कर्मोंके बीजभूत राग-द्वेषको इस महामन्त्रकी साधना-द्वारा नष्ट किया जा सकता है। जिस प्रकार बीजको जला देनेके पश्चात् वृक्षका उत्पन्न होना, बढ़ना, फल देना आदि नष्ट हो जाते है, इसी प्रकार णमोकार मन्त्र-की आराधनासे कर्म-जाल नष्ट हो जाता है।

जैन साहित्यमें कर्मोंके दो भेद माने गये हैं – द्रव्य और भाव। मोहके निमित्तसे जीवके राग, द्वेष और क्रोधादिरूप जो परिणाम होते हैं, वे भावकर्म तथा इन भावोंके निमित्तमें जो कर्मरूप परिणमन न करनेकी शक्ति रखनेवाले पुद्गल परमाणु खिंचकर आत्मासे चिपट जाते हैं, वे द्रव्यकर्म कहलाते हैं। भाव-कर्म और द्रव्यकर्म इन दोनोंमें कारण-कार्य सम्बन्ध है। द्रव्यकर्मोंके निमित्तसे भावकर्म और भावकर्म निमित्तसे द्रव्यकर्म होते है। द्रव्यकर्मोंके मूल ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ये आठ भेद तथा अवान्तर १४८ भेद होते हैं। जिन हेतुओंसे कर्म आत्मामें आते हैं, वे हेतु आस्रव

हैं। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये पाँच आस्रव प्रत्यय — कारण हैं। जब यह जीव अपने आत्म-स्वरूपको भूलकर शरीरादि पर-द्रव्योंमें आत्मबुद्धि करता है और उनके समस्त विचार और क्रियाएँ शरीराश्रित व्यवहारोंमें उलझी रहती हैं, मिथ्यादृष्टि कहा जाता है। मिथ्यात्वके कारण स्व-पर विवेक नहीं रहता, लक्ष्यभूत कल्याण-मार्गमें सम्यक् श्रद्धा नहीं होती। जीव अहंकार और ममकारकी प्रवृत्तिके अधीन होकर अपनेको भूल, बाह्य पदार्थोंके रूपपर क्षुब्ध हो जाता है। मिथ्यात्वके समान आत्माके स्वरूपको विकृत करनेवाला अन्य कोई नहीं है। यह कर्मबन्धका प्रधान हेतु है।

अविरति—चारित्रमोहका उदय होनेसे चारित्र धारण करनेके परिणाम नहीं हो पाते। पाँच इन्द्रियों और मनको अपने वशमें न रखना तथा छह कायके प्राणियोंकी हिंसा करना अविरति है। अविरतिके रहने पर जीवकी प्रवृत्ति विवेक-हीन होती है, जिससे नाना प्रकारके अशुभ कर्मोंका बन्ध होता है।

प्रमाद — असावधानी रखना या कल्याणकारी कार्योंके प्रति आदर नहीं करना प्रमाद है। प्रमादी जीव पाँचों इन्द्रियोंके विषयोंमें लीन रहता है, स्त्री-कथा, भोजनकथा, राजकथा और चोरकथा कहता-सुनता है; क्रोध, मान, माया और लोभ इन चारों कषायोंमें लीन रहता है एवं निद्रा और प्रणयासक्त होकर कर्तव्य-मार्गके प्रति आदरभाव नहीं रखता। प्रमादी जीव हिंसा करे या न करे, उसे असावधानीके कारण हिंसा अवश्य लगती है।

कषाय—आत्माके शान्त और निर्विकारी रूपको जो अशान्त और विकार-ग्रस्त बनाये उसे कषाय कहते हैं। ये कषायें ही जीवमें राग-द्वेषकी उत्पत्ति करती हैं, जिससे जीव निरन्तर संसार परिभ्रमण करता रहता है। यतः समस्त अनर्थोंका मूल राग-द्वेषका द्वन्द्व है।

योग — मन, वचन और कायकी प्रवृत्तिको योग कहते हैं। योग के द्वारा ही कर्मोंका आस्रव होता है। शुभ योगके रहनेसे पुण्यास्रव और अशुभ योगके रहनेसे पापास्रव होता है।

कर्मोंके आनेके साधन मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग हैं। इन पाँचों प्रत्ययोंको जैसे-जैसे घटाते जाते हैं, वैसे-वैसे कर्मोंका आस्रव कम होता जाता है। आस्रवको गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्रसे

रोका जा सकता है। मन, वचन और कायकी प्रवृत्तिको रोकना गुप्ति, प्रमादका त्याग करना समिति, आत्मस्वरूपमें स्थिर होना धर्म, वैराग्य उत्पन्न करनेके साधन-संसार तथा आत्माके स्वरूप और सम्बधका विचार करना अनुप्रेक्षा, आयी हुई विपत्तियोंको धैर्यपूर्वक सहना परीषहजय एवं आत्मस्वरूपमें विचरण करना चारित्र है। इस प्रकार कर्मोंके आनेके हेतुओंको रोकने, जिससे नवीन कर्मोंका बन्ध न हो और पुरातन संचित कर्मोंको निर्जरा-द्वारा क्षीण कर देनेसे सहजमें निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है, कर्म-सिद्धान्त आत्माके विकासका उल्लेख करते हुए कहता है कि गुणस्थान क्रमसे कर्मबन्ध जितना क्षीण होता जाता है उतनी ही आत्मा उत्तरोत्तर विकसित होती जाती है। आत्माकी उत्तरोत्तर विकसित होनेवाली विशुद्ध परिणतिका नाम गुणस्थान है।

आगममें बताया गया है कि ज्ञान, दर्शन और चारित्र आदि गुणोंकी शुद्धि तथा अशुद्धिके तरतम भावसे होनेवाले जीवके भिन्न-भिन्न स्वरूपोंको गुणस्थान कहा गया है। अथवा दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयके औदयिक आदि जिन भावोंके द्वारा जीव पहचाना जाता है, वे भाव गुणस्थान हैं। असल बात यह है कि आत्माका वास्तविक रूप शुद्ध चेतन और पूर्ण आनन्दमय है। जबतक आत्माके ऊपर तीव्र कर्मावरणके घने बादलोंकी घटा छायी रहती है, तबतक उसका वास्तविक रूप दिखलाई नहीं देता, पर आवरणके क्रमशः शिथिल या नष्ट होते ही आत्माका असली स्वरूप प्रकट हो जाता है। जब आवरणकी तीव्रता अपनी चरम सीमापर पहुँच जाती है, तब आत्मा अविकसित अवस्थामें पड़ा रहता है और जब आवरण बिलकुल नष्ट हो जाते हैं तो आत्मा अपनी मूल शुद्ध अवस्थामें आ जाता है। प्रथम अवस्थाको अविकसित अवस्था या अधःपतनकी अवस्था तथा अन्तिम अवस्थाको निर्वाण कहा जाता है। इस तरह आध्यात्मिक विकासमें प्रथम अवस्था – मिथ्यात्वभूमिसे लेकर अन्तिम अवस्था – निर्वाणभूमि तक मध्यमें अनेक आध्यात्मिक भूमियोंका अनुभव करना पड़ता है; जैनागमोक्त ये ही आध्यात्मिक भूमियाँ गुणस्थान हैं। इन्हींका क्रमशः जीव आरोहण करता है।

समस्त कर्मोंमें मोहनीय कर्म प्रधान है, जबतक यह बलवान् और तीव्र रहता है, तबतक अन्य कर्म सबल बने रहते हैं। मोहके निर्बल या शिथिल होते ही अन्य कर्मावरण भी निर्बल या शिथिल हो जाते हैं। अतएव आत्माके विकासमें मोहनीय

कर्म बाधक है। इसकी प्रधान दो शक्तियाँ हैं – दर्शन और चारित्र। प्रथम शक्ति आत्मस्वरूपका अनुभव नहीं होने देती है और दूसरी आत्मस्वरूपका अनुभव और विवेक हो जानेपर भी तदनुसार प्रवृत्ति नहीं होने देती है। आत्मिक विकासके लिए प्रधान दो कार्य करने होते हैं – प्रथम स्व-परका यथार्थ दर्शन अर्थात् भेद-विज्ञान करना और दूसरा स्वरूपमें स्थित होना। मोहनीय कर्मकी दूसरी शक्ति प्रथम शक्तिकी अनुगामिनी है अर्थात् प्रथम शक्तिके बलवान् होनेपर द्वितीय शक्ति कभी निर्बल नहीं हो सकती है; किन्तु प्रथम शक्तिके मन्द, मन्दतर और मन्दतम होते ही, द्वितीय शक्ति भी मन्द, मन्दतर और मन्दतम होने लगती है। तात्पर्य यह है कि आत्माका स्वरूपदर्शन हो जानेपर स्वरूप-लाभ हो ही जाता है। कर्मसिद्धान्त इस स्वरूपदर्शन और स्वरूपलाभका विस्तृत विवेचन करता है। आत्मा किस प्रकार स्वरूपलाभ करती है तथा इसका स्वरूप किस प्रकार विकृत होता है, यह तो कर्म-सिद्धान्तका प्रधान प्रतिपाद्य विषय है।

णमोकार महामन्त्रका भक्तिपूर्वक उच्चारण, मनन और चिन्तन करना आत्माके स्वरूप-दर्शनमें सहायक है। इस महामन्त्रके भावसहित उच्चारण करने मात्रसे मोहनीयकर्मकी प्रथम शक्ति क्षीण होने लगती है। एक बात यह भी है कि मोहनीय कर्मके मन्द हुए बिना इस महामन्त्रकी प्राप्ति होना अशक्य है। आत्माकी प्रथमावस्था – मिथ्यात्व भूमिमें इस मन्त्रके उच्चारण और मननसे जीव दूर रहता है, उसकी प्रवृत्ति इस महामन्त्रकी ओर नहीं होती। परन्तु जब दर्शन-मोहनीयका उपशम, क्षय या क्षयोपशम हो जाता है, तब चतुर्थ गुणस्थान – स्वरूप – दर्शनमें इस महामन्त्रकी ओर श्रद्धा हो सम्यक्त्व है; क्योंकि इससे रत्नत्रयगुणविशिष्ट आत्माके शुद्ध-स्वरूपको नमस्कार किया गया है। कर्मसिद्धान्तके आध्यात्मिक विकासके अनुसार अधःपतनकी प्रथम अवस्था मिथ्यात्वमें आत्माकी बिलकुल गिरी हुई अवस्था बतलायी है, आत्मा यहाँ आधिभौतिक उत्कर्ष कर सकता है, परन्तु अपने तात्त्विक लक्ष्यसे दूर रहता है। णमोकार मन्त्रका भाव-सहित उच्चारण इस भूमिमें सम्भव नहीं। बहिरात्मा बनकर आत्मा महाभ्रममें पड़ा रहता है। राग-द्वेषका पटल और अधिक सघन होता जाता है।

भावपूर्वक णमोकार मन्त्रके जाप, ध्यान और मननसे यह अधःपतनकी अवस्था दूर हो जाती है, राग-द्वेषकी दीवाल जर्जरित हो टूटने लगती है, मोहकी

प्रधान शक्ति दर्शनमोहनीयके शिथिल होते ही चारित्रमोह भी मन्द होने लगता है। यद्यपि कुछ समय तक दर्शनमोहनीयकी मन्दतासे उत्पन्न आत्मिक शक्तिको मानसिक विकारोंके साथ युद्ध करना पड़ता है, परन्तु णमोकारमन्त्र अपनी अद्भुत शक्तिके द्वारा मानसिक विकारोंको पराजित कर देता है। राग-द्वेषकी तीव्रतम दुर्भेद्य दीवारको एकमात्र णमोकार मन्त्र ही तोड़नेमें समर्थ है। विकासोन्मुखी आत्माके लिए यह महामन्त्र अंगपरित्राणका कार्य करता है। इस मन्त्रकी आराधनासे वीर्योल्लास और आत्मशुद्धि इतनी बढ़ जाती है, जिससे मिथ्यात्वको पराजित करनेमें विलम्ब नहीं लगता तथा यह जीव चतुर्थगुणस्थानमें पहुँच जाता है। अपने विशुद्ध परिणामोंके कारण इस अवस्थामें पहुँचनेपर आत्माको शान्ति मिलती है तथा अन्तर आत्मा बनकर व्यक्ति अपने भीतर स्थिर सूक्ष्म सहज परमात्मा – शुद्धात्माका दर्शन करने लगता है। तात्पर्य यह है कि णमोकार मन्त्रकी साधना मिथ्यात्व भूमिको दूर कर परमात्मभावरूप देवका दर्शन कराता है। इस चतुर्थगुणस्थानसे आगेवाले गुणस्थान – आध्यात्मिक विकासकी भूमियाँ सम्यग्दृष्टिकी हैं, इनमें उत्तरोत्तर विकास तथा दृष्टिको शुद्धि अधिकाधिक होती है। पाँचवें गुणस्थानमें देश-संयमकी प्राप्ति हो जाती है, णमोकारमन्त्रकी आराधनाके परिणामोंमें विरक्ति आती है, जिससे जीव चारित्रमोहको भी शिथिल करता है। इस गुणस्थानका व्यक्ति उक्त महामन्त्रकी आराधनाका अभ्यासी स्वभावतः हो जाता है।

छठे गुणस्थानमें स्वरूपाभिव्यक्ति होती है और लोककल्याणकी भावनाका विकास होता है, जिससे महाव्रतोंका पूर्ण पालन साधक करने लगता है। इस आध्यात्मिक भूमिमें णमोकार मन्त्र ही आत्माका एकमात्र आराध्य बन जाता है। विकासोन्मुखी आत्मा जब प्रमादका भी त्याग करता है और स्वरूप-मनन, चिन्तनके सिवा अन्य सब व्यापारोंका त्याग कर देता है तो व्यक्ति अप्रमत्तसंयत नामक सातवें गुणस्थानका धारी समझा जाता है, प्रमाद आत्मसाधनाके मार्गसे विचलित करता है, किन्तु यह साधना णमोकारमन्त्रके सिवा अन्य कुछ भी नहीं है; क्योंकि णमोकार मन्त्रके प्रतिपाद्य आत्मा शुद्ध और निर्मल हैं। इस आध्यात्मिक भूमिमें पहुँचकर साधक अपनी शक्तिका विकास करता है, आस्रवके कारणोंको रोकता है और अवशेष मोहनीयको प्रकृतियोंको नष्ट करनेकी तैयारी करता है।

इससे आगे अपूर्वकरणके परिणामों-द्वारा आत्माका विकास करता है और णमोकार मन्त्रकी आराधनामें आत्माराधनाका दर्शन और तादात्म्यकरण करता है तथा मोहके संस्कारोंके प्रभावको क्रमशः दबाता हुआ आगे बढ़ता है और अन्तमें उसे बिलकुल ही उपशान्त कर देता है। कोई-कोई साधक ऐसा भी होता है, जो मोहभावको नाश करता है। आठवें गुणस्थानसे आगे णमोकारमन्त्रकी आराधना – आत्मस्वरूपके चिन्तन-द्वारा क्रोध, मान और मायाको नष्ट कर साधक अनिवृत्ति-करण नामक नौवें गुणस्थानमें पहुँचता है तथा इससे आगे लोभ कषायका भी दमन कर, दसवें गुणस्थानमें पहुँचता है। यहाँसे बारहवें गुणस्थानमें स्थित होकर समस्त मोहभावको नष्ट कर देता है। अनन्तर अपने स्वरूपके ध्यान-द्वारा केवलज्ञान-को प्राप्त कर जिन बन जाता है। कुछ दिनोंके पश्चात् शुक्लध्यानके बलसे योगोंका निरोध कर चौदहवें गुणस्थानमें पहुँच क्षण-भरमें निर्वाण लाभ करता है। यह आत्माकी चरम शुद्धावस्था है, इसीको प्राप्त कर आत्मा कर्मजालसे युक्त होनेपर भी सम्यक्त्वको प्राप्त कर लेता है। आत्माकी सिद्धिका प्रधान कारण इस मन्त्रकी आराधना ही है। इसीसे कर्मजाल को नष्ट कर स्वातन्त्र्यकी प्राप्तिका यह कारण बनता है।

उपर्युक्त गुणस्थान-विकासकी परम्पराको देखनेसे प्रतीत होता है कि णमोकार मन्त्र-द्वारा कर्मोंके आस्रवको रोका जा सकता है तथा संचित कर्मोंका निर्जरा-द्वारा क्षय कर निर्वाणलाभ किया जा सकता है। इतना ही नहीं बल्कि णमोकारमन्त्रकी आराधनासे कर्मोकी अवस्थामें भी परिवर्तन किया जा सकता है। प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग इन चारों बन्धोंमें इस मन्त्रकी साधनासे स्थिति और अनुभाग बन्धको घटाया जा सकता है। शुभ कर्मोंमें उत्कर्षण और अशुभ कर्मोंमें अपकर्षण-करण किया जा सकता है। इस मन्त्रकी पवित्र साधनासे उत्पन्न हुई निर्मलतासे किन्हीं विशेष कर्मोंकी उदीरणा भी की जा सकती है। अतएव कर्म-सिद्धान्तकी अपेक्षासे भी इस महामन्त्रका बड़ा भारी महत्त्व है। आत्मविकासके लिए यह एक सबल साधन है।

अनादिनिधन इस णमोकारमन्त्रमें आठकर्म, कर्मोंके आस्रवके प्रत्यय – मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग; बन्ध क्रिया और बन्धके द्रव्य भाव भेद तथा उसके प्रभेद, कर्मोंके करण, बन्धके चार प्रधान भेद, सात तत्त्व, नव

कर्मसिद्धान्तके अनेक तत्त्वोंकी उत्पत्तिका स्थान–णमोकारमन्त्र

पदार्थ, बन्ध, उदय, सत्त्व, चार गति, चार कषाय, चौदह मार्गणा, चौदह गुण-स्थान, पाँच अस्तिकाय, छह द्रव्य, त्रेसठ शलाका पुरुष आदि निहित हैं। स्वर, व्यंजन, पद आदि इस मन्त्रमें निहित हैं। स्वर, व्यंजन, पद, अक्षर इनके संयोग, वियोग, गुणन आदिके द्वारा उक्त तथ्य सिद्ध किये जाते हैं। जिस प्रकार द्वादशांग जिनवाणीके समस्त अक्षर इस मन्त्रमें निहित है, उसी प्रकार इसमें उक्त सिद्धान्त भी निहित है। यद्यपि द्वादशांग जिन-वाणीके अन्तर्गत सभी तथ्य यों ही आ जाते हैं, फिर भी इनका पृथक् विचार कर लेना आवश्यक है।

इस मन्त्रमें [१] णमो अरिहंताणं, [२] णमो सिद्धाणं, [३] णमो आइरियाणं, [४] णमो उवज्झायाणं, [५] णमो लोए सव्वसाहूणं – ये पाँच पद है। विशेषापेक्षया [१] णमो [२] अरिहंताणं [३] णमो [४] सिद्धाणं [५] णमो [६] आइरियाणं [७] णमो [८] उवज्झायाणं [९] णमो [१०] लोए [११] सव्वसाहूणं ये ग्यारह पद है। अक्षर इसमें ३५, स्वर ३४, व्यंजन ३० हैं। इस आधारपर-से निम्न निष्कर्ष निकलते हैं। ३४ स्वर संख्यामें-से इकाई, दहाईके अंकोंको पृथक् किया तो ३ और ४ अंक हुए। व्यंजनोंमें ३० की संख्याको पृथक् किया तो, ३ और ० हुए। कुल स्वर ३४ और व्यंजन ३० की संख्याके योगको पृथक् किया तो ३४ + ३० = ६४; ६ और ४ हुए। इस मन्त्रके अक्षरोंकी संख्याको पृथक् किया तो ३ और ५ हुए। अतः –

३ × ५ = १५ योग, ३ + ५ = ८ कर्म, ५ – ३ = २ जीव और अजीव तत्त्व, ५ ÷ ३ = १ लब्ध और शेष २, मूल दो तत्त्व, अजीव कर्मके हटनेपर लब्धरूप शुद्ध जीव एक।

स्वरोंमें –३ × ४ = १२ अविरति, ३ + ४ = ७ तत्त्व, ४ – ३ = १ प्रधानताकी अपेक्षा जीव। पाँच यह पंचास्तिकाय। स्वर + व्यंजन + अक्षर = ३४ + ३० + ३५ = ९९, फल योग ९ + ९ = १८, इनसे योगान्तर १ + ८ = ९ पदार्थ। ९९ ÷ ३४ = २ लब्ध और ३१ शेष, ३ + १ = ४ गति, कषाय, विकथा विशेषापेक्षया ११ पद, सामान्यापेक्षया। ५, ३४ स्वर, ३० व्यंजन, ३५ अक्षर इनपर-से विस्तार किया तो ३४ + ३० = ६४ × ५ = ३२० ÷ ३० = ९ लब्ध और १४ शेष। यह १४ संख्या गुणस्थान और मार्गणाकी

है। अथवा ६४ × ११ = ७०४ ÷ ३० = २३ लब्ध, १४ शेष। यही शेष संख्या गुणस्थान और मार्गणा है। नियम यह है कि समस्त स्वर और व्यंजनोंकी संख्याको सामान्य पद संख्यासे गुणा कर स्वरकी संख्याका भाग देने पर शेष तुल्य गुणस्थान और मार्गणा अथवा समस्त स्वर और व्यंजनोंकी संख्याको विशेष पद संख्यासे गुणा कर व्यंजनोंकी संख्याका भाग देनेपर शेष तुल्य गुणस्थान और मार्गणाकी संख्या आती है। छह द्रव्य और छह कायके जीवोंकी संख्या निकालनेके लिए यह नियम है कि समस्त स्वर और व्यंजनोंकी संख्या (६४) को व्यंजनोंकी संख्यासे गुणा कर विशेष पद संख्याका भाग देनेपर शेष तुल्य द्रव्योंकी तथा जीवोंके कायकी संख्या अथवा समस्त स्वर और व्यंजनोंकी संख्याको स्वर संख्यासे गुणा कर सामान्य पद संख्याका भाग देनेपर शेष तुल्य द्रव्योंकी तथा जीवोंके कायकी संख्या आती है। यथा ६४ × ३० = १९२० ÷ ११ = १७४ लब्ध, ६ शेष, यही शेष तुल्य द्रव्य और कायकी संख्या है। अथवा ६४ × ३४ = २१७६ ÷ ५ = ४३४ लब्ध, ६ शेष। यही शेष प्रमाण द्रव्य और कायकी संख्या है। इस महामन्त्रमें कुल मात्राएँ ५८ हैं। प्रथम पदके "णमो अरिहंताणं" में = १ + २ + १ + १ + २ + १ + २ = ११, द्वितीयपद 'णमो सिद्धाणं' में = १ + २ + १ + २ + २ = ८, तृतीयपद 'णमो आइरियाणं' में = १ + २ + २ + १ + १ + १ + २ = ११, चतुर्थपद 'णमो उवज्झायाणं' में = १ + २ + १ + २ + २ + २ + २ = १२, पंचमपद 'णमो लोए सव्वसाहूणं' में = १ + २ + २ + २ + २ + १ + २ + २ + २ = १६, समस्त मात्राओंका योग = ११ + ८ + ११ + १२ + १६ = ५८। इस विश्लेषणसे समस्त कर्म-प्रकृतियोंका योग निकलता है। यह जीव कुल १४८ प्रकृतियोंको बाँधता है। मात्राएँ + स्वर + व्यंजन + विशेष-पद + सामान्यपदका गुणन = ५८ + ३४ + ३० + ११ + १५ = १४८। इन १४८ प्रकृतियोंमें १२२ प्रकृतियाँ उदय योग्य हैं और बन्ध योग्य १२० प्रकृतियाँ हैं। उनका क्रम इस प्रकार है – ५८ + ६४ = १२२ ये ही उदय योग्य हैं। क्योंकि १४८ में-से २६ निम्न प्रकृतियाँ कम हो जाती हैं। स्पर्शादि २० की जगह ४ का ग्रहण किया जाता है, इस प्रकार १६ प्रकृतियाँ घट जाती है और

---

१. संयुक्तके पूर्व वर्णपर स्वराघात न हो तो छन्द-शास्त्रमें उसे ह्रस्व मानते हैं।

पाँचों शरीरोंके पाँच बन्धन और पाँच संघातोंका ग्रहण नहीं किया गया है। इस प्रकार २६ घटनेसे १२२ उदयमें तथा बन्धमें दर्शनमोहनीयकी एक ही प्रकृति बँधती है और उदयमें यही तीन रूपमें परिवर्तित हो जाती है। कहा गया है –

जंतेण कोद्दवं वा पढमुवसम्मभावजंतेण।
मिच्छं दव्वं तु तिधा असंखगुणहीणदव्वकमा॥ –कर्मकाण्ड

अर्थात् – प्रथमोपशमसम्यक्त्वपरिणामरूप यन्त्रसे मिथ्यात्वरूपी कर्मद्रव्य द्रव्य-प्रमाणमें क्रमसे असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा कम होकर तीन प्रकारका हो जाता है। अर्थात् बन्ध केवल मिथ्यात्व प्रकृतिका होता है और उदयमें वही मिथ्यात्व तीन रूपमें बदल जाता है। जैसे धानके चावल, कण और भूसा ये तीन अंश हो जाते हैं अर्थात् केवल धान उत्पन्न होता है, पर उपयोगकालमें उसी धानके चावल, कण और भूसा ये तीन अंश हो जाते हैं। यही बात मिथ्यात्वके सम्बन्धमें भी है।

इस प्रकार णमोकारमन्त्र बन्ध, उदय और सत्त्वकी प्रकृतियोंकी संख्यापर समुचित प्रकाश डालता है। कुल प्रकृति संख्या १४८, बन्धसंख्या १२०, उदय संख्या १२२ और सत्त्व संख्या १४८ इसी मन्त्रमें निहित है। १२० संख्या निकालनेका क्रम यह है – ३४ स्वर, ३० व्यंजन बताये गये हैं। ३ × ४ = १२, ३ × ० = ० गुणनशक्तिके अनुसार शून्यको दस मान लेनेपर गुणनफल = १२०।

३०, ३ + ० = ३ रत्नत्रय संख्या; ३ × ० = ० कर्माभावरूप-मोक्ष। ३० + ३४ = ६४, ६ × ४ = २४ तीर्थंकर, ३ × ४ = १२ चक्रवर्ती, ६४ + ३५ = ९९, ९ + ९ = १८, ८ + १ = ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण, ९ बलदेव, इस प्रकार कुल २४ + १२ + ९ + ९ + ९ = ६३ शलाका पुरुष। ५८ मात्राएँ, इनके विश्लेषण-द्वारा ५ + ८ = १३ चारित्र, ५ × ८ = ४०, ४ + ० = ४ प्रकारके बन्ध – प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग। प्रमाणके भेद-प्रभेद भी इसमें निहित हैं। प्रमाणके मूलभेद दो हैं – प्रत्यक्ष और परोक्ष। ५ ÷ ३ = १ ल० शेष २, यही दो भेद वस्तुके व्यवस्थापक प्रमाणके भेद हैं। परोक्षमें पाँच भेद – स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगमरूप पाँच पद हैं। नयके द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक भेदोंके साथ नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत। ये सात भी ३ + ४ = ७ रूपमें विद्यमान हैं। इस प्रकार इस महामन्त्रमें कर्मबन्धक सामग्री – मिथ्यात्व ५, अविरति १२, प्रमाद १५, कषाय

२५ और योग १५ की संख्या भी विद्यमान है। साथ ही कर्मबन्धनसे मुक्त करानेवाली सामग्री ५ समिति, ३ गुप्ति, ५ महाव्रत, २२ परीषहजय, १२ अनुप्रेक्षा और १० धर्मकी संख्या भी निहित हैं। १० धर्मकी संख्या तथा कर्मोके १० करणोंकी संख्या निम्न प्रकार आती है। ३५ अक्षरोंका विश्लेषण सामान्य पदोंके साथ किया तो ३ × ५ = १५ – ५ पद = १०। इस मन्त्रके अंकोंमें द्वादशांगके पृथक्-पृथक् पदोंकी संख्या भी निहित है, आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञातृधर्मकथांग, उपासकाध्ययनांग आदि अंगोंकी पदसंख्या क्रमशः अठारह हजार, छत्तीस हजार, बयालीस हजार, एक लाख चौसठ हजार, दो लाख अट्ठाईस हजार, पाँच लाख छप्पन हजार, ग्यारह लाख सत्तर हजार, तेईस लाख अट्ठाईस हजार, बानबे लाख चवालीस हजार, तिरानबे लाख सोलह हजार और एक करोड़ चौरासी लाख पद है। इन सब संख्याओंकी उत्पत्ति इस महामन्त्रसे हुई है। दृष्टिवादके पदोंको संख्या भी इस मन्त्रमें विद्यमान है।

जिसमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छह द्रव्योंका; जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्त्वोंका एवं पुण्य-पापका निरूपण किया जाये, उसे द्रव्यानुयोग कहते हैं। इस अनुयोगकी दृष्टिसे णमोकार महामन्त्रकी विशेष महत्ता है। णमोकार स्वयं द्रव्य है, शब्दोंकी दृष्टिसे पुद्गल द्रव्य है और अर्थकी दृष्टिसे शुद्धात्माओंका वर्णन करनेके कारण जीवद्रव्य है। सम्यक्त्वकी प्राप्तिका यह बहुत बड़ा साधन है। द्रव्योके विवेचनसे प्रतीत होता है कि णमोकारमन्त्रका आत्मद्रव्यके साथ निकटतम सम्बन्ध है तथा इसके द्वारा कल्याणका मार्ग किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है। इस मन्त्रमें द्रव्य, तत्त्व, अस्तिकाय आदिका निर्देश विद्यमान है।

द्रव्यानुयोग और णमोकारमन्त्र

जीव-आत्मा स्वतन्त्र द्रव्य है, अनन्त ज्ञानदर्शनवाला, अमूर्तिक, चैतन्य, ज्ञानादिपर्यायोंका कर्ता, कर्मफलभोक्ता और स्वयं प्रभु है। कुन्दकुन्दाचार्यने बतलाया है कि – "जिसमें रूप, रस, गन्ध न हो तथा इन गुणोंके न रहनेसे जो अव्यक्त है, शब्दरूप भी नही है, किसी भौतिक चिह्नसे भी जिसे कोई नहीं जान सकता, जिसका न कोई निर्दिष्ट आकार है, उस चैतन्य गुणविशिष्ट द्रव्यको

जीव कहते हैं।" व्यवहार नयसे जो इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास इन चार प्राणों-द्वारा जीता है, पहले जिया था और आगे जीवित रहेगा, उसे जीव-द्रव्य तथा निश्चय नयकी अपेक्षासे जिसमें चेतना पायी जाये, उसे जीवद्रव्य कहते हैं। णमोकार मन्त्रमें वर्णित आत्माओंमें उपर्युक्त निश्चय और व्यवहार दोनों ही लक्षण पाये जाते हैं। निश्चय नय-द्वारा वर्णित शुद्धात्मा अरिहन्त और सिद्धकी है। वे दोनों चैतन्यरूप हैं। ज्ञानादि पर्यायोंके कर्ता और उनके भोक्ता हैं। आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठीकी आत्माओंमें व्यवहार-नयका लक्षण भी घटित होता है।

पुद्गल – जिसमें रूप, रस, गन्ध और स्पर्श पाये जायें उसे पुद्गल कहते है। इसके दो भेद है – अणु और स्कन्ध। अन्य प्रकारसे पुद्गलके तेईस भेद माने गये है, जिनमे आहारवर्गणा, तैजसवर्गणा, भाषावर्गणा, मनोवर्गणा और कार्माणवर्गणा ये पाँच ग्राह्य वर्गणाएँ होती है। शब्द भाषावर्गणाका व्यक्तरूप है। अतः णमोकार मन्त्रके शब्द भाषावर्गणाके अंग है। ये वर्गणाएँ द्रव्य दृष्टिसे नित्य और पर्याय दृष्टिसे अनित्य होती है। अतः णमोकार मन्त्रके शब्द पुद्गल द्रव्य हैं।

धर्म और अधर्म – ये दोनों द्रव्य क्रमशः जीव और पुद्गलोंको चलने और ठहरनेमें सहायता करते है। णमोकार महामन्त्रका अनादि परम्परासे जो परिवर्तन होता आ रहा है तथा अनेक कल्पकालके अनेक तीर्थंकरोंने इस महामन्त्रका प्रवचन किया है इसमें कारण ये दोनो द्रव्य है। इन द्रव्योंके कारण ही शब्द और अर्थ रूप परिणमन करनेमें स्वयं परिवर्तन करते हुए इस मन्त्रको ये दोनों द्रव्य सहायता प्रदान करते है।

आकाश – समस्त वस्तुओंको अवकाश – स्थान प्रदान करता है। णमोकार मन्त्र भी द्रव्य है, उसे भी इसके द्वारा अवकाश – स्थान मिलता है। यह मन्त्र शब्दरूपमें लिखित किसी कागजपर उसमे निवास करनेवाले आकाशद्रव्यके कारण ही स्थित है। क्योंकि आकाशका अस्तित्व पुस्तक, ताम्रपत्र, ताडपत्र, भोजपत्र, कागज आदि सभीमे है। अतः यह मन्त्र भी लिखित या अलिखित रूपमें आकाश द्रव्यमें ही वर्तमान है।

काल – इस द्रव्यके निमित्तसे वस्तुओंकी अवस्थाएँ बदलती हैं। पर्यायोंका

होना तथा उत्पाद-व्ययरूप परिणतिका होना कालद्रव्यपर निर्भर है। कालद्रव्यकी सहायताके बिना इस मन्त्रका आविर्भाव और तिरोभाव सम्भव नहीं है।

णमोकार महामन्त्र द्रव्य है, इसमें गुण और पर्यायें पायी जाती हैं। इस मन्त्रमें द्रव्य, द्रव्यांश, गुण, गुणांश रूप स्वचतुष्टय वर्तमान है जिसे दूसरे शब्दोंमें द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव कहा जाता है। इसका अपना चतुष्टय होनेसे ही यह द्रव्यापेक्षया अनादि माना जाता है। द्रव्यानुयोगकी अपेक्षासे भी यह मन्त्र आत्म-कल्याणमें सहायक है; क्योंकि इसके द्वारा आत्मिक गुणोंका निश्चय होता है। स्वानुभूतिकी इसके साथ अन्वय और व्यतिरेक दोनों प्रकारकी व्याप्तियाँ वर्तमान है। तात्पर्य यह है कि णमोकार मन्त्रसे स्वानुभूति होती है, अतः णमोकार मन्त्रकी उपयोगावस्थामे स्वानुभवके साथ विषमा व्याप्ति और लब्धि रूप णमोकार मन्त्रके साथ स्वानुभवकी समा व्याप्ति होती है।

इस महामन्त्रसे जीवादि तत्त्वोंके विषयमें श्रद्धा, रुचि, प्रतीति और आचरण उत्पन्न होते है। तत्त्वार्थके जाननेके लिए उद्यत बुद्धिका होना श्रद्धा; तत्त्वार्थमें आत्मिकभावका होना रुचि, तत्त्वार्थको ज्योंका त्यों स्वीकार करना प्रतीति एवं तत्त्वार्थके अनुकूल क्रिया करना आचरण है। श्रद्धा, रुचि, प्रतीति ये तीनो णमो-कारके द्रव्याश और गुणाश है। अथवा यों समझना चाहिए कि ये तीनों ज्ञानात्मक हैं, णमोकारमन्त्र श्रुतज्ञान रूप है, अतः ये तीनों ज्ञानकी पर्याय होनेसे णमोकार मन्त्रकी भी पर्याय हैं। स्वानुभूतिके साथ णमोकार मन्त्रकी आराधना करनेसे सम्यग्दर्शन तो उत्पन्न हो होता है, पर विवेक और आचरण भी प्राप्त हो जाते हैं।

इस महामन्त्रकी अनुभूति आत्मामें हो जानेपर प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य गुणोंका प्रादुर्भाव हो जाता है तथा आत्मानुभूति हो जानेसे बाह्य विषयोंसे अरुचि भी हो जाती है। प्रथम गुणके उत्पन्न होनेसे पंचेन्द्रियसम्बन्धी विषयोंमें और असंख्यात लोकप्रमाण क्रोधादि भावोंमे स्वभावसे ही मनकी प्रवृत्ति नहीं होती है। क्योंकि अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभका उदय उसके नहीं होता है तथा अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण कषायोंका मन्दोदय हो जाता है। संवेग गुणकी उत्पत्ति होनेसे आत्माका धर्म और धर्मके फलमें पूरा उत्साह रहता है तथा साधर्मी भाइयोंसे वात्सल्यभाव रहने लगता है। समस्त

प्रकारकी अभिलाषाएँ भी इस गुणके प्रादुर्भूत होनेसे दूर हो जाती हैं, क्योंकि सभी अभिलाषाएँ मिथ्यात्व कर्मके उदयसे उत्पन्न होती हैं। णमोकार मन्त्रकी अनुभूति न होना या इस महामन्त्रके प्रति हार्दिक श्रद्धा भावनाका न होना मिथ्यात्व है। सम्यग्दृष्टिसे णमोकार महामन्त्रकी अनुभूति हो ही जाती है, अतः सभी सांसारिक अभिलाषाओंका अभाव हो जाता है। पंचाध्यायीकारने संवेग गुणका वर्णन करते हुए कहा है—

> त्यागः सर्वाभिलाषस्य निर्वेदो लक्षणात्तथा।
> स संवेगोऽथवा धर्मः साभिलाषो न धर्मवान् ॥४४३॥
> नित्यं रागी कुदृष्टिः स्यान्न स्यात् क्वचिदरागवान्।
> अस्तरागोऽस्ति सद्दृष्टिर्नित्यं वा स्यान्न रागवान् ॥४४५॥

—पं० अ० २

अर्थ—सम्पूर्ण अभिलाषाओंका त्याग करना अथवा वैराग्य धारण करना संवेग है और उसीका नाम धर्म है। क्योंकि जिसके अभिलाषा पायी जाती है, वह धर्मात्मा कभी नहीं हो सकता। मिथ्यादृष्टि पुरुष सदा रागी भी है, वह कभी भी रागरहित नहीं होता। पर णमोकार मन्त्रकी आराधना करनेवाले सम्यग्दृष्टिका राग नष्ट हो जाता है। अतः वह रागी नहीं, अपितु विरागी है। संवेग गुण आत्माको आसक्तिसे हटाता है और स्वरूपमें लीन करता है।

णमोकार मन्त्रकी अनुभूति होनेसे तीसरा आस्तिक्य गुण प्रकट होता है। इस गुणके प्रकट होते ही 'सत्त्वेषु मैत्री' की भावना आ जाती है। समस्त प्राणियोंके ऊपर दयाभाव होने लगता है। 'सर्वभूतेषु समता'के आ जानेपर इस गुणका धारक जीव अपने हृदयमें चुभनेवाले माया, मिथ्यात्व और निदान शल्यको भी दूर कर देता है तथा स्व-पर अनुकम्पा पालन करने लगता है। चौथे आस्तिक्य गुणके प्रकट होनेमें द्रव्य, गुण, पर्याय आदिमें यथार्थ निश्चय बुद्धि उत्पन्न हो जाती है तथा निश्चय और व्यवहारके द्वारा सभी द्रव्योंकी वास्तविकताका हृदयंगम भी होने लगता है। द्वादशांगवाणीका सार यह णमोकार मन्त्र सम्यक्त्वके उक्त चारों गुणोंको उत्पन्न करता है।

आत्माको सामान्य-विशेष स्वरूप माना गया है। ज्ञानकी अपेक्षा आत्मा सामान्य है और उस ज्ञानमें समय-समयपर जो पर्यायें होती हैं, वह विशेष है।

सामान्य स्वयं ध्रौव्यरूप रहकर विशेष रूपमें परिणमन करता है; इस विशेषपर्यायमें यदि स्वरूपकी रुचि हो तो समय-समयपर विशेषमें शुद्धता आती जाती है। यदि उस विशेष पर्यायमें ऐसी विपरीत रुचि हो कि 'जो रागादि तथा देहादि है, वह मैं हूँ' तो विशेषमें अशुद्धता होती है, स्वरूपमें रुचि होनेपर शुद्ध पर्याय क्रमबद्ध और विपरीत होनेपर अशुद्ध पर्याय क्रमबद्ध प्रकट होती हैं। चैतन्यकी क्रमबद्ध पर्यायमें अन्तर नही पडता, किन्तु जीव जिधर रुचि करता है, उस ओरकी क्रमबद्ध दशा प्रकट होती है। णमोकार मन्त्र आत्माकी ओर रुचि करता है तथा रागादि और देहादिसे रुचिको दूर करता है, अतः आत्माकी शुद्ध क्रमबद्ध दशाओंको प्रकट करनेमे प्रधान कारण यही कहा जा सकता है। यह आत्माकी ओर वह पुरुषार्थ है जो क्रमबद्ध चैतन्य पर्यायोंको उत्पन्न करनेमे समर्थ है। अतएव द्रव्यानुयोगकी अपेक्षा णमोकार मन्त्रकी अनुभूति विपरीत मान्यता और अनन्तानुबन्धी कषायका नाश कर विशुद्ध चैतन्य पर्यायोकी ओर जीवनको प्रेरित करती है। आत्माकी शुद्धिके लिए इस महामन्त्रका उच्चारण, मनन और ध्यान करना आवश्यक है।

यों तो गणितशास्त्रका उपयोग लोक-व्यवहार चलानेके लिए होता है, पर आध्यात्मिक क्षेत्रमें भी इस शास्त्रका व्यवहार प्राचीन कालसे होता चला आ रहा है। मनको स्थिर करनेके लिए गणित एक प्रधान साधन है। गणितकी पेचीदी गुत्थियोंमे उलझकर मन स्थिर हो जाता है तथा एक निश्चित केन्द्रबिन्दुपर आश्रित होकर आत्मिक विकासमे सहायक होता है। णमोका मन्त्र, षट्खण्डागमका गणित, गोम्मटसार और त्रिलोकसारके गणित मनकी सासारिक प्रवृत्तियोंको रोकते हैं और उसे कल्याणके पथपर अग्रसर करते है। वास्तवमें गणितविज्ञान भी इसी प्रकारका है जिसे एक बार इसमें रस मिल जाता है, वह फिर इस विज्ञानको जीवन-भर छोड़ नही सकता है। जैनाचार्योंने धार्मिक गणितका विधान कर मनको स्थिर करनेका सुन्दर और व्यवस्थित मार्ग बतलाया है। क्योंकि निकम्मा मन प्रमाद करता हैं, जबतक यह किसी दायित्वपूर्ण कार्यमे लगा रहता है, तबतक इसे व्यर्थकी अनावश्यक एवं न करने योग्य बातोंके सोचनेका अवसर ही नही मिलता है पर जहाँ इसे दायित्वसे छुटकारा मिला – स्वच्छन्द हुआ कि यह उन विषयोंको सोचेगा, जिनका स्मरण भी कभी कार्य करते समय नही होता था। मनकी गति

गणितशास्त्र और णमोकार मन्त्र

बड़ी विचित्र है। एक ध्येयमें केन्द्रित कर देनेपर यह स्थिर हो जाता है।

नया साधक जब ध्यानका अभ्यास आरम्भ करता है, तब उसके सामने सबसे बड़ी कठिनाई यह आती है कि अन्य समय जिन सड़ी-गली, गन्दी एवं घिनौनी बातोंकी उसने कभी कल्पना नहीं की थी, वे ही उसे याद आती हैं और वह घबड़ा जाता है। इसका प्रधान कारण यही है कि जिसका वह ध्यान करना चाहता है, उसमें मन अभ्यस्त नहीं है और जिनमें मन अभ्यस्त है, उनसे उसे हटा दिया गया है; अतः इस प्रकारकी परिस्थितिमें मन निकम्मा हो जाता है। किन्तु मनको निकम्मा रहना आता नहीं, जिससे वह उन पुराने चित्रोंको उधेड़ने लगता है, जिनका प्रथम संस्कार उसके ऊपर पड़ा है। वह पुरानी बातोंके विचारमें संलग्न हो जाता है।

आचार्यने धार्मिक गणितकी गुत्थियोंको सुलझानेके मार्ग-द्वारा मनको स्थिर करनेकी प्रक्रिया बतलायी है क्योंकि नये विषयमें लगनेसे मन ऊबता है, घबड़ाता है, रुकता है और कभी-कभी विरोध भी करने लगता है। जिस प्रकार पशु किसी नवीन स्थानपर नये खूँटेसे बाँधनेपर विद्रोह करता है, चाहे नयी जगह उसके लिए कितनी ही सुखप्रद क्यों न हो, फिर भी अवसर पाते ही रस्सी तोड़कर अपने पुराने स्थानपर भाग जाना चाहता है। इसी प्रकार मन भी नये विचारमें लगना नहीं चाहता। कारण स्पष्ट है, क्योंकि विषयचिन्तनका अभ्यस्त मन आत्मचिन्तनमें लगनेसे घबड़ाता है। यह बड़ा ही दुर्निग्रह और चंचल है। धार्मिक गणितके सतत अभ्याससे यह आत्मचिन्तनमें लगता है और व्यर्थकी अनावश्यक बातें विचार-क्षेत्रमें प्रविष्ट नही हो पातीं।

णमोकार महामन्त्रका गणित इसी प्रकारका है, जिससे इसके अभ्यास द्वारा मन विषय-चिन्तनसे विमुख हो जाता है और णमोकार मन्त्रकी साधनामें लग जाता है। प्रारम्भमें साधक जब णमोकार मन्त्रका ध्यान करना शुरू करता है तो उसका मन स्थिर नहीं रहता है। किन्तु इस महामन्त्रके गणित-द्वारा मनको थोड़े ही दिनमें अभ्यस्त कर लिया जाता है। इधर-उधर विषयोंकी ओर भटकनेवाला चंचल मन, जो कि घर-द्वार छोड़कर वनमें रहनेपर भी व्यक्तिको आन्दोलित रखता है, वह इस मन्त्रके गणितके सतत अभ्यास-द्वारा इस मन्त्रके अर्थचिन्तनमें स्थिर हो जाता है तथा पंचपरमेष्ठी—शुद्धात्माका ध्यान करने लगता है।

प्रस्तार, भंगसंख्या, नष्ट, उद्दिष्ट, आनुपूर्वी और अनानुपूर्वी इन गणित विधियों-द्वारा णमोकार महामन्त्रका वर्णन किया गया है। इन छह प्रकारके गणितमें चंचल मन एकाग्र हो जाता है। मनके एकाग्र होनेसे आत्माकी मलिनता दूर होने लगती है तथा स्वरूपाचरणकी प्राप्ति हो जाती है। णमोकार मन्त्रमें सामान्यकी अपेक्षा, पाँच या विशेषकी अपेक्षा ग्यारह पद, चौंतीस स्वर, तीस व्यंजन, अट्ठावन मात्राओं-द्वारा गणित-क्रिया सम्पन्न की जाती है। यहाँ संक्षेपमें उक्त छहों प्रकार-की विधियोंका दिग्दर्शन कराया जायेगा।

भंगसंख्या—किसी भी अभीष्ट पदसंख्यामें एक, दो, तीन आदि संख्याको अन्तिम गच्छ संख्या एक रखकर परस्पर गुणा करनेपर कुल भंगसंख्या आती है। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीने भंगसंख्या निकालनेके लिए निम्न करण सूत्र बतलाया है—

सव्वेपि पुव्वभंगा उवरिमभंगेसु एक्कमेक्केसु।
मेलंतित्ति य कमसो गुणिदे उप्पज्जदे संखा ॥३६॥

अर्थ—पूर्वके सभी भंग आगेके प्रत्येक भंगमें मिलते हैं, इसलिए क्रमसे गुणा करनेपर संख्या उत्पन्न होती है।

उदाहरणके लिए णमोकार मन्त्रकी सामान्य पदसंख्या ५ तथा विशेष पदसंख्या ११ तथा मात्राओंकी संख्या ५८ को ही लिया जाता है। जिस संख्याके भंग निकालने है, वही संख्या गच्छ कहलायेगी। अतः यहाँ सर्वप्रथम ११ पदोंकी भंगसंख्या लानी है, इसलिए ११ गच्छ हुआ। इसको एक-दो-तीन आदि कर स्थापित किया – १।२।३।४।५।६।७।८।९।१०।११।

इस पदसंख्यामें एक संख्याका भंग एक ही हुआ; क्योंकि एकका पूर्ववर्ती कोई अंक नहीं है, अतः एकको किसीसे भी गुणा नहीं किया जा सकता है। दो संख्याके भंग दो हुए; क्योंकि दोको एक भंगसंख्यासे गुणा करनेपर दो गुणनफल निकला। तीन संख्याके भंग छह हुए; क्योंकि तीनको दोकी भंगसंख्यासे गुणा करनेपर छह हुए। चार संख्याके भंग चौबीस हुए, क्योंकि तीनकी संगसंख्या छहको चारसे गुणा करनेपर चौबीस गुणनफल निष्पन्न हुआ। पाँच संख्याके भंग एक सौ बीस है, क्योंकि पूर्वोक्त संख्याके चौबीस भंगोंको पाँचसे गुणा किया, जिससे १२० फल आया। छह संख्याके भंग ७२० आये; क्योंकि पूर्वोक्त संख्या

१२० × ६ = ७२० संख्या निष्पन्न हुई। सात संख्याके भंग ५०४० हुए, क्योंकि पूर्वोक्त भंगसंख्याको सातसे गुणा करनेपर ७२० × ७ = ५०४० संख्या निष्पन्न हुई। आठ संख्याके भंग ४०३२० आये; क्योंकि पूर्वोक्त सात अंककी भंगसंख्याको आठसे गुणा किया तो ५०४० × ८ = ४०३२० भंगोंकी संख्या निष्पन्न हुई। नौ संख्याके भंग ३६२८८० हुए; क्योंकि पूर्वोक्त आठ अंककी भंगसंख्याको ९ से गुणा किया। अतः ४०३२० × ९ = ३६२८८० भंगसंख्या हुई। दस संख्याकी भंगसंख्या लानेके लिए पूर्वोक्त नौ अंककी भंगसंख्याको दससे गुणा कर देनेपर अभीष्ट अंक दसकी भंगसंख्या निकल आयेगी। अतः ३६२८८० × १० = ३६२८८०० भंगसंख्या दसके अंककी हुई। ग्यारहवें पदकी भंगसंख्या लानेके लिए पूर्वोक्त दसकी भंगसंख्याको ग्यारहसे गुणा कर देनेपर ग्यारहवें पदकी भंगसंख्या निकल आयेगी। अतः ३६२८८०० × ११ = ३९९१६८०० ग्यारहवें पदकी भंगसंख्या हुई।

प्रधान रूपसे णमोकार मन्त्रमें पाँच पद हैं। इनकी भंगसंख्या = १।२।३।४।५; १ × १ = १; १ × २ = २; २ × ३ = ६; ६ × ४ = २४; २४ × ५ = १२० हुई। ५८ मात्राओं, ३४ स्वरों और ३० व्यंजनोंको भी गच्छ बनाकर पूर्वोक्त विधिसे भंगसंख्या निकाल लेनी चाहिए। भंगसंख्या लानेका एक संस्कृत करणसूत्र निम्न है। इस करणसूत्रका आशय पूर्वोक्त गाथा करणसूत्रसे भिन्न नहीं है। मात्र जानकारीकी दृष्टिसे इस करणसूत्रको दिया जा रहा है। इसमें गाथोक्त 'मेलंता'के स्थानपर 'परस्परहताः' पाठ है, जो सरलताकी दृष्टिसे अच्छा मालूम होता है। यद्यपि गाथामें भी 'गुणिदा' आगेवाला पद उसी अर्थका द्योतक है। कहा गया है कि पदोंको रखकर "एकाद्या गच्छपर्यन्ताः परस्परहताः। राशयस्तद्धि विज्ञेयं विकल्पगणितं फलम् ॥" अर्थात् एकादि गच्छोंका परस्पर गुणा कर देनेसे भंगसंख्या निकल आती है।

इस गणितका अभिप्राय णमोकार मन्त्रके पदों-द्वारा अंक-संख्या निकालना है। मनको अभ्यस्त और एकाग्र करनेके लिए णमोकार मन्त्रके पदोंका सीधा-सादा क्रमबद्ध स्मरण न कर व्यतिक्रम रूपसे स्मरण करना है। जैसे पहले 'णमो सिद्धाणं' कहनेके अनन्तर 'णमो लोए सव्वसाहूणं' पदका स्मरण करना। अर्थात् 'णमो सिद्धाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं, णमो आइरियाणं, णमो अरिहंताणं,

णमो उवज्झायाणं' इस प्रकार स्मरण करना अथवा "**णमो अरिहंताणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं, णमो आइरियाणं, णमो सिद्धाणं**' इस रूप स्मरण करना या किन्हीं दो पद, तीन पद या चार पदोंका स्मरण कर उस संख्याका निकालना। पदोंके क्रममें किसी भी प्रकारका उलट-फेर किया जा सकता है।

यहाँ यह आशंका उठती है कि णमोकार मन्त्रके क्रमको बदलकर उच्चारण, स्मरण या मनन करनेपर पाप लगेगा; क्योंकि इस अनादि मन्त्रका क्रमभंग होनेसे विपरीत फल होगा। अतः यह पद-विपर्ययका सिद्धान्त ठीक नहीं जँचता। श्रद्धालु व्यक्ति जब साधारण मन्त्रोंके पद-विपर्ययसे डरता है तथा अनिष्ट फल प्राप्त होनेके अनेक उदाहरण सामने प्रस्तुत हैं, तब इस महामन्त्रमें इस प्रकारका परिवर्तन उचित नही लगता।

इस शंकाका उत्तर यह है कि किसी फलकी प्राप्ति करनेके लिए गृहस्थको भंगसंख्या-द्वारा णमोकारमन्त्रके ध्यानकी आवश्यकता नहीं। जबतक गृहस्थ अपरिग्रही नहीं बना है, घरमे रहकर ही साधना करना चाहता है, तबतक उसे उक्त क्रमसे ध्यान नहीं करना चाहिए। अतः जिस गृहस्थ व्यक्तिका मन संसारके कार्योंमें आसक्त है, वह इस भंगसंख्या-द्वारा मनको स्थिर नहीं कर सकता है। त्रिगुप्तियोंका पालन करना जिसने आरम्भ कर दिया है, ऐसा दिगम्बर, अपरिग्रही साधु अपने मनको एकाग्र करनेके लिए उक्त क्रम-द्वारा ध्यान करता है। मनको स्थिर करनेके लिए क्रम-व्यतिक्रम रूपसे ध्यान करनेकी आवश्यकता पड़ती है। अतः गृहस्थको उक्त प्रयोगकी प्रारम्भिक अवस्थामें आवश्यकता नहीं है। हाँ, ऐसा व्रती श्रावक, जो प्रतिमा योग धारण करता है, वह इस विधिसे णमोकार मन्त्रका ध्यान करनेका अधिकारी है। अतएव ध्यान करते समय अपना पद, अपनी शक्ति और अपने परिणामोंका विचार कर ही आगे बढ़ना चाहिए।

प्रस्तार—आनुपूर्वी और अनानुपूर्वीके अंगोंका विस्तार करना प्रस्तार है। अथवा लोम-विलोम क्रमसे आनुपूर्वीकी संख्याको निकालना प्रस्तार है। णमोकारमन्त्रके पाँच पदोंकी भंगसंख्या १२० आयी है, इसकी प्रस्तार-पंक्तियाँ भी १२० होती हैं। इन प्रस्तार-पंक्तियोंमें मनको स्थिर किया जाता है। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त-चक्रवर्तीने गोम्मटसार जीवकाण्डमें प्रमादका प्रस्तार निकाला है। इसी क्रमसे

णमोकार मन्त्रके पदोंका भी प्रस्तार निकालना है। गाथा सूत्र निम्न प्रकार है –

> पढमं पमदपमाणं कमेण णिक्खिविय उवरिमाणं च।
> पिंडं पडि एक्केक्कं णिक्खित्ते होदि पत्थारो ॥३७॥
> णिक्खित्तु विदियमेत्तं पढमं तस्सुवरि विदियमेक्केक्कं।
> पिंडं पडि णिक्खेओ एवं सव्वत्थ कायव्वो ॥३८॥

अर्थात् – गच्छ प्रमाण पद संख्याका विरलन करके उसके एक-एक रूपके प्रति उसके पिण्डका निक्षेपण करनेपर प्रस्तार होता है। अथवा आगेवाले गच्छ प्रमाणका विरलन कर, उससे पूर्ववाले भंगोंको उस विरलनपर रख देने और योग कर देनेसे प्रस्तारकी रचना होती है। जैसे यहाँ ३ पदसंख्याका ४ पदसंख्याके साथ प्रस्तार तैयार करना है। तीन पदसंख्याके अंग ६ आये हैं। अतः प्रथम रीतिसे प्रस्तार तैयार करनेके लिए तीन पदकी भंगसंख्याका विरलन किया तो १।१।१।१।१।१ हुआ। इसके ऊपर आगेकी पदसंख्याकी स्थापना की तो—

४।४।४।४।४।४
१।१।१।१।१।१ = २४ हुए। इनका आगेवाली पदसंख्याके साथ प्रस्तार बनाना हो तो इस २४ संख्याका विरलन किया

५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५
१।१।१।१।१।१।१।१।१।१।१।१।१।१।१।

५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५
१।१।१।१।१।१।१।१।१ और इसके ऊपर आगेवाली संख्या स्थापित कर दी तो सबको जोड़ देनेपर प्रस्तार बन जाता है। यह प्रस्तारसंख्या १२० हुई। द्वितीय विधिसे प्रस्तार निकालनेके लिए जिस गच्छ प्रमाणका प्रस्तार बनाना हो, उसीका विरलन कर, पूर्वकी भंगसंख्याको उसके नीचे स्थापित कर दिया जाता है और सबको जोड़ देनेपर प्रस्तार हो जाता है। जैसे यह ४ पद-संख्याका प्रस्तार निकालना है तो इस चारका विरलन कर दिया— १।१।१।१
६।६।६।६ और इस विरलनके नीचे पूर्वकी भंगसंख्याको स्थापित कर दिया और सबको जोड़ किया तो २४ संख्या चौथे पदकी आयी। यदि पाँचवें पदका प्रस्तार बनाना हो तो इस पाँचका विरलन कर चौथे पदकी संख्याको इसके नीचे स्थापित कर देनेसे द्वितीय विधिके अनुसार प्रस्तार आयेगा। अतः १। १। १। १। १
२४।२४।२४।२४।२४ इसका योग किया तो

१२० प्रस्तार आया। इस प्रकार णमोकार मन्त्रके ५ पदोंकी पंक्तियाँ १२० होती हैं। यहाँपर छह-छह पंक्तियोंके दस वर्ग बनाकर लिखे जाते हैं। इन वर्गोंसे इस मन्त्रकी ध्यान विधिपर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

प्रथम वर्ग				
१	२	३	४	५
२	१	३	४	५
१	३	२	४	५
३	१	२	४	५
२	३	१	४	५
३	२	१	४	५

द्वितीय वर्ग				
१	२	३	५	४
२	१	३	५	४
१	३	२	५	४
३	१	२	५	४
२	३	१	५	४
३	२	१	५	४

तृतीय वर्ग				
१	२	४	५	३
२	१	४	५	३
१	४	२	५	३
४	१	२	५	३
२	४	१	५	३
४	२	१	५	३

चतुर्थ वर्ग				
१	३	४	५	२
३	१	४	५	२
१	४	३	५	२
४	१	३	५	२
३	४	१	५	२
४	३	१	५	२

पंचम वर्ग				
२	३	४	५	१
३	२	४	५	१
२	४	३	५	१
४	२	३	५	१
३	४	२	५	१
४	३	२	५	१

षष्ठ वर्ग				
१	२	४	३	५
२	१	४	३	५
१	४	२	३	५
२	४	१	३	५
४	२	१	३	५
४	१	२	३	५

सप्तम वर्ग				
१	२	५	३	४
२	१	५	३	४
१	५	२	३	४
५	१	२	३	४
२	५	१	३	४
५	२	१	३	४

अष्टम वर्ग				
१	२	५	३	४
२	१	५	३	४
१	५	२	३	४
५	१	२	३	४
२	५	१	३	४
५	२	१	३	४

नवम वर्ग				
१	३	५	४	२
३	१	५	४	२
१	५	३	४	२
५	१	३	४	२
३	५	१	४	२
५	३	१	४	२

दशम वर्ग				
२	३	५	४	५
३	२	५	४	१
२	५	३	४	१
५	२	३	४	१
३	५	२	४	१
५	३	२	४	१

इस प्रकार क्रम-व्यतिक्रम-स्थापन-द्वारा एक सौ बीस पंक्तियाँ भी बनायी जाती हैं। इसका अभिप्राय यह है कि प्रथम वर्गकी प्रथम पंक्तिमें णमोकार मन्त्र ज्यों का त्यों है; द्वितीय पंक्तिमें प्रथम दो अंकसंख्या रहनेसे इस मन्त्रका प्रथम द्वितीय पद, अनन्तर एक संख्या होनेसे प्रथम पद, पश्चात् तीन संख्या होनेसे तृतीयपद, अनन्तर चार अंक संख्या होनेसे चतुर्थपद और अन्त में पाँच अंक संख्या होनेसे पंचम पद का इस मन्त्र में उच्चारण किया जायेगा अर्थात् प्रथम वर्गकी द्वितीय पंक्तिका मन्त्र इस प्रकार रहेगा–"णमो सिद्धाणं, णमो अरिहंताणं, णमो णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।" प्रथम वर्गकी तृतीय पंक्तिमें पहला एकका अंक है, अतः इस मन्त्रका प्रथम पद; दूसरा तीनका अंक है, अतः इस मन्त्रका प्रथम पद; दूसरा तीनका अंक है, अतः इस मन्त्रका तृतीय पद; तीसरा दोका अंक है, अतः इस मन्त्रका द्वितीय पद; चौथा चारका अंक है, अतः इस मन्त्रका चतुर्थपद एवं पाँचवाँ पाँचका अंक है, अतः इस मन्त्रका पंचम पदका उच्चारण किया जायेगा। अर्थात् मन्त्रका रूप "णमो अरिहंताणं णमो आइरियाणं णमो सिद्धाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं" होगा। इसी प्रकार चौथी पंक्तिमें प्रथम स्थानमें तृतीयपद, द्वितीयमें

प्रथमपद, तृतीयमें द्वितीयपद, चतुर्थ स्थानमें चतुर्थपद और पंचम स्थानमें पंचमपद होनेसे – "णमो आइरियाणं णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं" यह मन्त्रका रूप होगा। प्रथम वर्गकी पाँचवीं पंक्तिके प्रथम स्थानमें द्वितीय पद, द्वितीय स्थानमें तृतीय पद, चतुर्थ स्थानमें चतुर्थपद और पंचम स्थानमें पंचमपद होनेसे "णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो अरिहंताणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं" यह मन्त्रका रूप हुआ। छठवीं पंक्तिमें प्रथम स्थानमें तृतीयपद, द्वितीय स्थानमें द्वितीयपद, तृतीय स्थानमें प्रथमपद, चतुर्थ स्थानमें चतुर्थपद और पंचम स्थानमें पंचम पदके होनेसे णमो आइरियाणं, णमो सिद्धाणं, णमो अरिहंताणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं" मन्त्रका रूप होगा।

इसी प्रकार द्वितीय वर्गकी प्रथम पंक्तिमें "णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो उवज्झायाणं" यह मन्त्रका रूप होगा। द्वितीय पंक्ति में "णमो सिद्धाणं णमो अरिहंताणं णमो आइरियाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो उवज्झायाणं" यह मन्त्र; तृतीय पंक्तिमें "णमो अरिहंताणं णमो आइरियाणं णमो सिद्धाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो उवज्झायाणं" यह मन्त्र; चतुर्थ पक्तिमें "णमो आइरियाणं णमो अरिहताणं णमो सिद्धाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो उवज्झायाणं" यह मन्त्र, पंचम पक्तिमें "णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो अरिहंताणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो उवज्झायाणं" यह मन्त्र और षष्ठ पंक्तिमें "णमो आइरियाणं णमो सिद्धाणं णमो अरिहंताणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो उवज्झायाणं" यह मन्त्रका रूप होगा।

तृतीय वर्गकी प्रथम पंक्तिमें "णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो आइरियाणं", द्वितीय पंक्तिमें "णमो सिद्धाणं णमो अरिहंताणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो आइरियाणं", यह मन्त्र; तृतीय पंक्तिमें "णमो अरिहंताणं णमो उवज्झायाण णमो सिद्धाण णमो लोए सव्वसाहूणं णमो आइरियाण" यह मन्त्र; चतुर्थ पंक्तिमें णमो उवज्झायाणं णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो आइरियाणं" यह मन्त्र; पंचम पंक्तिमें "णमो सिद्धाणं णमो उवज्झायाणं णमो अरिहंताणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो आइरियाणं" यह मन्त्र और छठवीं पंक्तिमें

"णमो उवज्झायाणं णमो सिद्धाणं णमो अरिहंताणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो आइरियाणं" यह मन्त्रका रूप होगा।

चतुर्थ वर्गकी प्रथम पंक्तिमे "णमो अरिहंताणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो सिद्धाणं" यह मन्त्र; द्वितीय पंक्तिमे "णमो आइरियाणं णमो अरिहंताणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो सिद्धाणं" यह मन्त्र; तृतीय पंक्तिमे "णमो अरिहंताणं णमो उवज्झायाणं णमो आइरियाणं णमो लोए सव्वसाहूणं, णमो सिद्धाणं" यह मन्त्र; चतुर्थ पंक्तिमे "णमो उवज्झायाणं णमो अरिहंताणं णमो आइरियाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो सिद्धाणं" यह मन्त्र; पंचम पंक्तिमे "णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो अरिहंताणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो सिद्धाणं" यह मन्त्र और छठवीं पंक्तिमे "णमो उवज्झायाणं णमो आइरियाणं णमो अरिहंताणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो सिद्धाणं" यह मन्त्रका रूप होगा।

पंचम वर्गकी प्रथम पंक्तिमे "णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो अरिहंताणं" यह मन्त्र; द्वितीय पंक्तिमें "णमो आइरियाणं णमो सिद्धाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो अरिहंताणं" यह मन्त्र; तृतीय पंक्तिमें "णमो सिद्धाणं णमो उवज्झायाणं णमो आइरियाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो अरिहंताणं" यह मन्त्र; चतुर्थ पंक्तिमें "णमो उवज्झायाणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो अरिहंताणं" यह मन्त्र; पंचम पंक्तिमें "णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो सिद्धाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो अरिहंताणं" यह मन्त्र और षष्ठ पंक्तिमें "णमो उवज्झायाणं णमो आइरियाणं णमो सिद्धाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो अरिहंताणं" यह मन्त्रका रूप होगा।

षष्ठ वर्गकी प्रथम पंक्तिमे "णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो उवज्झायाणं णमो आइरियाणं णमो लोए सव्वसाहूणं" यह मन्त्र; द्वितीय पंक्तिमें "णमो सिद्धाणं णमो अरिहंताणं णमो उवज्झायाणं णमो आइरियाणं णमो लोए सव्वसाहूणं" यह मन्त्र; तृतीय पंक्तिमें "णमो अरिहंताणं णमो उवज्झायाणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो लोए सव्वसाहूणं" यह मन्त्र; चतुर्थ पंक्तिमें "णमो सिद्धाणं णमो उवज्झायाणं णमो अरिहंताणं णमो आइरियाणं णमो लोए

सव्वसाहूणं" यह मन्त्र; पंचम पंक्तिमें "णमो उवज्झायाणं णमो सिद्धाणं णमो अरिहंताणं णमो आइरियाणं णमो लोए सव्वसाहूणं" और यह मन्त्र षष्ठ पंक्तिमें "णमो उवज्झायाणं णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो लोए सव्वसाहूणं" यह मन्त्रका रूप होगा।

सप्तम वर्गकी प्रथम पंक्तिमें "णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झाणं" यह मन्त्र; द्वितीय पंक्तिमें "णमो सिद्धाणं णमो अरिहंताणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं" यह मन्त्र; तृतीय पंक्तिमें "णमो अरिहंताणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाण" यह मन्त्र; चतुर्थ पंक्तिमें "णमो लोए सव्वसाहूणं णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं" यह मन्त्र और पंचम पंक्तिमें "णमो सिद्धाणं णमो लोए सव्व-साहूणं णमो अरिहंताणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं" यह मन्त्र और षष्ठ पंक्तिमें "णमो लोए सव्वसाहूणं णमो सिद्धाणं णमो अरिहंताणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं" यह मन्त्रका रूप होता है।

अष्टम वर्गकी प्रथम पंक्तिमें "णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो उवज्झायाणं णमो आइरियाणं" यह मन्त्र, द्वितीय पंक्तिमे "णमो सिद्धाणं णमो अरिहंताणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो उवज्झायाणं णमो आइरियाणं" यह मन्त्र, तृतीय पंक्तिमें "णमो अरिहंताणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो सिद्धाणं णमो उवज्झायाणं णमो आइरियाणं" यह मन्त्र; चतुर्थ पंक्तिमें "णमो लोए सव्वसाहूणं णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो उवज्झायाणं णमो आइरियाणं" यह मन्त्र; पंचम पंक्तिमें "णमो सिद्धाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो अरिहंताणं णमो उवज्झायाणं णमो आइरियाण" यह मन्त्र और षष्ठ पंक्तिमें "णमो लोए सव्वसाहूणं णमो सिद्धाणं णमो अरिहंताणं णमो उवज्झायाणं णमो आइरियाणं" यह मन्त्रका रूप होता है।

नवम वर्गकी प्रथम पंक्तिमें "णमो अरिहंताणं णमो आइरियाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो उवज्झायाणं णमो सिद्धाणं" यह मन्त्र; द्वितीय पंक्तिमें "णमो आइरियाणं णमो अरिहंताणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो उवज्झायाणं णमो सिद्धाणं" यह मन्त्र; तृतीय पंक्तिमें "णमो अरिहंताणं णमो लोए सव्वसाहूणं

णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो सिद्धाणं" यह मन्त्र चतुर्थ पंक्तिमें "णमो लोए सव्वसाहूणं णमो अरिहंताणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो सिद्धाणं" यह मन्त्र; पंचम पंक्तिमें "णमो आइरियाणं णमो लोए सव्व-साहूणं णमो अरिहंताणं णमो उवज्झायाणं णमो सिद्धाणं" यह मन्त्र और षष्ठ पंक्तिमें "णमो लोए सव्वसाहूणं णमो आइरियाणं णमो अरिहंताणं णमो उवज्झायाणं णमो सिद्धाणं" यह मन्त्रका रूप होता है।

दशम वर्गकी प्रथम पंक्तिमें "णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो उवज्झायाणं णमो अरिहंताणं" यह मन्त्र; द्वितीय पंक्तिमें "णमो आइरियाणं णमो सिद्धाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो उवज्झायाणं णमो अरिहंताणं" यह मन्त्र; तृतीय पंक्तिमें "णमो सिद्धाणं णमो लोए सव्व-साहूणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो अरिहंताणं" यह मन्त्र; चतुर्थ पंक्तिमें "णमो लोए सव्वसाहूणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो अरिहंताणं" यह मन्त्र; पंचम पंक्तिमें "णमो आइरियाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो सिद्धाणं णमो उवज्झायाणं णमो अरिहंताणं" यह मन्त्र; और षष्ठ पंक्तिमें "णमो लोए सव्वसाहूणं णमो आइरियाणं णमो सिद्धाणं णमो उवज्झायाणं णमो अरिहंताणं" यह मन्त्रका रूप होता है। इस प्रकार १२० रूपान्तर णमोकार मन्त्रके होते हैं।

णमोकार मन्त्रका उपर्युक्त विधिके उच्चारण तथा ध्यान करनेपर लक्ष्यकी दृढ़ता होती है तथा मन एकाग्र होता है, जिससे कर्मोकी असंख्यातगुणी निर्जरा होती है। इन अंकोंको क्रमबद्ध इसलिए नहीं रखा गया है कि क्रमबद्ध होनेसे मनको विचार करनेका अवसर कम मिलता है, फलतः मन संसारतन्त्रमें पड़कर धर्मकी जगह मार-धाड़ कर बैठता है। आनुपूर्वी क्रमसे मन्त्रका स्मरण और मनन करनेसे आत्मिक शान्ति मिलती है। जो गृहस्थ व्रतोपवास करके धर्मध्यानपूर्वक अपना दिन व्यतीत करना चाहता है, वह दिन-भर पूजा तो कर नहीं सकता। हाँ, स्वाध्याय अवश्य अधिक देर तक कर सकता है। अतः व्रती श्रावकको उपर्युक्त विधिसे इस मन्त्रका जाप कर मन पवित्र करना चाहिए। जिसे केवल एक माला फेरनी हो, उसे तो सीधे रूपमें ही णमोकार मन्त्रका जाप करना चाहिए। पर जिस गृहस्थको मनको एकाग्र करना हो, उसे उपर्युक्त क्रमसे जाप

करनेसे अधिक शान्ति मिलती है। जो व्यक्ति स्नानादि क्रियाओंसे पवित्र होकर श्वेत वस्त्र पहनकर कुशासनपर बैठ उपर्युक्त विधिसे इस मन्त्रका १०८ बार स्मरण करता है अर्थात् १२० × १०८ बार उपांशु जाप – बाहरी-भीतरी प्रयास तो दिखलाई पड़े, पर कण्ठसे शब्दोच्चारण न हो, कण्ठमें ही शब्द अन्तर्जल्प करते रहे, करे तो वह कठिन कार्यको सरलतापूर्वक सिद्ध कर लेता है। लौकिक सभी प्रकारकी मनःकामनाएँ उक्त प्रकारसे जाप करनेपर सिद्ध होती है। दिगम्बर मुनि कर्मक्षय करनेके लिए उक्त प्रकारका जाप करते है। जबतक रूपातीत घ्यानकी प्राप्ति नही होती, तबतक इस मन्त्र-द्वारा क्रिया पदस्थ घ्यान असंख्यातगुणी निर्जराका कारण है।

परिवर्तन – भंग संख्यामें अन्त्य गच्छका भाग देनेसे जो लब्ध आवे, वह उस अन्त्य गच्छका परिवर्तनांक होता है, इसी प्रकार उत्तरोत्तर गच्छोंका भाग देनेपर जो लब्ध आवे वह उत्तरोत्तर गच्छसम्बन्धी परिवर्तनांक संख्या होती है। उदाहरणार्थ – पूर्वोक्त भंगसंख्या ३९९१६८००में अन्त्यगच्छ ११ का भाग दिया तो ३९९१६८०० ÷ ११ = ३६२८८०० परिवर्तनांक अन्त्यगच्छका हुआ। इसी तरह ३६२८८०० ÷ १० = ३६२८८० यह परिवर्तनांक दस गच्छका आया। ३६२८८० ÷ ९ = ४०३२० यह परिवर्तनांक नौ गच्छका आया। ४०३२० ÷ ८ = ५०४० यह परिवर्तनांक आठ गच्छका हुआ। ५०४० ÷ ७ = ७२० परिवर्तनांक सात गच्छका आया। ७२० ÷ ६ = १२० यह परिवर्तनांक छह गच्छका; १२० ÷ ५ = २४ परिवर्तनांक पाँच गच्छका; २४ ÷ ४ = ६ परिवर्तनांक चार गच्छका; ६ ÷ ३ = २ परिवर्तनांक तीन गच्छका; २ ÷ २ = १ परिवर्तनांक दो गच्छका एवं १ ÷ १ = १ परिवर्तनांक एक गच्छका हुआ। परिवर्तनांक चक्र निम्न प्रकार बनाया जायेगा।

परिवर्तन चक्र

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
१	१	२	६	२४	१२०	७२०	५०४०	४०३२०	३६२८८०	३६२८८००

नष्ट और उद्दिष्ट – **"रूपं धृत्वा पदानयनं नष्टः"** – संख्याको रखकर पदका प्रमाण निकालना नष्ट है। इसकी विधि है कि भंगसंख्याका भाग देनेपर जो शेष रहे, उस शेष संख्यावाला भंग ही पदका मान होगा। पूर्वमें २४-२४ भंगोंके कोठे बनाये गये हैं। अतः शेष तुल्य पद समझ लेना चाहिए। एक शेषमें **'णमो अरिहंताणं'** दो शेषमें **'णमो सिद्धाणं'** तीन शेषमें **'णमो आइरियाणं'** चार शेषमें **'णमो उवज्झायाणं'** और पाँच शेषमें **'णमो लोए सव्वसाहूणं'** पद समझना चाहिए। उदाहरणार्थ – ४२ संख्याका पद लाना है। यहाँ सामान्य पदसंख्या ५ से भाग दिया तो – ४२ ÷ ५ = ८, शेष २। यहाँ शेष पद **'णमो सिद्धाणं'** हुआ। ४२वाँ भंग पूर्वोक्त वर्गोमें देखा तो **'णमो सिद्धाणं'** का आया।

"पदं धृत्वा रूपानयनमुद्दिष्टः" – पदको रखकर संख्याका प्रमाण निकालना उद्दिष्ट होता है। इसकी विधि यह है कि णमोकार मन्त्रके पदको रखकर संख्या निकालनेके लिए **"संठाविदूण रूवं उवरीयो संगुणित्तु सगमाणे। अवणिज्ज अणंकदियं कुज्जा एमेव सव्वत्थ"**। अर्थात् एकका अंक स्थापन कर उसे सामान्य-पदसंख्यासे गुणा कर दे। गुणनफलमें-से अनंकित पदको घटा दे, जो शेष आवे, उसमें ५, १०, १५, २०, २५, ३०, ३५, ४०, ४५, ५०, ५५, ६०, ६५, ७०, ७५, ८०, ८५, ९०, ९५, १००, १०५, ११०, ११५ जोड़ देनेपर भंगसंख्या आती है। अपुनरुक्त भंगसंख्या १२० है, अतः ११५ ही उसमें जोड़ना चाहिए। उदाहरण 'णमो सिद्धाणं' पदकी भंगसंख्या निकालनी है। अतः यहाँ १ संख्या स्थापित कर गच्छ प्रमाणसे गुणा किया। १ × ५ = ५, इसमें-से अनंकित पद संख्याको घटाया तो यहाँ यह अनंकित संख्या ३ है। अतः ५–३ = २ संख्या हुई। २ + ५ = ७वाँ भंग, २ + १० = १२वाँ भंग, १५ + २ = १७वाँ भंग, २० + २ = २२वाँ भंग, २५ + २ = २७वाँ भंग, ३० + २ = ३२वाँ भंग, ३५ + २ = ३७वाँ भंग, ४० + २ = ४२वाँ भंग, ४५ + २ = ४७वाँ भंग, ५० + २ = ५२वाँ भंग, ५५ + २ = ५७वाँ भंग, ६० + २ = ६२वाँ भंग, ६५ + २ = ६७वाँ भंग, ७० + २ = ७२वाँ भंग, ७५ + २ = ७७वाँ भंग, ८० + २ = ८२वाँ भंग, ८५ + २ = ८७वाँ भंग, ९० + २ = ९२वाँ भंग, ९५ + २ = ९७वाँ भंग, १०० + २ = १०२वाँ भंग, १०५ + २ = १०७वाँ भंग, ११० + २ = ११२वाँ भंग, ११५ + २ = ११७वाँ भंग हुआ। अर्थात् **'णमो सिद्धाणं'** यह पद २रा ७वाँ,

१२वाँ, १७वाँ,........११७वाँ भंग है। इसी प्रकार नष्टोद्दिष्टके गणित किये जाते हैं। इन गणितोंके द्वारा भी मनको एकाग्र किया जाता है तथा विभिन्न कर्मो-द्वारा णमोकार मन्त्रके जाप-द्वारा ध्यानकी सिद्धि की जाती है। यह पदस्थ ध्यानके अन्तर्गत है तथा पदस्थध्यानकी पूर्णता इस महामन्त्रकी उपर्युक्त जाप विधिके द्वारा सम्पन्न होती है। साधक इस महामन्त्रके उक्त क्रमसे जाप करनेपर सहस्रों पापोंका नाश करता है। आत्माके मोह और क्षोभको उक्त भंगजाल-द्वारा णमोकार मन्त्रके जापसे दूर किया जाता है।

मानव जीवनको सुव्यवस्थित रूपसे यापन करने तथा इस अमूल्य मानव-शरीर-द्वारा चिरसंचित कर्मकालिमाको दूर करनेका मार्ग बतलाना आचारशास्त्रका

आचारशास्त्र और णमोकार मन्त्र

विषय है। आचारशास्त्र जीवनके विकासके लिए विधानका प्रतिपादन करता है; यह आबालवृद्ध सभीके जीवनको सुखी बनानेवाले नियमोंका निर्धारण कर वैयक्तिक और सामाजिक जीवनको व्यवस्थित बनाता है। यों तो आचार शब्दका अर्थ इतना व्यापक है कि मनुष्यका सोचना, बोलना, करना आदि सभी क्रियाएँ इसमें परिगणित हो जाती है। अभिप्राय यह है कि मनुष्यकी प्रत्येक प्रवृत्ति और निवृत्तिको आचार कहा जाता है। प्रवृत्तिका अर्थ है, इच्छापूर्वक किसी काममें लगना और निवृत्तिका अर्थ है, प्रवृत्तिको रोकना। प्रवृत्ति अच्छी और बुरी दोनों प्रकारकी होती है। मन, वचन और कायके द्वारा प्रवृत्ति सम्पन्न की जाती है। अच्छा सोचना, अच्छे वचन बोलना, अच्छे कार्य करना, मन, वचन, कायकी सत्प्रवृत्ति और बुरा सोचना, बुरे वचन बोलना, बुरे कार्य करना असत्प्रवृत्ति है।

अनादिकालीन कर्मसंस्कारोंके कारण जीव वास्तविक स्वभावको भूले हुए है, अतः यह विषय वासनाजन्य सुखको ही वास्तविक सुख समझ रहा है। ये विषय-सुख भी आरम्भ में बड़े सुन्दर मालूम होते हैं, इनका रूप बड़ा ही लुभावना है, जिसकी भी दृष्टि इनपर पड़ती है, वही इनकी ओर आकृष्ट हो जाता है, पर इनका परिणाम हलाहल विषके समान होता है। कहा भी है – "**आपात-रम्ये परिणामदुःखे सुखे कथं वैषयिके रतोऽसि**" अर्थात् – वैषयिक सुख परिणाममें दुःखकारक होते हैं, इनसे जीवनको क्षणिक शान्ति मिल सकती है; किन्तु अन्तमें दुःखदायक ही होते हैं। आचारशास्त्र जीवको सचेत करता है तथा उसे

विषय-सुखोंमें रत होनेसे रोकता है। मोह और तृष्णाके दूर होनेपर प्रवृत्ति सत् हो जाती है; परन्तु यह सत्प्रवृत्ति भी जब-तब अपनी मर्यादाका उल्लंघन कर देती है। अतएव प्रवृत्तिकी अपेक्षा निवृत्तिपर ही आचारशास्त्र ज़ोर देता है। निवृत्तिमार्ग ही व्यक्तिकी आध्यात्मिक, मानसिक और शारीरिक शक्तिका विकास करता है, प्रवृत्तिमार्ग नहीं। प्रवृत्तिमार्गमें सँभलकर चलनेपर भी जोखिम उठानी पड़ती है, भोग-विलास जब-तब जीवनको अशान्त बना देते हैं, किन्तु निवृत्ति-मार्गमें किसी प्रकारका भय नहीं रहता। इसमें आत्मा रत्नत्रय रूप आचरणकी ओर बढ़ता है तथा अनुभव होने लगता है कि जो आत्मा ज्ञाता, द्रष्टा है, जिसमें अपरिमित बल है, वह मैं हूँ। मेरा सांसारिक विषयोंसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। मेरा आत्मा शुद्ध है, इसमें परमात्माके सभी गुण वर्तमान हैं। शुद्ध आत्माको ही परमात्मा कहा जाता है। अतः शक्तिकी अपेक्षा प्रत्येक जीवात्मा परमात्मा है। इस प्रकार जैसे-जैसे आत्मतत्त्वका अनुभव होता है, वैसे-वैसे ऐन्द्रियिक सुख सुलभ होते हुए भी नहीं रुचते हैं।

निवृत्तिमार्गकी ओर अथवा सत्प्रवृत्तिमार्गकी ओर जीवकी प्रवृत्ति तभी होती है, जब वह रत्नत्रयरूप आत्मतत्त्वकी आराधना करता है। णमोकार मन्त्रमें आराधना ही है। इस मन्त्रका चिन्तन, मनन और स्मरण करनेसे रत्नत्रयरूप आत्माका अनुभव होता है, जिससे मन, वचन और कायकी सत्प्रवृत्ति होती है तथा कुछ दिनों के पश्चात् निवृत्तिमार्गकी ओर भी व्यक्ति अपने-आप झुक जाता है। विषय कषायोंसे इसे अरुचि हो जाती है। इस महामन्त्रके जप और मननमें ऐसी शक्ति है कि व्यक्ति जिन बाह्य पदार्थोंमें सुख समझता था, जिनके प्राप्त होनेसे प्रसन्न होता था, जिनके पृथक् होनेसे इसे दुःखका अनुभव होता था, उन सबको क्षण-भरमें छोड़ देता है। आत्माके अहितकारक विषय और कषायोंसे भी इसकी प्रवृत्ति हट जाती है। इन्द्रियोंकी पराधीनता, जो कि कुगतिकी ओर जीवको ले जानेवाली है, समाप्त हो जाती है। मंगल वाक्यका चिन्तन समस्त पापको गलाने – नष्ट करनेवाला होता है और अनेक प्रकारके सुखोंको उत्पन्न करनेवाला है। अतः सुखाकांक्षीको णमोकार मन्त्र-जैसे महा पावन मंगल वाक्यों-का चिन्तन, मनन और स्मरण करना आवश्यक है; जिससे उसकी राग-द्वेष निवृत्ति हो जाती है। करणलब्धिकी प्राप्तिमें सहायक णमोकार मन्त्र है, इससे

अनन्तानुबन्धी और मिथ्यात्वका अभाव होते ही आत्मामें पुण्यास्रव होनेसे बद्ध कर्मजाल विशृंखलित होने लगता है ।

णमोकार मन्त्रमें पंचपरमेष्ठीका ही स्मरण किया गया है । पंचपरमेष्ठीकी शरण जाने, उनकी स्मृति और चिन्तन से राग-द्वेष रूप प्रवृत्ति रुक जाती है, पुरुषार्थकी वृद्धि होने लगती है तथा रत्नत्रय गुण आत्मामें आविर्भूत होने लगता है। आत्माके गुणोंको आच्छादित करनेवाला मोह ही सबसे प्रधान है, इसको दूर करनेके लिए एकमात्र रामबाण पंचपरमेष्ठीके स्वरूपका मनन, चिन्तन और स्मरण ही है । णमोकार मन्त्रके उच्चारण मात्रसे आत्मामें एक प्रकारकी विद्युत् उत्पन्न हो जाती है, जिससे सम्यक्त्वकी निर्मलताके साथ सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रकी भी वृद्धि होती है । क्योंकि इस महामन्त्रकी आराधना किसी अन्य परमात्मा या शक्ति-विशेषकी आराधना नहीं है, प्रत्युत अपनी आत्माकी ही उपासना है । ज्ञान, दर्शन मय अखण्ड चैतन्य आत्माके स्वरूपका अनुभव कर अपने अखण्ड साधक स्वभावकी उपलब्धिके लिए इस महामन्त्र-द्वारा ही प्रयत्न किया जाता है ।

णमोकार मन्त्र या इस मन्त्रके अंगभूत प्रभाव आदि बीजमन्त्रोंके ध्यानसे आत्मामें केवलज्ञानपर्यायको उत्पन्न किया जा सकता है । साधक बाह्य-जगत्से अपनी प्रवृत्तिको रोककर जब आत्ममय कर देता है, तो उक्त पर्यायकी प्राप्तिमें विलम्ब नहीं होता । णमोकार मन्त्रमें इतनी बड़ी शक्ति है जिससे यह मन्त्र श्रद्धापूर्वक साधना करनेवालोंको आत्मानुभूति उत्पन्न कर देता है तथा इस मन्त्रके साधकमें प्रथम गुण आ जाता है । अतः णमोकार मन्त्रके द्वारा सम्यक्त्व और केवलज्ञान पर्याये उत्पन्न हो सकती है । यद्यपि निश्चय नयकी अपेक्षा सम्यक्त्व और केवलज्ञान आत्मामें सर्वदा विद्यमान है; क्योंकि ये आत्माके स्वभाव हैं, इनमें परके अवलम्बनकी आवश्यकता नहीं । णमोकार मन्त्र आत्मासे पर नहीं है, यह आत्मस्वरूप है । अतएव निष्कामकी अपेक्षा यह महामन्त्र आत्मोत्थानके लिए आलम्बन नहीं है; किन्तु आत्मा ही स्वयं उपादान और निमित्त है यथा आत्माकी शुद्धिके लिए शुद्धात्माको अवलम्बन बनाया जाता है, इसका अर्थ है कि शुद्धात्माको देखकर उनके ध्यान-द्वारा अपनी अशुद्धताको दूर किया जाता है अर्थात् आत्मा स्वयं ही अपनी शुद्धिके लिए प्रयत्नशील होता है । णमोकार मन्त्र

भाव और द्रव्य रूपसे आत्मामें इतनी शुद्धि उत्पन्न करता है जिससे श्रद्धागुणके साथ श्रावक गुण भी उत्पन्न हो जाता है। यद्यपि यह आनन्द आत्माके भीतर ही वर्तमान है, कहीं बाहरसे प्राप्त नहीं किया जाता है, किन्तु णमोकार मन्त्रके निमित्तके मिलते ही उद्बुद्ध हो जाता है। चरित्र और वीर्य आदि गुण भी इस महामन्त्रके निमित्तसे उपलब्ध किये जा सकते हैं। अतएव आत्माके प्रधान कार्य रत्नत्रय या उत्तम क्षमादि पक्ष धर्मकी उपलब्धिमें यह मन्त्र परम सहायक है।

मुनिका आचार और णमोकार मन्त्र

मुनि पंच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रियजय, षट् आवश्यक, स्नानत्याग, दन्तधावनका त्याग, पृथ्वीपर शयन, खडे होकर भोजन लेना, दिनमें एक बार शुद्ध निर्दोष आहार लेना, नग्न रहना, और केशलुंच करना इन अट्ठाईस मूल गुणोंका पालन करते हैं। ये मध्य रात्रिमें चार घड़ी निद्रा लेते है, पश्चात् स्वाध्याय करते है। दो घड़ी रात शेष रह जानेपर स्वाध्याय समाप्त कर प्रतिक्रमण करते हैं। तीनों सन्ध्याओंमें जिनदेवकी वन्दना तथा उनके पवित्र गुणोंका स्मरण करते है। कायोत्सर्ग करते समय हृदयकमलमे प्राणवायुके साथ मनका नियमन करके "णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं" मन्त्रका प्राणायामकी विधिसे नौ बार जप करते हैं। कायोत्सर्गके पश्चात् स्तुति, वन्दना आदि क्रियाएं करते है। इन क्रियाओंमें भी णमोकार मन्त्रके ध्यानकी उन्हे आवश्यकता होती है। दैवसिक प्रतिक्रमणके अन्तमें मुनि कहता है – "पञ्चमहाव्रत-पञ्चसमिति-पञ्चेन्द्रियरोध-लोचषडावश्यकक्रिया-अष्टाविंशति-मूलगुणाः उत्तमक्षमामार्दवार्जव-शौच-सत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणि दशलाक्षणिको धर्मः, अष्टादशशीलसहस्राणि, चतुरशीतिलक्षगुणाः, त्रयोदशविधं चारित्रं, द्वादशविधं तपश्चेति सकलं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुसाक्षिकं सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं समारूढं ते मे भवतु।

अथ सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं दैवसिक-प्रतिक्रमणक्रियायां कृतदोषनिराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतम् आलोचनासिद्ध-भक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं –इति प्रतिज्ञाप्य णमो अरिहंताणं इत्यादि सामायिक-दण्डकं पठित्वा कायोत्सर्गं कुर्यात्।"

इस उद्धरणसे स्पष्ट है कि मुनिराज सर्व अतिचारकी शुद्धिके लिए दैवसिक

प्रतिक्रमण करते है, उस समय सकल कर्मोके विनाशके लिए भावपूजा, वन्दना और स्तवन करते हुए कायोत्सर्ग क्रिया करते है तथा इस क्रियामें णमोकार मन्त्रका उच्चारण करना परमावश्यक होता है। नैशिक प्रतिक्रमणके समय भी "सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं नैशिकप्रतिक्रमणक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण भावपूजा-वन्दनास्तवसमेतं प्रतिक्रमणभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्" पढ़कर णमोकार मन्त्ररूप दण्डकको पढ़कर कायोत्सर्गकी क्रिया सम्पन्न करता है। पाक्षिक प्रति-क्रमणके समय तो अढाई द्वीप, पन्द्रह कर्मभूमियोंमें जितने अरिहन्त, केवलीजिन, तीर्थंकर, सिद्ध, धर्माचार्य, धर्मोपदेशक, धर्मनायक, उपाध्याय, साधुकी भक्ति करते हुए इस मन्त्रके २७ श्वासोच्छ्वासोंमें ९ जाप करने चाहिए। प्रतिक्रमण दण्डक आरम्भमें ही "णमो अरिहंताणं" आदि णमोकार मन्त्रके साथ "णमो जिणाणं, णमो ओहिजिणाणं, णमो परमोहिजिणाणं, णमो सव्वोहिजिणाणं, णमो अणंतोहि-जिणाणं, णमो मोट्ठबुद्धीणं, णमो बीजबुद्धीणं, णमो पादाणुसारीणं, णमो संभिण्णसोदाराणं, णमो सयंबुद्धाणं, णमो पत्तेयबुद्धाण, णमो बोहियबुद्धाणं" आदि जिनेन्द्रोको नमस्कार करते हुए प्रतिक्रमणके मध्यमे अनेक बार णमोकार मन्त्रका ध्यान किया गया है। प्रत्येक महाव्रतकी भावनाको दृढ़ करनेके लिए भी णमोकार मन्त्रका जाप करना आवश्यक समझा जाता है। अतः "प्रथमं महाव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु" कहकर "णमो अरिहताणं णमो सिद्धाणं" आदि मन्त्रका २७ श्वासोच्छ्वासोंमे नौ बार जाप किया जाता है। प्रत्येक महाव्रतकी भावनाके पश्चात् यह क्रिया करनी पडती है। अतिक्रमणमे आगे बढनेपर "अइचारं पड्किमामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं वोस्सरामि जाव अरहंताणं भयवंताणं णमोक्कारं करेमि पज्जुवासं करेमि ताव कायं पावकम्मं दुच्चरिणं वोस्सरामि। णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाण णमो लोए सव्वसाहूणं" रूपसे कायोत्सर्ग करता है। वार्षिक प्रतिक्रमण क्रियामे तो णमोकार मन्त्रके जापकी अनेक बार आवश्यकता होती है। मुनिराजकी कोई भी प्रतिक्रमणक्रिया इस णमोकारमन्त्रके स्मरणके बिना सम्भव नहीं है। २७ श्वासोच्छ्वासोंमे इस महामन्त्रका ९ बार उच्चारण किया जाता है।

इसी प्रकार प्रातःकालीन देववन्दनाके अनन्तर मुनिराज सिद्ध, शास्त्र, तीर्थं-

कर, निर्वाण, चैत्य और आचार्य आदि भक्तियोंका पाठ करते हैं। प्रत्येक भक्तिके अन्तमें दण्डक—णमोकार मन्त्रका नौ बार जाप करते हैं। यह भक्तिपाठ ४८ मिनिट तक प्रातःकालमें किया जाता है। पश्चात् स्वाध्याय आरम्भ करते हैं। मुनिराज शास्त्र पढ़नेके पूर्व नौ बार णमोकार मन्त्र तथा शास्त्र समाप्त करनेके पश्चात् नौ बार णमोकार मन्त्रका ध्यान करते हैं। इतना ही नहीं, गमन करने, बैठने, आहार करने, शुद्धि करने, उपदेश देने, शयन करने आदि समस्त क्रियाओंके आरम्भ करनेके पूर्व और समस्त क्रियाओंकी समाप्तिके पश्चात् नौ बार णमोकार मन्त्रका जाप करना परम आवश्यक माना गया है। षट् आवश्यकोंके पालनेमें तो पद-पदपर इस महामन्त्रकी आवश्यकता है। मुनिधर्मकी ऐसी एक भी क्रिया नहीं है, जो इस महामन्त्रके जाप बिना सम्पन्न की जा सके। जितनी भी सामान्य या विशेष क्रियाएँ है, वे सब इस महामन्त्रकी आराधनापूर्वक ही सम्पन्न की जाती हैं। द्रव्यलिंगी मुनिको भी इन क्रियाओंकी समाप्ति इस मन्त्रके ध्यानके साथ ही सम्पन्न करनी होती है। किन्तु भावलिंगी मुनि अपनी भावनाओंको निर्मल करता हुआ इस मन्त्रकी आराधना करता है तथा सामायिक कालमे इस मन्त्रका ध्यान करता हुआ अपने कर्मोंकी निर्जरा करता है। पूज्यपाद स्वामीने पंचगुरु भक्तिमे बताया है कि मुनिराज भक्तिपाठ करते णमोकार मन्त्रका आदर्श सामने रखते है, जिससे उन्हें परम शान्ति मिलती है। मन एकाग्र होता है और आत्मा धर्ममय हो जाती है। बतलाया गया है—

> जिनसिद्धसूरिदेशकसाधुवरानमलगुणगणोपान्।
> पञ्चनमस्कारपदैस्त्रिसन्ध्यमभिनौमि मोक्षलाभाय ॥६॥
> अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायाः सर्वसाधवः।
> कुर्वन्तु मङ्गलाः सर्वे निर्वाणपरमश्रियम् ॥८॥
> पान्तु श्रीपादपद्मानि पञ्चानां परमेष्ठिनाम्।
> ललितानि सुराधीशचूडामणिमरीचिभिः ॥१०॥
> असहा सिद्धाइरिया उवज्झाया साहु पंचपरमेट्ठी।
> एयाण णमुक्कारा भवे भवे मम सुहं दिंतु ॥

अर्थात्—निर्मल पवित्र गुणोंसे युक्त अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुको मै मोक्ष-प्राप्तिके लिए तीनों सन्ध्याओमें नमस्कार करता हूँ।

अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पंचपरमेष्ठी हमारा मंगल करें, निर्वाण पदकी प्राप्ति हो। पंचपरमेष्ठियोंके वे चरणकमल रक्षा करें, जो इन्द्रके नमस्कार करनेके कारण मुकुट मणियोंसे निरन्तर उद्भासित होते रहते हैं। पंचपरमेष्ठीको नमस्कार करनेसे भव-भवमें सुखकी प्राप्ति होती है। जन्म-जन्मान्तरका संचित पाप नष्ट हो जाता है और आत्मा निर्मल निकल आता है। अतः मुनिराज अपनी प्रत्येक क्रियाके आरम्भ और अन्तमें इस महामन्त्रका स्मरण करते हैं।

प्रवचनसारमें कुन्दकुन्द स्वामीने बताया है कि जो अरिहन्तके आत्माको ठीक तरहसे समझ लेता है, वह निज आत्माको भी द्रव्य-गुण पर्यायसे युक्त अवगत कर सकता है। णमोकार मन्त्रकी आराधना स्थिर संचित पापको भस्म करनेवाली है। इस मन्त्रके ध्यानसे अरिहन्त और सिद्धकी आत्माका ध्यान किया जाता है, आत्मा कर्मकलंकसे रहित निज स्वरूपको अवगत करने लगता है। कहा गया है—

> जो जाणदि अरिहंत दव्वत्त गुणत्त पज्जयत्तेहिं।
> सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादु तस्स लयं ॥८०॥
>
> —अ० १

"यो हि नामार्हन्तं द्रव्यत्वगुणत्वपर्यायत्वैः परिच्छिनत्ति स खल्वात्मानं परिच्छिनत्ति, उभयोरादिनिश्चयेनाविशेषात्। अर्हतोऽपि पाककाष्ठागतकार्तस्वरस्येव परिस्पष्टमात्मरूपं ततस्तत्परिच्छेदे सर्वात्मपरिच्छेदः। तत्रान्वयो द्रव्यं, अन्वयं विशेषणं गुणः, अन्वयव्यतिरेकाः पर्यायाः।" अर्थात् जो अरिहन्तको द्रव्य, गुण और पर्याय रूपसे जानता है, वह अपने आत्माको जानता है, और उसका मोह नष्ट हो जाता है। क्योंकि जो अरिहन्तका स्वरूप है, वही स्वभाव दृष्टिसे आत्माका भी यथार्थ स्वरूप है। अतएव मुनिराज सर्वदा इस महामन्त्रके स्मरण-द्वारा अपने आत्मामें पवित्रता लाते हैं।

समाधिकी प्राप्तिके लिए प्रयत्नवाले साधक मुनि तो इसी महामन्त्रको आराधना करते हैं। अतः मुनिके आचारके साथ इस महामन्त्रका विशेष सम्बन्ध है। जब मुनिदीक्षा ग्रहण की जाती है, उस समय इसी महामन्त्रके अनुष्ठान-द्वारा दीक्षाविधि सम्पन्न की जाती है।

श्रावकाचारकी प्रत्येक क्रियाके साथ इस महामन्त्रका घनिष्ठ सम्बन्ध है। धार्मिक एवं लौकिक सभी कृत्योंके प्रारम्भमें श्रावक इस महामन्त्रका स्मरण करता है। श्रावककी दिनचर्याका वर्णन करते हुए बताया गया है कि प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्तमें शय्या त्याग करनेके अनन्तर णमोकार मन्त्रका स्मरण कर अपने कर्तव्यका विचार करना चाहिए। जो श्रावक प्रातःकालीन नित्य क्रियाओंके अनन्तर देवपूजा, गुरुभक्ति, स्वाध्याय, संयम, तप और दान इन षट्कर्मोंको सम्पन्न करता है, विधिपूर्वक अहिंसात्मक ढंगसे अपनी आजीविका अर्जन कर आसक्ति-रहित हो अपने कार्योंको सम्पन्न करता है, वह धन्य है। श्रावकके इन षट्कर्मोंमें णमोकार महामन्त्र पूर्णतया व्याप्त है। देवपूजाके प्रारम्भमें भी णमोकारमन्त्र पढ़कर "ॐ ह्रीं अनादि मूलमन्त्रेभ्यो नमः पुष्पाञ्जलिम्" कहकर पुष्पांजलि अर्पित किया जाता है। पूजन के बीच-बीचमें भी णमोकार महामन्त्र आता है। यह बार-बार व्यक्तिको आत्मस्वरूपका बोध कराता है तथा आत्मिक गुणोंकी चर्चा करनेके लिए प्रेरित करता है।

श्रावकाचार और णमोकार महामन्त्र

गुरुभक्तिमे भी णमोकार महामन्त्रका उच्चारण करना आवश्यक है। गुरु-पूजाके आरम्भमे भी णमोकार मन्त्रको पढ़कर पुष्प चढ़ाये जाते हैं। पश्चात् जल, चन्दन आदि द्रव्योंसे पूजा की जाती है। यों तो णमोकार मन्त्रमें प्रतिपादित आत्मा ही गुरु हो सकते है। अतः गुरु अर्पण रूप भी यही मन्त्र है। स्वाध्याय करनेमें तो णमोकार मन्त्रके स्वरूपका ही मनन किया जाता है। श्रावक इस महामन्त्रके अर्थको अवगत करनेके लिए द्वादशांग जिनवाणीका अध्ययन करता है। यद्यपि यह महामन्त्र समस्त द्वादशांगका सार है, अथवा द्वादशांग रूप ही है। संसारकी समस्त बाधाओंको दूर करनेवाला है। शास्त्र प्रवचन आरम्भ करनेके पूर्व जो मंगलाचरण पढ़ा जाता है, उसमे णमोकार मन्त्र व्याप्त है। कर्तव्यमार्गका परिज्ञान करानेके लिए इसके सामने कोई भी अन्य साधन नहीं हो सकता है। जीवनके अज्ञानभाव और अनात्मिक विश्वास इस मन्त्रके स्वाध्याय-द्वारा दूर हो जाते है। लोकैषणा, पुत्रैषणा और वित्तैषणाएँ इस महामन्त्रके प्रभावसे नष्ट हो जाती है। तथा आत्माके विकार नष्ट होकर आत्मा शुद्ध निकल आता है। स्वाध्यायके साथ तो इस महामन्त्रका सम्बन्ध वर्णनातीत है। अतः गुरुभक्ति और

स्वाध्याय इन दोनों आवश्यक कर्तव्योंके साथ इस महामन्त्रका अपूर्व सम्बन्ध है। श्रावकको ये क्रियाएँ इन मन्त्रके सहयोगके बिना सम्भव हो नहीं हैं। ज्ञान, विवेक और आत्मजागरणकी उपलब्धिके लिए णमोकार मन्त्रके भावध्यानको आवश्यकता है।

इच्छाओं, वासनाओं और कषायोंपर नियन्त्रण करना संयम है। शक्तिके अनुसार सर्वदा संयमका धारण करना प्रत्येक श्रावकके लिए आवश्यक है। पंचेन्द्रियोंका जय, मन-वचन-कायकी अशुभ प्रवृत्तिका त्याग तथा प्राणीमात्रकी रक्षा करना प्रत्येक व्यक्तिके लिए आवश्यक है। यह संयम ही कल्याणका मार्ग है। संयमके दो भेद हैं – प्राणीसंयम और शक्तिसंयम। अन्य प्राणियोंको किंचित् भी दुःख नही देना, समस्त प्राणियोके साथ भ्रातृत्व भावनाका निर्वाह करना और अपने समान सभीको सुख-आनन्द भोगनेका अधिकारी समझना प्राणीसंयम है। इन्द्रियोंको जीतना तथा उनकी उद्दाम प्रवृत्तिको रोकना इन्द्रिय-संयम है। णमोकार मन्त्रकी आराधनाके बिना श्रावक संयमका पालन नही कर सकता है, क्योंकि इसी मन्त्रका पवित्र स्मरण संयमकी ओर जीवको झुकाता हैं। 'इच्छाओं-का निरोध करना तप है; णमोकार महामन्त्रका मनन, ध्यान और उच्चारण इच्छाओंको रोकता है। व्यर्थकी अनावश्यक इच्छाएँ, जो व्यक्तिको दिन-रात परेशान करती रहती हैं, इस महामन्त्रके कारणसे रुक जाती है, इच्छाओंपर नियन्त्रण हो जाता है तथा सारे अनर्थोकी जड़ चित्तकी चंचलता और उसका सतत संस्कार युक्त रहना, इस महामन्त्रके ध्यानसे रुक जाता है। अहंकारवेष्टित बुद्धिके ऊपर अधिकार प्राप्त करनेमें इससे बढ़कर अन्य कोई साधन नही है। अतएव संयम और तपकी सिद्धि इस मन्त्रकी आराधना-द्वारा ही सम्भव है।

दान देना गृहस्थका नित्य प्रतिका कर्तव्य है। दान देनेके प्रारम्भमें भी णमोकार मन्त्रका स्मरण किया जाता है। इस मन्त्रका उच्चारण किये बिना कोई भी श्रावक दानकी क्रिया सम्पन्न कर ही नही सकता है। दान देनेका ध्येय भी त्यागवृत्ति-द्वारा अपनी आत्माको निर्मल करना और मोहको दूर करना है। इस मन्त्रकी आराधना-द्वारा राग-मोह दूर होते है और आत्मामें रत्नत्रयका विकास होता है। अतएव दैनिक षट्कर्मोमें णमोकार मन्त्र अधिक सहायक है।

श्रावककी दैनिक क्रियाओंका दर्शन करते हुए बताया गया है कि प्रातःकाल

नित्यक्रियाओंसे निवृत्त होकर जिनमन्दिरमें जाकर भगवान्‌के सामने णमोकार मन्त्रका स्मरण करना चाहिए। दर्शन-स्तोत्रादि पढ़नेके अनन्तर ईर्यापथशुद्धि करना आवश्यक है। इसके पश्चात् प्रतिक्रमण करते हुए कहना चाहिए कि 'हे प्रभो ! मैंने चलनेमे जो कुछ जीवोंकी हिंसा की हो, उसके लिए मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। मन, वचन, कायको वशमे न रखनेसे, बहुत चलनेसे, इधर-उधर फिरनेसे, आने-जानेसे, द्वीन्द्रियादिक प्राणियों एवं हरित कायपर पैर रखनेसे, मल-मूत्र, थूक आदिका उत्क्षेपण करनेसे, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय या पचेन्द्रिय अपने स्थानपर रोके गये हों, तो मैं उसका प्रायश्चित्त करता हूँ। उन दोषोंकी शुद्धिके लिए अरहन्तोंको नमस्कार करता हूँ और ऐसे पापकर्म तथा दुष्टाचारका त्याग करता हूँ।' "**णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं**" इस मन्त्रका नौ बार जाप कर प्रायश्चित्त विधिपूर्वक किया जाता है। प्रायश्चित्तविधिमें इस मन्त्रकी उपयोगिता अत्यधिक है। इसके बिना यह विधि सम्पन्न नहीं की जाती है। २७ श्वासोच्छ्वासमे ९ बार इसे पढ़ा जाता है।

आलोचनाके समय सोचे कि पूर्व, उत्तर, दक्षिण और पश्चिम चारों दिशाओं और ईशान आदि विदिशाओंमें इधर-उधर घूमने या ऊपरकी ओर मुँह कर चलनेमे प्रमादवश एकेन्द्रियादि जीवोंकी हिंसा की हो, करायी हो, अनुमति दी हो, वे सब पाप मेरे मिथ्या हों। मैं दुष्कर्मोकी शान्तिके लिए पंचपरमेष्ठीको नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार मनमें सोचकर अथवा वचनोंसे उच्चारण कर नौ बार णमोकार मन्त्रका पाठ करना चाहिए।

सन्ध्या-वन्दनके समय – "ॐ **ह्रीं क्ष्वीं क्ष्वीं वं मं हं सं तं पं द्रां द्रीं हं सः स्वाहा।**" इस मन्त्र-द्वारा द्वादशांगोंका स्पर्श कर प्राणायाम करना चाहिए। प्राणायाममे दायें हाथकी पाँचों अँगुलियोंसे नाक पकड़कर अँगूठेसे दायें छिद्रको दबाकर बायें छिद्रसे वायुको खींचे। खींचते समय '**णमो अरिहंताणं**' और '**णमो सिद्धाणं**' इन दोनों पदोंका जाप करे। पूरी वायु खींच लेनेपर अँगुलियोंसे बायें छिद्रको दबाकर वायुको रोक ले। इस समय '**णमो आइरियाणं**' और **णमो उवज्झायाणं**' इन पदोंका जाप करे। अन्तमें अँगूठेको ढीला कर धीरे-धीरे दाहिने छिद्रसे वायुको निकालना चाहिए तथा '**णमो लोए सव्वसाहूणं**' पदका

जाप करना चाहिए। इस तरह सन्ध्या-वन्दनके अन्तमे नौ बार णमोकारमन्त्र पढकर चारों दिशाओंको नमस्कार कर विधि समाप्त करना चाहिए। हरिवंशपुराण-मे बताया गया है कि णमोकार मन्त्र और चतुरुत्तममंगल श्रावककी प्रत्येक क्रिया-के साथ सम्बद्ध है, श्रावककी कोई भी क्रिया इस मन्त्रके बिना सम्पन्न नही की जाती है। दैनिक पूजन आरम्भ करनेके पहले ही सर्वपाप और विघ्नका नाशक होनेके कारण इसका स्मरण कर पुष्पाजलि क्षेपण की जाती है। श्रावक स्वस्ति-वाचन करता हुआ इस महामन्त्रका पाठ करता है। बताया गया है—

पुण्यपञ्चनमस्कारपदपाठपवित्रितौ।
चतुरुत्तममाङ्गल्यशरणप्रतिपादिनौ॥

आचार्यकल्प श्री पं० आशाधरजीने भी श्रावकोकी क्रियाओंके प्रारम्भमें णमोकार महामन्त्रके पाठका प्राधान्य दिया हैं। पूज्यपाद स्वामीने देशभक्तिमे तथा उस ग्रन्थके टीकाकार प्रभाचन्द्रने इस महामन्त्र को दण्डक कहा है। इसे दण्डक कहे जानेका अभिप्राय ही यह है कि श्रावककी समस्त क्रियाओंमें इसका उपयोग किया जाता है। श्रावककी एक भी क्रिया इस महामन्त्रके बिना सम्पन्न नही की जा सकती है।

षोडशकारण संस्कारोंके अवसरपर इस मन्त्रका उच्चारण किया जाता है। ऐसा कोई भी मांगलिक कार्य नही, जिसके आरम्भमे इसका उपयोग न किया जाये। मृत्युके समय भी महामन्त्रका स्मरण आत्माके लिए अत्यन्त कल्याणकारक बताया है। जैनाचार्योंने बतलाया है कि जीवन-भर धर्म साधना करनेपर भी कोई व्यक्ति अन्तिम समयमे आत्मसाधन – णमोकार मन्त्रकी आराधना-द्वारा निजको पवित्र करना भूल जाये, तो वह उसी प्रकार माना जायेगा, जिस प्रकार निरन्तर अस्त्र-शस्त्रोंका अभ्यास करनेवाला व्यक्ति युद्धके समय शस्त्र-प्रयोग करना भूल जाये। अतएव अन्तिम समयमे अनाद्यनिधन इस महामन्त्रका जाप करके अपनी आत्माको अवश्य पवित्र करना चाहिए। कहा गया है –

जिणवयणमोसहमिणं विसयसुहविरेयणं अमिदभूदं।
जरमरणवाहिवेयण-खयकरणं सव्वदुक्खाणं॥—मूलाचार

अर्थात् जिनेन्द्र भगवान्की वचनरूपी ओषधि इन्द्रिय-जनित विषय-सुखोंका विरेचन करनेवाली है, – मूलाचार अमृत स्वरूप है और जरा, मरण, व्याधि,

वेदना आदि सब दुःखोंका नाश करनेवाली है। इस प्रकार जो पंचपरमेष्ठीके स्वरूप-का स्मरण करनेवाले णमोकार मन्त्रका ध्यान करता है, वह निश्चयतः सल्लेखना-व्रतको धारण करता है। श्रावकको संसारके नाश करनेमे समर्थ इस महामन्त्रकी आराधना अवश्य करनी चाहिए। अमितगति आचार्यने कहा है –

सप्तविंशतिरुच्छ्वासाः संसारोन्मूलनक्षमे।
सन्ति पञ्चनमस्कारे नवधा चिन्तिते सति।

इस प्रकार श्रावक अन्तिम समयमें णमोकार मन्त्रकी साधना कर उत्तम गतिकी प्राप्ति करता है और जन्म-जन्मान्तरके पापोंका विनाश करता है। अन्तिम समयमें ध्यान किया गया मन्त्र अत्यन्त कल्याणकारी होता है।

व्रतविधान और णमोकार मन्त्र

व्रतोंका पालन आत्मकल्याण और जीवन संस्कारके लिए होता है। व्रतोंकी विधिका वर्णन कई श्रावकाचारोंमें आया है। कर्मोंकी असंख्यातगुणी निर्जरा करनेके लिए श्रावक व्रतोपवास करता है, जिससे उनकी आत्माके विकार शान्त होते हैं और त्यागकी महत्ता जीवनमें आती है। सप्तव्यसनके त्यागके साथ, आठ मूलगुण, बारह व्रत और अन्तिम समयमें सल्लेखना धारण कर विशेष उपवासोंके द्वारा श्रावक अपनी आत्माको शुद्ध करनेका आभास करता है। व्रत प्रधान रूपसे नौ प्रकारके होते है – सावधि, निरवधि, दैवसिक, नैशिक, मासावधिक, वार्षिक, काम्य, अकाम्य और उत्तमार्थ। सावधि व्रत दो प्रकारके है – तिथिकी अवधिसे किये जानेवाले और दिनोंकी अवधिसे किये जानेवाले। तिथिकी अवधिसे किये जाने-वाले सुखचिन्तामणि, पंचविंशतिभावना, द्वात्रिंशद्भावना, सम्यक्त्वपंचविंशतिभावना और णमोकारपंचत्रिंशद्भावना आदि है। दिनोंकी अवधिसे किये जानेवाले व्रतोंमें दुःखहरणव्रत, धर्मचक्रव्रत, जिनगुणसम्पत्ति, सुखसम्पत्ति, शीलकल्याणक, श्रुति-कल्याणक और चक्रकल्याणक आदि है। निरवधिमें कवलचन्द्रायण, तपोंजलि, जिनमुखावलोकन, मुक्तावली, द्विकावली और एकावली आदि हैं। दैवसिक व्रतोंमें दशलक्षण, पुष्पांजलि, रत्नत्रय आदि हैं। आकाशपंचमी नैशिक व्रत है। षोडश-कारण, मेघमाला आदि मासिक हैं। जो व्रत किसी कामनाको पूर्तिके लिए किये जाते है, वे काम्य और जो निष्कामरूपसे किये जाते हैं, वे निष्काम कहलाते हैं। काम्य व्रतोंमें संकटहरण, दुःखहरण, धनदकलश आदि व्रतोंकी गणना की जाती

है। उत्तम व्रतोंमें कर्मचूर, कर्मनिर्जरा, महासर्वतोभद्र आदि हैं। अकाम्य व्रतोंमें मेरुपंक्ति आदिकी गणना है। इन समस्त व्रतोंके विधानमें जाप्य मन्त्रोंकी आवश्यकता होती है। यों तो णमोकार मन्त्रके नामपर णमोकारपंचत्रिशद्भावना व्रत भी है। इस व्रतका वर्णन करते हुए बताया गया है कि इस व्रतका पालन करनेसे अनेक प्रकारके ऐश्वर्योंके साथ मोक्ष-सुख प्राप्त होता है। कहा गया है –

अपराजित है मन्त्र णमोकार, अक्षर तहं पैंतीस विचार।
कर उपवास वरण परिमाण, सोहं सात करो बुधिमान॥
पुनि चौदा चौदशिवत साँच, पाँचें तिथि के प्रोषध पाँच।
नवमी नव करिये भवि सात, सब प्रोषध पैंतीस गणात॥
पैंतीसी णवकार जु येह, जाप्यमन्त्र नवकार जयेह।
मन वच तन नरनारी करे, सुरनर सुख लह शिवतिय वरे॥

अर्थात् – यह णमोकारपैंतीसीव्रत एक वर्ष छह महीनेमें समाप्त होता है। इस डेढ़ वर्षकी अवधिमें केवल ३५ दिन व्रतके होते है। व्रतारम्भ करनेकी यह विधि है – [१] प्रथम आषाढ़ शुक्ला सप्तमीका उपवास करे, फिर श्रावण महीनेकी दोनों सप्तमी, भाद्रपद महीनेकी दोनों सप्तमी और आश्विन महीनेकी दोनों सप्तमी इस प्रकार कुल सात सप्तमियोंके उपवास करे। [२] पश्चात् कार्तिक कृष्ण पंचमीसे पौष कृष्ण पंचमी तक अर्थात् कुल पाँच पंचमियोंके उपवास करे। [३] तदनन्तर पौष कृष्ण चतुर्दशीसे चैत कृष्ण चतुर्दशी तक सात चतुर्दशियोंके सात उपवास करे। [४] अनन्तर चैत्र शुक्ला चतुर्दशीसे आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी तक सात चतुर्दशियोंके सात उपवास करे। [५] तत्पश्चात् श्रावण कृष्ण नवमीसे अगहन कृष्ण नवमी तक नौ नवमियोंके नौ उपवास करे। इस प्रकार कुल ३५ अक्षरोंके पैंतीस उपवास किये जाते है। णमोकार मन्त्रके प्रथम पदमे ७ अक्षर, द्वितीयमे ५, तृतीयमें ७, चतुर्थमे ७ और पंचममे ९ है; अतः उपवासोंका क्रम भी ऊपर इसीके अनुसार रखा गया है। उपवासके दिन व्रत करते हुए भगवान्का अभिषेक करनेके उपरान्त णमोकार मन्त्रका पूजन तथा त्रिकाल इस मन्त्रका जाप किया जाता है। व्रतके पूर्ण हो जानेपर उद्यापन कर देना चाहिए। इस व्रतका पालन गोपाल नामक ग्वालने किया था, जो चम्पानगरीमें तद्भवमोक्ष-

गामी सुदर्शन हुआ। वर्धमान पुराणमें णमोकार व्रतको ७० दिनमें ही समाप्त कर देनेका विधान है।

णमोकार व्रत अब सुन राज, सत्तर दिन एकान्तर साज।

अर्थात् ७० दिनों तक लगातार एकाशन करे। प्रतिदिन भगवान्‌के अभिषेक-पूर्वक णमोकारमन्त्रका पूजन करे। त्रिकाल णमोकार मन्त्रका जाप करे। रात्रिमें पंचपरमेष्ठीके स्वरूपका चिन्तन करते हुए या इस महामन्त्रका ध्यान करते हुए अल्प निद्रा ले। जो व्यक्ति इस व्रतका पालन करता है, उसको आत्मामें महान् पुण्यका संचय होता है और समस्त पाप भस्म हो जाते हैं।

णमोकार मन्त्रका त्रिकाल जाप, त्रेपन क्रिया व्रत, लघुपल्यविधान, बृहत्पल्य-विधान, नक्षत्रमाला, सप्तकुम्भ, लघुसिंहनिष्क्रीडित, बृहत्सिंहनिष्क्रीडित, भाद्रवन-सिंहनिष्क्रीडित, त्रिगुणसार, सर्वतोभद्र, महासर्वतोभद्र, दुःखहरण, जिनपूजा-पुरन्दरव्रत, लघुधर्मचक्र, बृहद्धर्मचक्र, बृहद् जिनगुणसम्पत्ति, लघुजिनगुणसम्पत्ति, बृहत्सुखसम्पत्ति, मध्यमसुखसम्पत्ति, लघुसुखसम्पत्ति, रुद्रवसन्तव्रत, शीलकल्याणक-व्रत, श्रुतिकल्याणकव्रत, चन्द्रकल्याणकव्रत, लघुकल्याणकव्रत, बृहद्रत्नावलीव्रत, मध्यमरत्नावलीव्रत, लघुरत्नावलीव्रत, बृहद्मुक्तावलीव्रत, मध्यममुक्तावलीव्रत, लघुमुक्तावलीव्रत, एकावलीव्रत, लघुएकावलीव्रत, द्विकावलीव्रत, लघुद्विकावलीव्रत, लघुकनकावलीव्रत, बृहद्कनकावलीव्रत, लघुमृदङ्गमध्यव्रत, बृहद्मृदङ्गमध्यव्रत, मुरजमध्यव्रत, वज्रमध्यव्रत, अक्षयनिधिव्रत, मेघमालाव्रत, सुखकारणव्रत, आकाश-पंचमी, निर्दोषसप्तमी, चन्दनषष्ठी, श्रवणद्वादशी, श्वेतपंचमी, सर्वार्थसिद्धिव्रत, जिनमुखावलोकनव्रत, जिनरात्रिव्रत, नवनिधिव्रत, अशोकरोहिणीव्रत, कोकिला-पंचमीव्रत, रुक्मिणीव्रत, अनस्तमीव्रत, निर्जरपंचमीव्रत, कवलचन्द्रायणव्रत, बारह विजोराव्रत, ऐसोनव्रत, ऐसोदशव्रत, कजिकव्रत, कृष्णपंचमीव्रत, निःशल्यअष्टमी-व्रत, लक्षणपंक्तिव्रत, दुग्धरसीव्रत, धनदकलशव्रत, कलिचतुर्दशी, शीलसप्तमीव्रत, नन्दसप्तमीव्रत, ऋषिपंचमीव्रत, सुदर्शनव्रत, गन्धअष्टमीव्रत, शिवकुमारवेलाव्रत, मौनव्रत, बारहतपव्रत और परमेष्ठिगुणव्रतके विधानमें बतलाया गया है। अर्थात् उपर्युक्त व्रतोंको णमोकार मन्त्रके जाप-द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है। कुल २५-२६ व्रत ऐसे हैं, जिनमें णमोकार मन्त्रसे उत्पन्न मन्त्रोंके जापका विधान है। इस मन्त्रका व्रतसाधनाके लिए कितना महत्त्वपूर्ण स्थान है, यह उपर्युक्त व्रतोंकी

नामावलीसे ही स्पष्ट है। श्रावक व्रतोंके पालन द्वारा अनेक प्रकारके पुण्यका अर्जन करता है। बताया गया है कि –

अनेकपुण्यसंतानकारणं स्वर्निबन्धनम्।
पापघ्नं च क्रमादेतत् व्रतं मुक्तिवशीकरम्॥
यो विधत्ते व्रतं सारमेतत्सर्वसुखावहम्।
प्राप्य षोडशमं नाकं स गच्छेत् क्रमशः शिवम्॥

अर्थात्—व्रत अनेक पुण्यकी सन्तानका कारण है, संसारके समस्त पापोंको नाश करनेवाला है एवं मुक्ति-लक्ष्मीको वशमें करनेवाला है, जो महानुभाव सर्वसुखोत्पादक श्रेष्ठ व्रत धारण करते हैं, वे सोलहवें स्वर्गके सुखोंका अनुभव कर अनुक्रमसे अविनाशी मोक्षसुखको प्राप्त करते हैं। अतएव यह स्पष्ट है कि व्रतोंके सम्यक् पालन करनेके लिए णमोकार मन्त्रका ध्यान करना अत्यावश्यक है।

णमोकार मन्त्रके महत्त्व और फलको प्रकट करनेवाली अनेक कथाएँ जैन-साहित्यमें आयी हैं। दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायके धर्मकथा-साहित्यमें इस महामन्त्रका बड़ा भारी फल बतलाया गया है। पुण्यास्रव और आराधना कथा-कोषके अतिरिक्त अन्य पुराणोंमें भी इस महामन्त्रके महत्त्वको प्रकट करने-वाली कथाएँ हैं। एक बार जिसने भी भक्तिभावपूर्वक इस महामन्त्रका उच्चारण किया वही उन्नत हो गया। नीचसे नीच प्राणी भी इस महामन्त्रके प्रभावसे स्वर्ग और अपवर्गके सुख प्राप्त करता है। धर्मामृतकी पहली कथामें आया है कि वसुभूति

कथा-साहित्य और णमोकार मन्त्र

ब्राह्मणने लोभसे आकृष्ट होकर दिगम्बरमुनिव्रत धारण किये थे तथा दयामित्रके अष्टाह्निक पर्वको सम्पन्न करानेके लिए दक्षिणा प्राप्तिके लोभसे उसने केशलुंच एवं द्रव्यलिंगी साधुके अन्य व्रत धारण किये थे। दयामित्र जब जंगलमें आ रहा था तो एक दिन रातको जंगली लुटेरोंने दयामित्र सेठके साथवाले व्यापारियोंपर आक्रमण किया। दयामित्र वीरतापूर्वक लुटेरोंके साथ युद्ध करने लगा। उसने अपार बाण वर्षा की, जिससे लुटेरोंके पैर उखड गये और वे भागनेपर उतारू हो गये। युद्ध-समय वसुभूति दयामित्रके तम्बूमें सो रहा था। लुटेरोंका एक बाण आकर वसुभूतिको लगा और वह घायल होकर पीड़ासे तड़फड़ाने लगा। यद्यपि दयामित्रके उपदेशसे उसे सम्यक्त्वकी प्राप्ति हो चुकी थी, तो भी साधारण-सा

कष्ट उसे था। दयामित्रने उसे समझाया कि आत्माका कल्याण समाधिमरणके द्वारा ही सम्भव है, अतः उसे समाधिमरण धारण कर लेना चाहिए। सल्लेखनासे आत्मामें अहिंसाकी शक्ति उत्पन्न होती है, अहिंसक ही सच्चा वीर होता है। अतः मृत्युका भय त्याग कर णमोकार मन्त्रका चिन्तन करें। इस मन्त्रकी महिमा अद्भुत है। भक्तिभावपूर्वक इस मन्त्रका ध्यान करनेसे परिणाम स्थिर होते हैं तथा सभी प्रकारकी विघ्न-बाधाएँ टल जाती हैं। मनुष्यकी तो बात ही क्या, तिर्यंच भी इस महामन्त्रके प्रभावसे स्वर्गादि सुखोंको प्राप्त हुए हैं। हाँ, इस मन्त्रके प्रति अटूट श्रद्धा होनी चाहिए। श्रद्धाके द्वारा ही इसका वास्तविक फल प्राप्त होगा। यो तो इस मन्त्रके उच्चारण मात्रसे आत्मामें असंख्यातगुणी विशुद्धि उत्पन्न होती है।

दयामित्रके इस उपदेशको सुनकर वसुभूति स्थिर हो गया। उसने अपने परिणामोंको बाह्य पदार्थोंसे हटाकर आत्माकी ओर लगाया और णमोकार मन्त्रका ध्यान करने लगा। ध्यानावस्थामें ही उसने शरीरका त्याग किया, जिसके प्रभावसे सौधर्म स्वर्गके मणिप्रभा विमानमें मणिकुण्ड नामक देव हुआ। स्वर्गके दिव्य भोगोंको देखकर वसुभूतिके जीव मणिकुण्डको अत्यन्त आश्चर्य हुआ। तत्काल ही भवप्रत्यय अवधिज्ञानके उत्पन्न होते ही उसने अपने पूर्वभवकी सब घटना अवगत कर ली और णमोकार मन्त्रके दृढ श्रद्धानका फल समझ अपने उपकारी दयामित्रके दर्शन करनेको आया और उसकी भक्ति कर अपने स्थानको चला गया। वसुभूतिका जीव स्वर्गसे चय कर अभयकुमार नामक राजा श्रेणिकका पुत्र हुआ। इसने वयस्क होते ही दीक्षा ले ली और कठोर तपश्चरण कर समाधिके साथ शरीर त्याग किया, जिससे सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ। वहाँसे चय कर निर्वाण प्राप्त करेगा। णमोकार मन्त्रके दृढ श्रद्धान-द्वारा व्यक्ति सभी प्रकारके सुख प्राप्त कर सकता है। संसारका कोई भी कार्य उसके लिए दुर्लभ नही होता है।

इसी ग्रन्थकी दूसरी कथामें बताया गया है कि ललितांगदेव-जैसे व्यभिचारी, चोर, लम्पट, हिंसक व्यक्ति भी इस मन्त्रके प्रभावसे अपना कल्याण कर लिये है, तो अन्य व्यक्तियोंकी बात ही क्या ? यही ललितांगदेव आगे चलकर अंजनचोर नामसे प्रसिद्ध हुआ है, क्योंकि यह चोरकी कलामें इतना निपुण था कि लोगोंके देखते हुए उनके सामनेसे वस्तुओंका अपहरण कर लेता था। इसका प्रेम राजगृह

नगरीकी प्रधान वेश्या मणिकाचनासे था। वेश्याने ललितांगदेव उर्फ अंजनचोरसे कहा – "प्राणवल्लभ ! आज मैंने प्रजापाल महाराजकी कनकावती नामकी पट्टरानीके गलेमें ज्योति-प्रभानामक रत्नहार देखा है। वह बहुत ही सुन्दर है। मैं उस हारके बिना एक घडी भी नही रह सकती हूँ। अतः तत्काल मुझे उस हारको ला दीजिए।" ललितांगदेव उर्फ अंजनचोरने कहा – "प्रिये, वह बहुत बड़ी बात नही है, मै तुम्हारे लिए सब कुछ करनेको तैयार हूँ। पर अभी थोड़े दिन तक धैर्य रखिए। आज-कल शुक्लपक्ष है, मेरी विद्या कृष्णपक्षकी अष्टमीसे कार्य करती है, अतः दो-चार दिनकी बात है; हार तुम्हे लाकर जरूर दूँगा।"

वेश्याने स्त्रियोचित भावभंगी प्रदर्शित करते हुए कहा – "यदि आप इस छोटी-सी मेरी इच्छाको पूरा नही कर सकते, तो फिर और मेरा कौन-सा काम कीजिएगा। जब मैं मर जाऊँगी, तब उस हारसे क्या होगा।" अंजनचोरको वेश्याका ताना सह्य नही हुआ और आँखमे अंजन लगाकर हार चुरानेके लिए चल पड़ा। विद्याबलसे छिपकर ज्योतिप्रभा हारको उसने अपने हाथमें ले लिया। किन्तु ज्योतिप्रभा हारमें लगी हुई मणियोंका प्रकाश इतना तेज था, जिससे वह हार छिप न सका। चाँदनी रातमें उसकी विद्याका प्रभाव भी नष्ट हो गया, अतः पहरेदारोंने उसका पीछा किया। वह नगरकी चहारदीवारीको लाँघकर श्मशान भूमिकी ओर बढ़ा। वहाँपर एक वृक्षके नीचे दीपक जलते हुए देखकर वह उस पेड़के नीचे पहुँचा और ऊपरकी ओर देखने लगा। वहाँपर १०८ रस्सियोंका एक सींका लटक रहा था, उसके नीचे भाला, बरछा, तलवार, फरसा, मुद्‌गर, शूल, चक्र आदि ३२ प्रकारके अस्त्र गाड़े गये थे। एक व्यक्ति वहाँ पूजा कर णमोकार मन्त्र पढ़ता हुआ एक-एक रस्सी काटता जाता था। प्रत्येक रस्सीके काटनेके बाद वह भयातुर हो कभी नीचे उतरता और कभी साहस कर ऊपर चढ़ जाता; पुनः एक रस्सी काटकर नीचे आता। इस प्रकारकी उसकी स्थिति देखकर अंजनचोरने उससे पूछा – "तुम कौन हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? यह कौन-सा कार्य कर रहे हो ? तुम किस मन्त्रका जाप करते हो और क्यों ?"

वह बोला – "मेरा नाम वारिषेण है। मैं गगनगामी विद्याको सिद्ध कर रहा हूँ। मै पवित्र णमोकार मन्त्रका जाप कर इस विद्याको साधना चाहता हूँ। मुझे यह विधि और मन्त्र जिनदत्त श्रेष्ठिसे मिले है।" अंजनचोर उसकी बातोंको

सुनकर हँसने लगा और बोला – "तुम डरपोक हो, तुम्हें मन्त्रपर विश्वास नही है। अतः तुम्हे विद्या सिद्ध नहीं हो सकती है। इस प्रकार कहकर अंजनचोर सोचने लगा कि मुझे तो मरना ही है जैसे भी मरूँ। अतः जिनदत्त श्रेष्ठिके द्वारा प्रतिपादित इस मन्त्र और विधिपर विश्वास कर मरना ज्यादा अच्छा है, इससे स्वर्ग मिलेगा। जरा भी देर होती है तो पहरेदारोके साथ कोतवाल आयेगा और पकड़कर फाँसीपर चढ़ा देगा। इस प्रकार विचार कर उसने वारिषेणसे कहा – "भाई! तुम्हे विश्वास नहीं है, तो मुझे इस मन्त्रकी साधना करने दीजिए।" वारिषेण प्राणोके मोहमें पड़कर घबड़ा गया और उसने मन्त्र तथा उसकी विधि अंजनचोरको बतला दी। उसने दृढ़ श्रद्धानके साथ मन्त्रकी साधना की तथा १०८ रस्सियोंको काट दिया। अब वह नीचे गिरनेको ही था, कि इसी बीच आकाशगामिनी विद्या प्रकट हुई और उसने गिरते हुए अंजनचोरको ऊपर ही उठा लिया। विद्या-प्राप्तिके अनन्तर वह अपने उपकारी जिनदत्त सेठके दर्शन करनेके लिए सुमेरु पर्वतपर स्थित नन्दन और भद्रशालके चैत्यालयोंमें गया। यहाँपर वह भगवान्‌की पूजा कर रहा था। इस प्रकार अंजनचोरको आकाशगामिनी विद्याकी प्राप्तिके अनन्तर संसारसे विरक्ति हो गयी, अतः उसने देवर्षि नामक चारण ऋद्धिधारी मुनिके पास दीक्षा ग्रहण की और दुर्धर तप कर कर्मोंका नाश कर कैलास पर्वतपर मोक्ष प्राप्त किया। णमोकार महामन्त्रमे इतनी बड़ी शक्ति है कि इसकी साधनासे अंजनचोर-जैसे व्यसनी व्यक्ति भी तद्भवमे निर्वाण प्राप्त कर सकते है। इसी कथामें यह भी बतलाया गया है कि धन्वन्तरि और विश्वानुलोम-जैसे दुराचारी व्यक्ति णमोकार मन्त्रकी दृढ़ साधना-द्वारा कल्याणको प्राप्त हुए है।

धर्मामृतकी तीसरी कथामें अनन्तमतीके व्रतोंकी दृढ़ताका वर्णन करते हुए बताया गया है कि अनन्तमतीने अपने संकट दूर करनेके लिए कई बार इस महामन्त्रका ध्यान किया। इस मन्त्रके स्मरणसे उसका बड़ासे बड़ा कष्ट दूर हुआ है। जब वेश्याके यहाँ अनन्तमतीके ऊपर उपसर्ग आया था, उस समय उसके दूर होने तक उसने समाधिमरण ग्रहण कर लिया और अन्न-पानीका त्याग कर पंचपरमेष्ठीके ध्यानमे लीन हो गयी। णमोकार मन्त्रका आश्रय ही उसके प्राणोंका रक्षक था। जब वेश्याने देखा कि यह इस तरह माननेवाली नही है, तो उसने सोचा कि

इसके प्राण लेनेसे अच्छा है कि इसे राजाके हाथ बेंच दिया जाये। राजा इस अनुपम सुन्दरीको प्राप्त कर बहुत प्रसन्न होगा और मुझे अपार धन देगा, जिससे मेरे जन्म-जन्मान्तरके दारिद्र्य दूर हो जायेंगे। इस प्रकार विचार कर वह वेश्या अनन्तमतीको राजा सिंहव्रतके पास ले गयी और दरबारमें जाकर बोली – "देव, इस रमणीरत्नको आपकी सेवामें अर्पण करने आयी हूँ। यह अनाघ्रात कलिका आपके भोग करने योग्य है। दासीने इसे पानेके लिए अपार धन खर्च किया है।" राजा उस दिव्य सुन्दरीको देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उस वेश्याको विपुल धनराशि देकर बिदा किया।

सन्ध्या होते ही राजा अनन्तमतीसे बोला – "हे कमलमुखी! तुम्हारे रूपका जादू मुझपर चल गया है, मेरे समस्त अंगोपाग शिथिल हो रहे हैं, मेरा मन मेरे अधीन नही रहा है। मै अपना सर्वस्व तुम्हारे चरणोंमे अर्पित करता हूँ। आजसे यह राज्य तुम्हारा है। हम सब तुम्हारे हैं, अतः अब शीघ्र ही मनःकामना पूर्ण करो। हाय! इतना सौन्दर्य तो देवियोंमें भी नहीं होगा।"

अनन्तमती णमोकारमन्त्रका स्मरण करती हुई ध्यानमे लीन थी। उसे राजाकी बातोंका बिलकुल पता नहीं था। उसके मुखपर अद्भुत तेज था। सतीत्वकी किरणें निकल रही थीं। वह एक मात्र णमोकार मन्त्रकी आराधनामें डूबी हुई थी। कहा गया है **"सापि पञ्चनमस्कारं संस्मरन्ती सुखप्रदम्"** अर्थात् वह मौन होकर एकाग्रभावसे णमोकार मन्त्रकी साधनामें इतनी लीन हो गयी कि उसने राजाकी बातें ही नही सुनी। अब अनन्तमतीसे उत्तर न पाकर राजाका क्रोध उभडा और उसने अनन्तमतीको पीटना आरम्भ किया। अनन्तमतीके ऊपर होनेवाले इस प्रकारके अत्याचारोंको देखकर णमोकार मन्त्रके प्रभावसे उस नगरके शासनदेवका आसन हिला और उसने ज्ञानबलसे सारी घटनाएँ अवगत कर ली। वह अनन्तमतीके पास पहुँचा और अदृश्य होकर राजाको पीटने लगा। आश्चर्यकी बात यह थी कि मारनेवाला कोई नही दिखलाई पड़ता था, केवल मार ही दिखलाई पड़ती थी। कोडे लगनेके कारण युवराजके मुँहसे खून निकल रहा था। राजा-अमात्य सभी मूर्च्छित थे, फिर भी मार पड़ना बन्द नहीं हुआ था। हल्ला-गुल्ला और चीत्कार सुनकर दरबारके अनेक व्यक्ति एकत्र हो गये। रानियाँ आ गयी, पर युवराजकी रक्षा कोई नही कर सका। जब सब लोगोंने

मिलकर मारनेवालेकी स्तुति की तो शासनदेवने प्रत्यक्ष हो कहा – "आप लोग इसी सतीको प्रसन्न करें, मैं तो सतीका दास हूँ। यह कुमारी णमोकार मन्त्रके ध्यानमें इतनी लीन है कि मुझे इसकी सेवाके लिए आना पड़ा है। जो भगवान्‌की भक्तिमे निरन्तर लीन रहते हैं, उनकी आराधना और सेवा आबालवृद्ध सभी करते है। जो मोहवशमे आकर भक्तिका तिरस्कार करता है, वह अत्यन्त नीच है। जिसके पास धर्म रहता है उसके पास संसारकी सभी अलभ्य वस्तुएँ रहती है। व्रतविभूषित व्यक्ति यदि भगवान्‌के चरणोंकी भक्ति करता है, तो उसे संसारके सभी दुर्लभ पदार्थ अपने-आप प्राप्त हो जाते हैं। णमोकार मन्त्रका ध्यान समस्त अरिष्टोंको दूर करनेवाला है। जो विपत्तिमे इस मन्त्रका स्मरण करता है, उसके सभी कष्ट दूर हो जाते हैं। पंचपरमेष्ठीकी भक्ति और उनका स्मरण सभी प्रकारके सुखोंको प्रदान करता है। पश्चात् देवने कुमारीसे कहा – "हे अनन्तमती! तुम्हारा संकट दूर हुआ, नेत्रोन्मीलन करो। ये सब भक्त तुम्हारी चरण-धूलि लेनेके लिए आये है। जिस प्रकार अग्निका स्वभाव जलना, पानीका स्वभाव शीतल, वायुका स्वभाव बहना है; उसी प्रकार णमोकार मन्त्रकी आराधनाका फल समस्त उपसर्ग और कष्टोंका दूर होना है। अब इस राजकुमार-को आप क्षमा करें। ये सभी नगरनिवासी आपसे क्षमा-याचनाके लिए आये है।" इस प्रकार शासनदेवने अनन्तमतीके द्वारा राजकुमारको क्षमा प्रदान करायी। राजा, अमात्य तथा रानियोंने मिलकर अनन्तमतीकी पूजा की और हाथ जोड़कर वे कहने लगे – "धर्ममूर्त ! हमने बिना जाने बड़ा अपराध किया। हम लोगोंके समान संसारमे कौन पापी हो सकता है। अब आप हमें क्षमा करें, यह सारा राज्य और सारा वैभव आपके चरणोंमे अर्पित है। अनन्तमतीने कहा – "राजन्! धर्मसे बढ़कर कोई भी वस्तु हितकारी नही है। आप धर्ममें स्थिर हो जाइए। णमोकारमन्त्रका विज्ञान कीजिए। इसी मन्त्रके स्मरण, ध्यान और चिन्तनसे आपके समस्त पाप नष्ट हो जायेंगे। पंचपरमेष्ठी वाचक इस महामन्त्रका ध्यान सभी पापोंको भस्म करनेवाला है। पापीसे पापी व्यक्ति भी इस महामन्त्रके ध्यानसे सभी प्रकारके सुख प्राप्त करता है।" राजाने रानियों और अमात्यसहित णमोकार मन्त्रका ध्यान किया, जिससे उनकी आत्मामें विशुद्धि उत्पन्न हो गयी।

वहाँसे चलकर अनन्तमती जिनालयमें पहुँची और वहाँ आर्यिकाके पास

जाकर धर्म श्रवण किया। यहींपर उसके माता-पितासे मुलाकात हुई। पिताने अनन्तमतीको घर ले जाना चाहा, पर उसने घर जाना पसन्द नहीं किया और पितासे स्वीकृति लेकर वरदत्त मुनिराजकी शिष्या कमलश्री आर्यिकासे जिन-दीक्षा ले ली तथा निःकांक्षित हो व्रत पालन करने लगी। वह दिन-रात णमोकार मन्त्रके ध्यानमें लीन रहती थी तथा उग्र तपश्चरण करनेमें लीन थी। अन्तिम समयमें उसने समाधिमरण धारण किया; जिससे स्त्रीलिंगका छेद कर बारहवें स्वर्गमें १८ सागरको आयु प्राप्त कर देव हुई। इस प्रकार णमोकार मन्त्रकी साधनासे अनन्तमतीने अपने सांसारिक कष्टोंको दूर कर आत्म-कल्याण किया।

धर्मामृतकी चौथी कथामें बताया गया है कि नारायणदत्ता नामक सन्यासिनीके बहकावेमें आकर मालवनरेश चण्डप्रद्योतने रौरवपुर नरेश उद्दायनकी पत्नी प्रभावतीके रूप-सौन्दर्यका लोभी बनकर राजा उद्दायनकी अनुपस्थितिमें रौरवपुर-पर आक्रमण किया। उस समय रानी प्रभावतीके शीलकी रक्षा णमोकार मन्त्रकी आराधनासे ही हुई। प्रभावतीने अन्न-जलका त्याग कर इस मन्त्रका ध्यान किया। राजा चण्डप्रद्योतकी सेना जिस समय नगरमें उपद्रव कर रही थी, उसी समय आकाशमार्गसे अकृत्रिम चैत्यालयोंकी वन्दनाके लिए देव जा रहे थे। प्रभावतीके मन्त्र-स्मरणके प्रभावसे देवोंका विमान रौरवपुरके ऊपरसे नहीं जा सका। देवोंने अवधिज्ञानसे विमानके अटकनेका कारण अवगत किया तो उन्हें मालूम हुआ कि इस नगरमें घिरी सतीके ऊपर विपत्ति आयी है। सतीके ऊपर होनेवाले अत्याचारको अवगत कर एक सम्यग्दृष्टि देव उसकी रक्षाके लिए उद्यत हुआ। उसने अपनी शक्तिसे चण्डप्रद्योतकी सेनाको उड़ाकर उज्जयिनीमें पहुँचा दिया और नगरका सारा उपद्रव शान्त कर दिया।

रानी प्रभावतीकी परीक्षा करनेके लिए उस देवने चण्डप्रद्योतका रूप धारण किया और समस्त प्रजाको महानिद्रामें मग्न कर विक्रिया ऋद्धिके बलसे चतुरंग सेना तैयार की और गढ़को चारों ओरसे घेर लिया। नगरमें मायावी आग लगा दी, मार्ग और सडकोंपर कृत्रिम रक्तकी धार बहने लगी, सर्वत्र भय व्याप्त कर दिया और प्रभावती देवीके पास आकर बोला – "मैंने तुम्हारी सेनाको मार डाला है। अब आप पूरी तरहसे मेरे अधीन हैं; अतः आँखे खोलकर मेरी ओर देखिए। आपके पति उद्दायन राजाको भी पकड़कर कैद कर लिया है। अब मेरा

सामना करनेवाला कोई नहीं है। आप मेरे साथ चलिए और पटरानी बनकर संसारका आनन्द लीजिए। आपको किसी प्रकारका कष्ट नहीं होने दूँगा।"

रानी राजा चण्डप्रद्योतके रूपधारी देवके वचनोंको सुनकर णमोकार मन्त्रके ध्यानमें और भी लीन हो गयी और स्थिरतापूर्वक जिनेन्द्र प्रभुके गुणोंका चिन्तन करने लगी। उसने निश्चय किया कि प्राण जाने तक शीलको नहीं छोड़ूँगी। इस समय णमोकार मन्त्र ही मेरा रक्षक है। पंचपरमेष्ठीकी शरण ही मेरे लिए सहायक है। इस प्रकार निश्चय कर वह ध्यानमें और दृढ़ हो गयी। देवने पुनः कहा – "अब इस ध्यानसे कुछ नहीं होगा, तुम्हें मेरे वचन मानने पड़ेंगे।" परन्तु प्रभावती तनिक भी विचलित नहीं हुई और णमोकार मन्त्रका ध्यान करती रही। प्रभावतीकी दृढ़तासे प्रसन्न होकर देवने अपना वास्तविक रूप धारण किया और रानीसे बोला – "देवि! आप धन्य है। मैं देव हूँ, मैंने चण्डप्रद्योतकी सेनाको उज्जयिनी पहुँचा दिया है तथा विक्रियाबलसे आपकी सेना और प्रजाको मूच्छित कर दिया है। मैं आपके सतीत्व और भक्तिभावकी परीक्षा कर रहा था। मै आपसे बहुत प्रसन्न हूँ। आपके ऊपर किसी भी प्रकारकी अब विपत्ति नहीं है। मध्यलोक वास्तवमें सती नारियोंके सतीत्वपर ही अवलम्बित है।" इस प्रकार कहकर पारिजात पुष्पोंसे रानीकी पूजा की, आकाशमें दुन्दुभि बाजे बजने लगे, पुष्पवृष्टि होने लगी। पंचपरमेष्ठीकी जय और जिनेन्द्र भगवान्‌की जयके नारे सर्वत्र सुनाई पड़ते थे। णमोकारकी आराधनाके प्रभावसे रानी प्रभावतीने अपने शीलकी रक्षा की तथा आर्यिकासे दीक्षा ग्रहण कर तप किया, जिससे ब्रह्मस्वर्गमें दस सागरोपम आयु प्राप्त कर महर्धिदेव हुई।

इस ग्रन्थकी बारहवीं कथामें बताया गया है कि जिनपालित मुनि एक दिन एकाकी विहार करते हुए आ रहे थे। उज्जयिनीके पास आते-आते सूर्यास्त हो गया, अतः रातमें गमन निषिद्ध होनेसे वह भयंकर श्मशानभूमिमें जाकर ध्यानस्थ हो गये। सूर्योदय तक इसी स्थानपर रहेंगे, ऐसा नियम कर वहीं एक ही करवट लेट गये। धनुषाकार होकर उन्होंने ध्यान लगाया। योगमें मुनिराज इतने लीन थे कि उन्हें अपने शरीरका भी होश नहीं था।

मध्यरात्रिमें उज्जयिनीका विडम्ब नामक साधक मन्त्रविद्या सिद्ध करनेके लिए उसी श्मशानभूमिमें आया। उसने योगस्थ जिनपालित मुनिको मुरदा समझा, अतः

पासकी चिताओंसे दो-तीन मुरदे और खींच लाया। जिनपालित मुनि और अन्य मुरदोंको मिलाकर उसने चूल्हा तैयार किया और इस चूल्हेमें आग जलाकर भात बनाना आरम्भ किया। जब आगकी लपटें जिनपालित मुनिके मस्तकके पास पहुँचीं, तब भी वह ध्यानस्थ रहे। उन्होंने अग्निकी कुछ भी परवाह नहीं की। मुनिराज सोचने लगे – "स्त्री बिना पुत्र, दूध बिना मक्खन, सूत बिना कपड़ा और मिट्टी बिना घड़ेका बनना जैसे असम्भव है, उसी प्रकार उपसर्ग बिना सहे कर्मोंका नष्ट होना असम्भव है। उपसर्गकी आगसे कर्मरूपी लकड़ी जलकर भस्म हो जाती है। इस पर्यायकी प्राप्ति, और इसमें भी दिगम्बर दीक्षाका मिलना बड़े सौभाग्यकी बात है। जो व्यक्ति इस प्रकारके अवसरोंपर विचलित हो जाते हैं, वे कहीके नहीं रहते। जीवके परिणाम ही उन्नति-अवनतिके साधन हैं। परिणाम जैसे-जैसे विशुद्ध होते जाते है, वैसे-वैसे यह जीव आत्मकल्याणमें प्रवृत्त हो जाता है। परिणामोंकी शुद्धिका साधन णमोकार मन्त्र है। इस मन्त्रकी आराधनासे परिणामोंमें निर्मलता आ जाती है, आत्मा अपने ज्ञान, दर्शन, चैतन्यमय स्वरूपको समझ लेता है। अतः णमोकार मन्त्रको साधना ही संकटकालमें सहायक होती है। इसीके द्वारा मोहममताको जीता जा सकता है। जड़ और चेतनका भेद-भाव इसी महामन्त्रकी साधनासे प्राप्त होता है। आत्मरसका स्वाद भी पंचपरमेष्ठीके गुणचिन्तनसे प्राप्त होता है। इस प्रकार जिनपालित मुनिने द्वादश अनुप्रेक्षाओंका चिन्तन किया। महाव्रत और समितिके स्वरूपका विचार कर परिणामोंको दृढ किया। अनन्तर सोचने लगे कि व्रतोंकी महिमा अचिन्त्य है। व्रत पालन करनेसे चाण्डाल भी देव हो गया, कौवेका मांस छोड़नेसे खदिरसागर इन्द्र पदवीको प्राप्त हुआ। णमोकार मन्त्रके प्रभावसे कितने ही भव्य जीवोंने कल्याण प्राप्त किया है। दृढसूर्य नामक चोर चोरी करते पकड़ा गया, दण्डस्वरूप शूलीपर चढ़ाया गया, पर णमोकार मन्त्रके स्मरणसे देवपद प्राप्त हो गया। सोमशर्माकी स्त्रीने वरदत्त मुनिराजको भक्तिभावपूर्वक आहार दान दिया था तथा अन्तिम समयमें णमोकार-मन्त्रकी आराधना की थी, जिससे वह देवांगना हुई। नमि और विनमिने भगवान् आदिनाथकी आराधना की थी, जिससे धरणेन्द्रने आकर उनकी सेवा की। क्या पंचपरमेष्ठीकी आराधना करना सामान्य बात है। द्रुमसेनने जिनेश्वर मार्गको समझकर णमोकार मन्त्रकी साधना की, जिससे पिण्डस्थ, पदस्थ और रूपस्थ

ध्यानके अनन्तर रूपातीत ध्यान किया और कर्मोंका नाश कर मोक्ष लाभ किया। अतः इस समय सभी प्रकारके उपसर्गोंको जीतना परम आवश्यक है। णमोकार-मन्त्र ही मेरे लिए शरण है।

अग्नि उत्तरोत्तर बढ़ रही थी। जिनपालितका सारा शरीर भस्म हो रहा था, पर वह णमोकारमन्त्रकी साधनामें लीन थे। परिणाम और विशुद्ध हुए और णमोकार मन्त्रके प्रभावसे श्मशान-भूमिके रक्षक देवने प्रकट हो उपसर्ग दूर किया तथा मुनिराजके चरण-कमलोंकी पूजा की। इस प्रकार णमोकार मन्त्रकी साधनामें जिनपालित मुनिने अपूर्व आत्मसिद्धि प्राप्त की।

इस ग्रन्थकी तेरहवीं कथामें आया है कि एक दिन द्रोणाचार्य अपने शिष्यों-सहित मालवदेश पहुँचे, वहाँका राजा सिंहसेन था। इसकी स्त्रीका नाम चन्द्रलेखा था। चन्द्रलेखा अपनी सखियोंके साथ सहस्रकूट चैत्यालयका दर्शन कर लौट रही थी। इतनेमें एक मदोन्मत्त हाथी चिघाड़ता हुआ और मार्गमें मिलनेवालोंको रौंदता हुआ चन्द्रलेखाके निकट आया। चारों ओर हाहाकार मच गया, चन्द्रलेखा-की सखियाँ तो इधर-उधर भाग गयीं, किन्तु वह अपने स्थानपर ही घबराकर गिर गयी। उसने उपसर्गके दूर होनेतक संन्यास ले लिया और णमोकारमन्त्रके ध्यानमें लीन हो गयी। हाथी चन्द्रलेखाको पैरोंके नीचे कुचलनेवाला ही था, सभी लोग किनारेपर खड़े इस दयनीय दृश्यको देख रहे थे। द्रोणाचार्यके शिष्य भी इस अप्रत्याशित घटनाको देखकर घबरा गये। प्रमातिकुमारको चन्द्रलेखापर दया आयी, अतः वह हाथीको पकड़नेके लिए दौड़ा। अपने अपूर्व बलसे तथा चन्द्र-लेखाके णमोकारमन्त्रके प्रभावसे उसने हाथीको पकड़ लिया, जिससे चन्द्रलेखाके प्राण बच गये। यह कुमारी णमोकारमन्त्रकी अत्यन्त भक्तिन बन गयी और सर्वथा इस मन्त्रका चिन्तन किया करती थी। चन्द्रलेखाका विवाह भी प्रमाति-कुमारके साथ हो गया; क्योंकि प्रमातिकुमारने ही स्वयंवरमें चन्द्रवेध किया। प्रमातिकुमारके इस कौशलके कारण उसके साथी भी इससे ईर्ष्या रखते थे। एक दिन वह जंगलमें गया था, वहाँ एक मन्दोन्मत्त वनगज सामने आता हुआ दिखाई दिया। प्रमातिकुमारने धैर्यपूर्वक णमोकारमन्त्रका स्मरण किया और हाथीको पकड़ लिया। इस कार्यसे उसके साथियोंपर अच्छा प्रभाव पड़ा और वे अपना वैर-विरोध भूलकर उससे प्रेम करने लगे।

एक दिन कौशाम्बी नगरीसे दूत आया और उसने कहा कि दन्तिबल राजापर एक माण्डलिक राजाने आक्रमण कर दिया है। शत्रुओंने कौशाम्बीके नगरको तोड़ दिया है। राजा दन्तिबल वीरतापूर्वक युद्ध कर रहा है, पर युद्धमें विजय प्राप्त करना कठिन है। प्रमातिकुमारने मालव नरेशसे भी आज्ञा नही ली और चन्द्रलेखाके साथ रातमें णमोकारमन्त्रका जाप करता हुआ चला। मार्गमें चोर-सरदारसे मुठभेड़ भी हुई, पर उसे परास्त कर कौशाम्बी चला आया और वीरता-पूर्वक युद्ध करने लगा। राजा दन्तिबलने जब देखा कि कोई उसकी सहायता कर रहा है, तो उसके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। प्रमातिकुमारने वीरतापूर्वक युद्ध किया जिससे शत्रुके पैर उखड़ गये और वह मैदान छोड़कर भाग गया। राजा दन्तिबल पुत्रको प्राप्त कर बहुत प्रसन्न हुए। चन्द्रलेखाने ससुरकी चरणधूलि सिर-पर धारण की। दन्तिबलको वृद्धावस्था आ जानेसे संसारसे विरक्ति हो गयी। फिर उन्होंने प्रमातिकुमारको राज्यभार दे दिया। प्रमातिकुमार न्याय-नीतिपूर्वक प्रजाका पालन करने लगा। एक दिन वनमें मुनिराजका आगमन सुनकर वह अमात्य, सामन्त और महाजनों सहित मुनिराजके दर्शन करनेको गया। उसने भक्तिभावपूर्वक मुनिराजकी वन्दना की और उनका धर्मोपदेश सुनकर संसारसे विरक्त रहने लगा। कुछ दिनोंके उपरान्त एक दिन अपने श्वेत केश देखकर उसे संसारसे वहुत घृणा हुई और अपने पुत्र विमलकीर्तिको बुलाकर राज्यभार सौंप दिया और स्वयं दिगम्बर दीक्षा ग्रहण कर घोर तपश्चरण करने लगा। मरणकाल निकट जानकर प्रमातिकुमारने सल्लेखनामरण धारण किया तथा णमोकार मन्त्रका स्मरण करते हुए प्राणोंका त्याग किया; जिससे पन्द्रहवें स्वर्गमें कीर्तिधर नामक महर्द्धिकदेव हुआ। णमोकारमन्त्रका ऐसा ही प्रभाव है, जिससे इस मन्त्रके ध्यानसे सांसारिक कष्ट दूर होते है, साथ ही परलोकमे महान् सुख प्राप्त होता है। धर्मा-मृतकी सभी कथाओंमें णमोकार मन्त्रकी महत्ता प्रदर्शित की गयी है। यद्यपि ये कथाएँ सम्यक्त्वके आठ अंग तथा पंचाणुव्रतोंकी महत्ता दिखलानेके लिए लिखी गयी है, पर इस मन्त्रका प्रभाव सभी पात्रोंपर है।

पुण्यास्रव कथाकोपमें इस महामन्त्रके महत्त्वको प्रकट करनेवाली आठ कथाएँ आयी है। प्रथम कथाका वर्णन करते हुए बताया गया है कि इस महामन्त्रकी आराधना करके तिर्यंच भी मानव पर्यायको प्राप्त होते है। कहा है—

प्रथम मन्त्र नवकार सुन तिरौ बैलको जीव ।
ता प्रतीत हिरदै धरी भयो-राम सुग्रीव ॥
ताके वरनन करत हूँ जानो मन वच काय ।
महामन्त्र हिरदै धरै सकल पाप मिट जाय ॥
णमोकारका महापुण्य है अकथनीय उसकी महिमा ।
जिसके फलसे नीच बैलने पाई सद्गति गरिमा ॥
देखो ! पद्मरुचिर जिस फलसे हुए रामसे नृपति महान् ।
करो ध्यान युत उसकी पूजा यही जगतमें सच्चा मान ॥

अयोध्यामें जब महाराज रामचन्द्रजी राज्य करते थे, उस समय सकलभूषण केवलज्ञानके धारी मुनिराज इस नगरके एक उद्यानमें पधारे। पूजा-स्तुति करनेके उपरान्त विभीषणने मुनिराजसे पूछा कि "प्रभो ! कृपा कर यह बतलाइए कि किस पुण्यके प्रभावसे सुग्रीव इतना गुणी और प्रभावशाली राजा हुआ है। महाराज रामचन्द्रजीकी तथा सुग्रीवकी पूर्व भवावलि जाननेकी बड़ी भारी इच्छा है।

केवली भगवान् कहने लगे—इस भरत क्षेत्रके आर्यखण्डमें श्रेष्ठपुरी नामकी एक प्रसिद्ध नगरी है। इस नगरीमें पद्मरुचि नामका सेठ रहता था, जो अत्यन्त धर्मात्मा, श्रद्धालु और सम्यग्दृष्टि था। एक दिन यह गुरुका उपदेश सुनकर घर जा रहा था कि रास्तेमें एक घायल बैलको पीड़ासे छटपटाते हुए देखा। सेठने दया कर उसके कानमें णमोकार मन्त्र सुनाया, जिसके प्रभावसे मरकर वह बैल इसी नगरके राजाका वृषभध्वज नामका पुत्र हुआ। समय पाकर जब वह बड़ा हुआ तो एक दिन हाथीपर सवार होकर वह नगर-परिभ्रमणको चला। मार्गमें जब राजाका हाथी उस बैलके मरनेके स्थानपर पहुँचा तो उस राजाको अपने पूर्वभवका स्मरण हो आया तथा अपने उपकारीका पता लगानेके लिए उसने एक विशाल जिनालय बनवाया, जिसमें एक बैलके कानमें एक व्यक्ति णमोकार मन्त्र सुनाते हुए अंकित किया गया। उस बैलके पास एक पहरेदारको नियुक्त कर दिया तथा उस पहरेदारको समझा दिया कि जो कोई इस बैलके पास आकर आश्चर्य प्रकट करे, उसे दरबारमें ले आना।

एक दिन उस नवीन जिनालयके दर्शन करने सेठ पद्मरुचि आया और पत्थर-

के उस बैलके पास णमोकार मन्त्र सुनाती हुई प्रस्तर-मूर्ति अंकित देखकर आश्चर्यान्वित हुआ। वह सोचने लगा कि यह मेरी आजसे २५ वर्ष पहलेकी घटना यहाँ कैसे अंकित की गयी है। इसमें रहस्य है, इस प्रकार विचार करता हुआ आश्चर्य प्रकट करने लगा। पहरेदारने जब सेठको आश्चर्यमें पड़ा देखा तो वह उसे पकड़कर राजाके पास ले गया।

राजा—सेठजी ! आपने उस प्रस्तर-मूर्तिको देखकर आश्चर्य क्यों प्रकट किया ?

सेठ—राजन् ! आजसे पचीस वर्ष पहलेकी घटनाका मुझे स्मरण आया। मैं जिनालयसे गुरुका उपदेश सुनकर अपने घर लौट रहा था कि रास्तेमें मुझे एक बैल मिला। मैंने उसे णमोकार मन्त्र सुनाया। यही घटना उस प्रस्तर-मूर्तिमें अंकित है। अतः उसे देखकर मुझे आश्चर्यान्वित होना स्वाभाविक है।

राजा – "सेठजी ! आज मैं अपने उपकारीको पाकर धन्य हो गया। आपकी कृपासे ही मैं राजा हुआ हूँ। आपने मुझे दया कर णमोकार मन्त्र सुनाया जिसके पुण्यके प्रभावसे मेरी तिर्यंच जाति छूट गयी तथा मनुष्य पर्याय और उत्तम कुलकी प्राप्ति हुई। अब मैं आत्मकल्याण करना चाहता हूँ। मैंने आपका पता लगानेके लिए ही जिनालयमें वह प्रस्तर-मूर्ति अंकित करायी थी। कृपया आप इस राज्यभारको ग्रहण करें और मुझे आत्मकल्याणका अवसर दे। अब मै इस मायाजालमें एक क्षण भी नही रहना चाहता हूँ।" इतना कहकर राजाने सेठके मस्तकपर स्वयं ही राजमुकुट पहना दिया तथा राज्यतिलक कर दिगम्बर दीक्षा धारण की। वह कठोर तपश्चरण करता हुआ णमोकार मन्त्रकी साधना करने लगा और अन्तिम समयमें सल्लेखना धारण कर प्राण त्याग दिये, जिससे वह सुग्रीव हुआ है। सेठ पद्मरुचिने अन्तिम समयमे सल्लेखना धारण की तथा णमोकार मन्त्रकी साधना की; जिससे उनका जीव महाराज रामचन्द्र हुआ है। इस णमोकार मन्त्रमें पाप मिटाने और पुण्य बढानेकी अपूर्व शक्ति है। केवली मुनिराजके द्वारा इस प्रकार णमोकार मन्त्रकी महिमाको सुनकर विभीषण, रामचन्द्र, लक्ष्मण और भरत आदि सभीको अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

णमोकार मन्त्रके स्मरणसे बन्दरने भी आत्मकल्याण किया है। कहा जाता है कि अर्धमृतक एक बन्दरको मुनिराजने दया कर णमोकार मन्त्र सुनाया। उस

बन्दरने भी भक्तिभावपूर्वक णमोकार मन्त्र सुना, जिसके प्रभावसे उस चित्रांगद के जीवने च्युत होकर मानव पर्याय प्राप्त की और अपना वास्तविक कल्याण किया।

तीसरी कथामें बताया गया है कि काशीके राजाकी लड़कीका नाम सुलोचना था। यह जैनधर्ममें अत्यन्त अनुरक्त थी। वह सतत विद्याभ्यासमें लीन रहती थी। अतः उसके पिताने अपने मित्रकी कन्याके साथ उसे रख दिया। दोनों सखियाँ बड़े प्रेमके साथ विद्याभ्यास करने लगी। सुलोचनाकी इस सखीका नाम विन्ध्यश्री था। एक दिन विन्ध्यश्री फूल तोड़ने बगीचेमें गयी, वहाँ एक साँपने उसे काट लिया, जिससे वह मूच्छित होकर गिर पड़ी। सुलोचनाने उसे णमोकार मन्त्र सुनाया, जिसके प्रभावसे वह मरकर गंगादेवी हुई तथा सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगी। कहा है –

> **महामन्त्र को सुलोचना से विन्ध्यश्री ने जब पाया।**
> **भक्ति-भाव से उसने पायी गंगा देवी की काया॥**
> **क्यों न कहेगा अकथनीय है नमस्कार महिमा भारी।**
> **उसे भजेगा सतत नेम से बन जावेगा सुखकारी॥**

चौथी कथामें आया है कि चारुदत्तने एक अर्द्धदग्ध पुरुषको, जिसे एक संन्यासीने धोखा देकर रसायन निकालनेके लिए कुएँमें डाल दिया था और जिसका आधा शरीर वर्षोंसे उस अन्धकूपमें रहनेके कारण जल गया था, जिससे उसमें चलने-फिरनेकी भी शक्ति नहीं थी, जिसके प्राणोंका अन्त ही होना चाहता था, उसे चारुदत्तने णमोकार मन्त्र सुनाया। अन्तिम समयमें इस महामन्त्रके श्रवणमात्रसे उसकी आत्मामें इतनी विशुद्धि आयी जिससे वह प्रथम स्वर्गमें देव हुआ। आगे इसी कथामें बतलाया गया है कि चारुदत्तने एक मरणासन्न बकरेको भी णमोकार मन्त्र सुनाया, जिससे वह बकरेका जीव भी स्वर्गमें देव हुआ।

पुण्यास्रव-कथाकोषकी एक कथामें बतलाया गया है कि कीचड़में फँसी हुई हथिनी णमोकार मन्त्रके श्रवणसे उत्तम मानव पर्यायको प्राप्त हुई। कहा गया है कि गुणवतीका जीव अनेक पर्यायोंको धारण करनेके पश्चात् एक बार हथिनी हुआ। एक दिन वह हथिनी कीचड़में फँस गयी और उसका प्राणान्त होने लगा। इसी बीच सुरंग नामका विद्याधर आया और उसने हथिनीको णमोकार मन्त्र

सुनाया; जिसके प्रभावसे वह मरकर नन्दवती कन्या हुई और पश्चात् सीताके समान सती-साध्वी नारी हुई। महामन्त्र का प्रभाव अद्भुत है। कहा गया है –

हथिनी की काया से कैसे हुई सती सीता नारी।
जिसने नारी युग में पायी पातिव्रत पदवी भारी॥
नमस्कार हो महामन्त्र है भव सागर की नैया।
सदा भजोगे पार करेगा बन पतवार खिवैया॥

पार्श्वपुराणमें बताया गया है कि भगवान् पार्श्वनाथने अपनी छद्मस्थ अवस्थामें जलते हुए नाग-नागिनीको णमोकार महामन्त्रका उपदेश दिया, जिसके प्रभावसे वे धरणेन्द्र और पद्मावती हुए। इसी प्रकार जीवन्धर स्वामीने कुत्तेको णमोकार महामन्त्र सुनाया था, जिसके प्रभावसे कुत्ता स्वर्गमें देव हुआ। आराधना-कथाकोशमें इस महामन्त्रके माहात्म्यकी कथाका वर्णन करते हुए कहा है कि चम्पानगरीके सेठ वृषभदत्तके यहाँ एक ग्वाला नौकर था। एक दिन वह वनसे अपने घर आ रहा था। शीतकालका समय था, कड़ाकेकी सर्दी पड़ रही थी। उसे रास्तेमें ऋद्धिधारी मुनिके दर्शन हुए, जो एक शिलातलपर बैठकर ध्यान कर रहे थे। ग्वालेको मुनिराजके ऊपर दया आयी और घर जाकर अपनी पत्नीसहित लौट आया तथा मुनिराजकी वैयावृत्ति करने लगा। प्रातःकाल होनेपर मुनिराजका ध्यान भंग हुआ और ग्वालेको निकट भव्य समझकर उसे णमोकार मन्त्रका उपदेश दिया। अब तो उस ग्वालेका यह नियम बन गया कि वह प्रत्येक कार्यके प्रारम्भ करनेपर णमोकार मन्त्रका नौ बार उच्चारण करता। एक दिन वह भैंस चरानेके लिए गया था। भैंसें नदीमें कूदकर उस पार जाने लगी, अतः ग्वाला उन्हें लौटाने-के लिए अपने नियमानुसार णमोकार मन्त्र पढ़कर नदीमें कूद पडा। पेटमें एक नुकीली लकडी चुभ जानेसे उसका प्राणान्त हो गया और णमोकार मन्त्रके प्रभावसे उसी सेठके यहाँ सुदर्शन नामका पुत्र हुआ। सुदर्शनने उसी भवसे निर्वाण प्राप्त किया। अतः कथाके अन्तमें कहा गया है –

"इत्थं ज्ञात्वा महाभव्यैः कर्तव्यः परया मुदा।
सारपञ्चनमस्कार-विश्वासः शर्मदः सताम्॥"

अर्थात् णमोकार मन्त्रका विश्वास सभी प्रकारके सुखोंको देनेवाला है। जो व्यक्ति श्रद्धापूर्वक इस महामन्त्रका उच्चारण, स्मरण या चिन्तन करता है, उसके

सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं।

इस महामन्त्रकी महत्ता बतलानेवाली एक कथा दृढ़सूर्य चोरकी भी इसी कथाकोशमें आयी है। बताया गया है कि उज्जयिनी नगरीमें एक दिन वसन्तोत्सवके समय धनपाल राजाकी रानी बहुमूल्य हार पहनकर वनविहारके लिए जा रही थी। जब उसके हारपर वसन्तसेना वेश्याकी दृष्टि पड़ी तो वह उसपर मोहित हो गयी और अपने प्रेमी दृढ़सूर्यसे कहने लगी कि इस हारके बिना तो मेरा जीवित रहना सम्भव नहीं। अतः किसी भी तरह हो, इस हारको ले आना चाहिए। दृढ़सूर्य राजमहलमें गया और उस हारको चुराकर ज्यों ही निकला, त्यों ही पकड़ लिया गया। दृढ़सूर्य फाँसीपर लटकाया जा चुका था, पर अभी उसके शरीरमें प्राण अवशेष थे। संयोगवश उसी मार्गसे धनदत्त सेठ जा रहा था। दृढ़सूर्यने उससे पानी पिलानेको कहा। सेठने उत्तर दिया – "मेरे गुरुने मुझे णमोकार मन्त्र दिया है। अतः मै जबतक पानी लाता हूँ, तुम इसे स्मरण रखो।" इस प्रकार दृढ़सूर्यको णमोकार मन्त्र सिखलाकर धनदत्त पानी लेने चला गया। दृढ़सूर्यने णमोकार मन्त्रका जोर-जोरसे उच्चारण आरम्भ किया। आयु पूर्ण होनेसे उस चोरका मरण हो गया और वह णमोकार मन्त्रके प्रभावसे सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ।

जम्बूस्वामी-चरितमें आया है कि सेठ अर्हद्दासका अनुज सप्तव्यसनोंमें आसक्त था। एक बार यह जुएमें बहुत-सा धन हार गया और इस धनका न दे सकनेके कारण दूसरे जुआरीने इसे मार-मारकर अधमरा कर दिया। अर्हद्दासने अन्त समयमें णमोकार मन्त्र सुनाया, जिसके प्रभावसे वह यक्ष हुआ। इस प्रकार णमोकार मन्त्रके प्रभावसे अगणित व्यसनी और पापी व्यक्तियोंने अपना सुधार किया है तथा वे सद्गतिको प्राप्त हुए हैं। इस महामन्त्रकी आराधना करनेवाले व्यक्तिको भूत, पिशाच और व्यन्तर आदिकी किसी भी प्रकारकी बाधा नहीं हो सकती है। धन्यकुमार-चरितको सुभौम चक्रवर्तीकी निम्न कथासे यह बात सिद्ध हो जायेगी।

आठवें चक्रवर्ती सुभौमके रसोइयेका नाम जयसेन था। एक दिन भोजनके समय इस पाचकने चक्रवर्तीके आगे गरम-गरम खीर परोस दी। गरम खीरसे चक्रवर्तीका मुँह जलने लगा; जिससे क्रोधमें आकर खीरके रखे हुए बरतनको

उस पाचकके सिरपर पटक दिया; जिससे उसका सिर जल गया। वह इस कष्टसे मरकर लवणसमुद्रमें व्यन्तर देव हुआ। जब उसने अवधिज्ञानसे अपने पूर्वभवकी जानकारी प्राप्त की तो उसे चक्रवर्तीके ऊपर बड़ा क्रोध आया। प्रतिहिंसाकी भावनासे उसका शरीर जलने लगा। अतः वह तपस्वीका वेष बनाकर चक्रवर्तीके यहाँ पहुँचा। उसके हाथमें कुछ मधुर और सुन्दर फल थे। उसने उन फलोंको चक्रवर्तीको दिया, वह फल खाकर बहुत प्रसन्न हुआ। उन्होंने उस तापससे कहा – "महाराज, ये फल अत्यन्त मधुर और स्वादिष्ट हैं। आप इन्हें कहाँसे लाये हैं और ये कहाँ मिलेंगे।" तापसरूपधारी व्यन्तरदेवने कहा – "समुद्रके बीचमें एक छोटा-सा टापू है। मैं वहीं निवास करता हूँ। यदि आप मुझ गरीबपर कृपा कर मेरे घर पधारें तो ऐसे अनेक फल भेंट करूँ।" चक्रवर्ती जिह्वाके लोभमें फँसकर व्यन्तरके झाँसेमें आ गये और उसके साथ चल दिये। जब व्यन्तर समुद्रके बीचमें पहुँचा तब वह अपने प्रकृत रूपमें प्रकट होकर लाल-लाल आँखें कर बोला – "दुष्ट, जानता है, मैं तुझे यहाँ क्यों लाया हूँ। मैं ही तेरे उस पाचकका जीव हूँ, जिसे तूने निर्दयतापूर्वक मार डाला था। अभिमान सदा किसीका नहीं रहता। मैं तुझे उसीका बदला चुकानेके लिए लाया हूँ।" व्यन्तरके इन वचनोंको सुनकर चक्रवर्ती भयभीत हुआ और मन ही मन णमोकार मन्त्रका ध्यान करने लगा। इस महामन्त्रके सामर्थ्यके समक्ष उस व्यन्तरकी शक्ति काम नहीं कर सकी। अतः उस व्यन्तरने पुनः चक्रवर्तीसे कहा – "यदि आप अपने प्राणोंकी रक्षा चाहते हैं तो पानीमें णमोकार मन्त्रको लिखकर उसे पैरके अँगूठेसे मिटा दें। मैं इसी शर्तके ऊपर आपको जीवित छोड़ सकता हूँ। अन्यथा आपका मरण निश्चित है।" प्राणरक्षाके लिए मनुष्यको भले-बुरेका विचार नहीं रहता; यही दशा चक्रवर्तीकी हुई। व्यन्तरदेवके कथनानुसार उसने णमोकार मन्त्रको लिखकर पैरके अँगूठेसे मिटा दिया। उनके उक्त क्रिया सम्पन्न करते ही, व्यन्तरने उन्हें मारकर समुद्रमें फेंक दिया। क्योंकि इस कृत्यके पूर्व वह णमोकार मन्त्रके श्रद्धानीको मारनेका साहस नहीं कर सकता था। यतः उस समय जिनशासनदेव उस व्यन्तरके इस अन्यायको रोक सकते थे; किन्तु णमोकार मन्त्रके मिटा देनेसे व्यन्तरदेवने समझ लिया कि यह धर्म-द्वेषी है, भगवान्का भक्त नहीं। श्रद्धा या अटूट विश्वास इसमें नहीं है। अतः उस व्यन्तरने उसे मार डाला। णमोकार मन्त्रके अपमानके कारण

उसे सप्तम नरककी प्राप्ति हुई। जो व्यक्ति णमोकार मन्त्रके दृढ ज्ञानी है, उनकी आत्मामें इतनी अधिक शक्ति उत्पन्न हो जाती है, जिससे भूत, प्रेत, पिशाच आदि उनका बाल भी बाँका नहीं कर पाते। आत्मस्वरूप इस मन्त्रका श्रद्धान संसारसे पार उतारनेवाला है तथा सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिका प्रधान हेतु है। शान्ति, सुख और समताका कारण यही महामन्त्र है।

श्वेताम्बर धर्मकथासाहित्यमें भी इस महामन्त्रके सम्बन्धमें अनेक कथाएँ उपलब्ध होती हैं। कथारत्नकोषमें श्रीदेव नृपतिके कथानकमें इस महामन्त्रकी महत्ता बतलायी गयी है। णमोकार मन्त्रके एक अक्षर या एक पदके उच्चारण-मात्रसे जन्म-जन्मान्तरके संचित पाप नष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेसे अन्धकार नष्ट हो जाता है, कमलश्री वृद्धिगत होने लगती है, उसी प्रकार इस महामन्त्रकी आराधनासे पाप तिमिर लुप्त हो जाते हैं और पुण्यश्री बढ़ती है। मनुष्योंकी तो बात ही क्या तिर्यंच, भील-भीलनी, नीच-चाण्डाल आदि इस महामन्त्रके प्रभावसे मरकर स्वर्गमें देव हुए और वहाँसे चय कर मनुष्यकी पर्याय प्राप्त होकर निर्वाण प्राप्त किया है। स्त्रीलिंगका छेद और समाधिमरणकी सफलता इसी मन्त्रकी धारणापर निर्भर है।

कथासाहित्यमें एक भील-भीलनीकी कथा आयी है, जिसमें बताया गया है कि पुष्करावर्त द्वीपके भरत क्षेत्रमें सिद्धकूट नामका नगर है। उसमें एक दिन शान्त तपस्वी वीतरागी सुव्रत नामके आचार्य पधारे। वर्षाऋतु आरम्भ हो जानेके कारण चातुर्मास उन्होंने वहीं ग्रहण किया। एक दिन मुनिराज ध्यानस्थ थे कि भील-भीलनी दम्पति वहाँ आये। मुनिराजका दर्शन करते ही उनका चिरसंचित पाप नष्ट हो गया, उनके मनमें अपूर्व प्रसन्नता हुई और दोनों मुनिराजका धर्मोपदेश सुननेके लिए वहींपर ठहर गये। जब मुनिराजका ध्यान टूटा तो उन्होंने भील-भीलनीको नमस्कार करते हुए देखा। महाराजने धर्मबुद्धिको आशीर्वाद दिया। आशीर्वाद प्राप्त कर वे दोनों अत्यन्त आह्लादित हुए और हाथ जोड़कर कहने लगे – प्रभो! हमें कुछ धर्मोपदेश दीजिए। मुनिराजने णमोकार मन्त्र उनको सिखलाया, उन दोनोंने भक्ति-भावपूर्वक णमोकार मन्त्रका जाप आरम्भ किया। श्रद्धापूर्वक सर्वदा त्रिकाल इस महामन्त्रका जाप करने लगे। भीलने मृत्युके समय भी भक्ति-भावपूर्वक इस महामन्त्रकी आराधना की, जिससे वह मरकर राजपुत्र

हुआ। भीलनीने भी सुगति पायी।

आगे बतलाया गया है कि जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमे मणिमन्दिर नामका नगर था। उस नगरके निवासी अत्यन्त धर्मात्मा, दानपरायण, गुणग्राही और सत्पुरुष थे। इस नगरके राजाका नाम मृगाङ्क था और इसकी रानीका नाम विजया। इन्ही दम्पतिका पुत्र णमोकार मन्त्रके प्रभावसे उस भीलका जीव हुआ। इस भवमे इसका नाम राजसिंह रखा गया। बड़े होनेपर राजसिंह मन्त्री-पुत्रके साथ भ्रमणके लिए गया। रास्तेमें थककर एक वृक्षकी छायामे विश्राम करने लगा। इतनेमे एक पथिक उसी मार्गसे आया और राजपुत्रके पास आकर विश्राम करने लगा। बात-चीतके सिलसिलेमे उसने बतलाया कि पद्मपुरमे पद्म नामक राजा रहता है, इसकी रत्नावती नामकी अनुपम सुन्दर पुत्री है। जब इसका विवाह सम्बन्ध ठीक हो रहा था, तब एक नटके नृत्यको देखकर उसे जाति-स्मरण हो गया, अतः उसने निश्चय किया कि जो मेरे पूर्वभवके वृत्तान्तको बतलायेगा, उसीके साथ मैं विवाह करूँगी। अनेक देशोके राजपुत्र आये, पर सभी निराश होकर लौट गये। राजकुमारीके पूर्वभवके वृत्तान्तको कोई नही बतला सका। अब उस राजकुमारीने पुरुषका मुँह देखना ही बन्द कर दिया है और वह एकान्त स्थानमें रहकर समय व्यतीत करती है।

पथिककी उपर्युक्त बातोंको सुनकर राजकुमारका आकर्षण राजकुमारीके प्रति हुआ और उसने 'मन ही मन उसके साथ विवाह करनेकी प्रतिज्ञा की। वहाँसे चलकर मार्गमें मन्त्री-पुत्र और राजकुमारने णमोकार मन्त्रके प्रभावकी कथाओंका अध्ययन, मनन और चिन्तन किया, जिससे राजकुमारने अपने पूर्वभवके वृत्तान्तको अवगत कर लिया। पासमे रहनेवाली मणिके प्रभावसे दोनों कुमारोंने स्त्रीवेष बनाया और राजकुमारीके पास पहुँचे। राजसिंहने राजकुमारीके पूर्वभवका समस्त वृत्तान्त बतला दिया। तथा अपना वेष बदलकर वहाँ तक आनेकी बात भी कह दी। राजकुमारी अपने पूर्वभवके पतिको पाकर बहुत प्रसन्न हुई। उसे मालूम हो गया कि णमोकार मन्त्रके माहात्म्यसे मैं भीलनीसे राजकुमारी हुई हूँ और यह भीलसे राजपुत्र। अतः हम दोनों पूर्वभवके पति-पत्नी है। उसने अपने पितासे भी यह सब वृत्तान्त कह दिया। राजाने रत्नावती और राजसिंहका विवाह कर दिया।

कुछ दिनों तक सांसारिक भोग भोगनेके उपरान्त राजसिंह अपने पुत्र प्रतापसिंहको राजगद्दी देकर धर्मसाधनके लिए रानीके साथ वनमें चला गया। राजसिंह जब बीमार होकर मृत्यु-शय्यापर पड़ा जीवनकी अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा था, उसी समय उसने जाते हुए एक मुनिको देखा और अपनी स्त्रीसे कहा कि आप उस साधुको बुला लाइए। जब मुनिराज उसके पास आये तो राजसिंहने धर्मोपदेश सुननेकी इच्छा प्रकट की। मुनिराजने णमोकार मन्त्रका व्याख्यान किया और इसी महामन्त्रका जप करनेको कहा। समाधिमरण भी उसने धारण किया और आरम्भ-परिग्रहका त्याग कर इस महामन्त्रके चिन्तनमें लीन होकर प्राण त्याग दिये, जिससे वह ब्रह्मलोकमें दस सागरकी आयुवाला एक भवावतारी देव हुआ। भीलनीके जीव राजकुमारीने भी णमोकार महामन्त्रके प्रभावसे स्वर्गमें जन्म ग्रहण किया।

क्षत्रचूडामणिमें णमोकारमन्त्रकी महत्त्वसूचक एक सुन्दर कथा आयी है। इस कथामें बताया गया है कि एक बार कुछ ब्राह्मण मिलकर कहीपर यज्ञ कर रहे थे कि एक कुत्तेने आकर उनकी हवन-सामग्री जूठी कर दी। ब्राह्मणोंने क्रुद्ध हो उस कुत्तेको इतना मारा कि वह कण्ठगत प्राण हो गया। संयोगसे महाराज सत्येन्द्रके पुत्र जीवन्धरकुमार उधर आ निकले, उन्होने कुत्तेको मरते हुए देखकर उसे णमोकार मन्त्र सुनाया। मन्त्रके प्रभावसे कुत्ता मरकर यक्ष जातिका इन्द्र हुआ। अवधिज्ञानसे अपने उपकारीका स्मरण कर वह कुमार जीवन्धरके पास आया और नाना प्रकारसे उनकी स्तुति-प्रशंसा कर उन्हे इच्छित रूप बनाने और गानेकी विद्या देकर अपने स्थानपर चला गया।

इस आख्यानसे स्पष्ट है कि कुत्ता भी इस महामन्त्रके प्रभावसे देवेन्द्र हो सकता है, फिर मनुष्य जातिकी बात ही क्या ?

इस प्रकार श्वेताम्बर कथासाहित्यमे ऐसी अनेक कथाएँ आयी है, जिनमे इस महामन्त्रके ध्यान, स्मरण, उच्चारण और जपका अद्भुत फल बताया गया है। जो व्यक्ति भावसहित इस मन्त्रका अनुष्ठान करता है, वह अवश्य अपना कल्याण कर लेता है। सांसारिक समस्त विभूतियाँ उसके चरणोंमें लोटती है। वर्तमानमें भी श्रद्धापूर्वक णमोकार मन्त्रके जापसे अनेक व्यक्तियोंको अलौकिक सिद्धि प्राप्त हुई है।

फल-प्राप्तिके आधुनिक उदाहरण

आनेवाली आपत्तियाँ इस महामन्त्रकी कृपासे दूर हो गयी है ।

यहाँ दो-चार उदाहरण दिये जाते है । इस मन्त्रके दृढ श्रद्धानसे जखौरा (झाँसी) निवासी अब्दुल रज्जाक नामक मुसलमानकी सारी विपत्तियाँ दूर हो गयी थी। उसने अपना एक पत्र जैनदर्शन वर्ष ३ अंक ५-६ पृ. ३१ में प्रकाशित कराया है। वहाँसे इस पत्रको ज्योंका त्यों उद्धृत किया जाता है। पत्र इस प्रकार है – "मैं ज्यादातर देखता या सुनता हूँ कि हमारे जैन भाई धर्म की ओर ध्यान नही देते। और जो थोड़ा-बहुत कहने-सुननेको देते भी है तो सामायिक और णमोकार-मन्त्रके प्रकाशसे अनभिज्ञ है। यानी अभी तक वे इसके महत्त्वको नही समझते है। रात-दिन शास्त्रोंका स्वाध्याय करते हुए भी अन्धकारकी ओर बढते जा रहे हैं। अगर उनसे कहा जाये कि भाई, सामायिक और णमोकार मन्त्र आत्माको शान्ति पैदा करनेवाला और आये हुए दुःखोंको टालनेवाला है, तो वे इस तरहसे जवाब देते है कि यह णमोकार मन्त्र तो हमारे यहाँ के छोटे-छोटे बच्चे जानते है। इसको आप क्या बताते है, लेकिन मुझे अफसोसके साथ लिखना पडता है, कि उन्होने सिर्फ दिखानेकी गरजसे मन्त्रको रट लिया है। उसपर उनका दृढ विश्वास न हुआ और न वे उसके महत्त्वको ही समझे। मै दावेके साथ कहता हूँ कि इस मन्त्रपर श्रद्धा रखनेवाला हर मुसीबतसे बच सकता है। क्योंकि मेरे ऊपर ये बातें बीत चुकी है।

मेरा नियम है कि जब मैं रात को सोता हूँ तो णमोकार मन्त्रको पढ़ता हुआ सो जाता हूँ। एक मरतबे जाड़ेकी रातका जिक्र है कि मेरे साथ चारपाईपर एक बड़ा साँप लेटा रहा, पर मुझे उसकी खबर नहीं। स्वप्नमे जरूर ऐसा मालूम हुआ जैसे कोई कह रहा हो कि उठ साँप है। मैं दो-चार मरतबे उठा भी और उठकर लालटेन जलाकर नीचे-ऊपर देखकर फिर लेट गया लेकिन मन्त्रके प्रभावसे जिस ओर साँप लेटा था, उधरसे एक मरतबा भी नही उठा। जब सुबह हुआ, मैं उठा और चाहा कि बिस्तर लपेट लूँ, तो क्या देखता हूँ कि बड़ा मोटा साँप लेटा हुआ है। मैंने जो पल्लो खीचो तो वह झट उठ बैठा और पल्लो-के सहारे नीचे उतरकर अपने रास्ते चला गया।

दूसरे अभी दो-तीन माहका जिक्र है कि जब मेरी बिरादरीवालोंको मालूम हुआ कि मैं जैन मत पालने लगा हूँ, तो उन्होंने एक सभा की, उसमें मुझे बुलाया

गया। मैं जखौरासे झाँसी जाकर सभामें शामिल हुआ। हर एकने अपनी-अपनी रायके अनुसार बहुत कुछ कहा-सुना और बहुत-से सवाल पैदा किये, जिनका कि मैं जवाब भी देता गया। बहुत-से महाशयोंने यह भी कहा कि ऐसे आदमीको मार डालना ठीक है, लेकिन अपने धर्मसे दूसरे धर्ममें न जाने पावे। इस तरह जिसके दिलमें जो बात आयी, कही। अन्तमें सब लोग अपने-अपने घर चले गये और मैं भी अपने कमरेमें चला आया। क्योंकि मैं जब अपने माता-पिताके घर आता हूँ तो एक-दूसरे कमरेमें ठहरता हूँ और अपने हाथसे भोजन पकाकर खाता हूँ। उनके हाथका बनाया हुआ भोजन नहीं खाता। जब शामका समय हुआ — यानी सूर्य अस्त होने लगा तो मैंने सामायिक करना आरम्भ किया और सामायिकसे निश्चिन्त होकर जब आँखें खोलीं तो देखता हूँ कि एक बड़ा साँप मेरे आस-पास चक्कर लगा रहा है और दरवाजेपर एक बरतन रखा हुआ मिला, जिससे मालूम हुआ कि कोई इसमें बन्द करके यहाँ छोड़ गया है। छोड़नेवालेकी नीयत एकमात्र मुझे हानि पहुँचानेकी थी।

लेकिन उस साँपने मुझे कोई नुकसान नहीं पहुँचाया। मैं वहाँसे उठकर आया और लोगोंसे पूछा कि यह काम किसने किया है, परन्तु कोई पता न लगा। दूसरे दिन सामायिक समय जब साँपने पासवाले पड़ोसीके बच्चेको डंस लिया तब वह रोया और कहने लगा कि हाय मैंने बुरा किया कि दूसरेके वास्ते चार आने पैसे देकर वह साँप लाया था, उसने मेरे बच्चेको काट लिया। तब मुझे पता चला, बच्चेका इलाज हुआ, मैं भी इलाज करानेमें सना रहा, परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। वह बच्चा मर गया। उसके १५ दिन बाद वह आदमी भी मर गया, उसके वही एक बच्चा था। देखिए सामायिक और णमोकार मन्त्र कितना जबरदस्त खम्भ है कि आगे आया हुआ काल प्रेमका बरताव करता हुआ चला गया। इस मन्त्रके ऊपर दृढ़ श्रद्धान होना चाहिए। इसके प्रतापसे सभी कार्य सिद्ध होते हैं।"

इस महामन्त्रके प्रभावकी निम्न घटना पूज्य भगतजी प्यारेलालजी, बेलगछिया कलकत्ता निवासीने सुनायी है। घटना इस प्रकार है कि एक बार कलकत्ता निवासी स्व० बलदेवदासजीके पिता स्व. श्रीमान् सेठ दयाचन्दजी, भगतजी सा. तथा और भी कलकत्तेके चार-छह आदमी पवीनजीकी यात्राके लिए गये।

जब यात्रासे वापस लौटने लगे तो मार्गमें रात हो गयी, जंगली रास्ता था और चोर-डाकुओंका भय था। अँधेरा होनेसे मार्ग भी नहीं सूझता था, कि किधर जायें और किस प्रकार स्टेशन पहुँचें। सभी लोग घबरा गये। सभीके मनमें भय और आतंक व्याप्त था। मार्ग दिखाई न पड़नेसे एक स्थानपर बैठ गये। भगतजी साहबने उन सबसे कहा कि अब घबरानेसे कुछ नहीं होगा, णमोकार मन्त्रका स्मरण ही इस संकटको टाल सकता है। अतः स्वयं भगतजी सा. ने तथा अन्य सब लोगोंने णमोकारका ध्यान किया। इस मन्त्रके आधा घण्टा तक ध्यान करनेके उपरान्त एक आदमी वहाँ आया और कहने लगा कि आप लोग मार्ग भूल गये हैं, मेरे पीछे-पीछे चले आइए, मैं आप लोगोंको स्टेशन पहुँचा दूँगा। अन्यथा यह जंगल ऐसा है कि आप महीनों इसमें भटक सकते हैं। अतः वह आदमी आगे-आगे चलने लगा और सब यात्री पीछे-पीछे। जब स्टेशनके निकट पहुँचे और स्टेशनका प्रकाश दिखलाई पड़ने लगा तो उस उपकारी व्यक्तिकी इसलिए तलाश की जाने लगी कि उसे कुछ पारिश्रमिक दे दिया जाये। पर यह अत्यन्त आश्चर्यकी बात हुई कि उसका तलाश करनेपर भी पता नहीं चला। सभी लोग अचम्भित थे, आखिर वह उपकारी व्यक्ति कौन था, जो स्टेशन तक छोड़कर चला गया। अन्तमें लोगोंने निश्चय किया कि णमोकार मन्त्रके स्मरणके प्रभावसे किसी रक्षकदेवने ही उनकी यह सहायता की। एक बात यह भी कि वह व्यक्ति पास नहीं रहता था, आगे-आगे दूर-दूर ही चल रहा था कि आप लोग मेरे ऊपर अविश्वास मत कीजिए। मैं आपका सेवक और हितैषी हूँ। अतः यह लोगोंको निश्चय हो गया कि णमोकार मन्त्रके प्रभावसे किसी यक्षने इस प्रकारका कार्य किया है। यक्षके लिए इस प्रकारका कार्य करना असम्भव नहीं है।

पूज्य भगतजी सा० से यह भी मालूम हुआ कि णमोकार मन्त्रकी आराधनासे कई अवसरोंपर उन्होंने चमत्कारपूर्ण कार्य सिद्ध किये हैं। उनके सम्पर्कमें आनेवाले कई जैनेतरोंने इस मन्त्रकी साधनासे अपनी मनोकामनाओंको सिद्ध किया है। मैंने स्वयं उनके एक सिन्धी भक्तको देखा है जो णमोकार मन्त्रका श्रद्धानी है।

पूज्य बाबा भागीरथ वर्णी सन् १९३७-३८ में श्री स्याद्वाद महाविद्यालय काशीमें पधारे हुए थे। बाबाजीको णमोकार मन्त्रपर बड़ी भारी श्रद्धा थी। श्री छेदीलालजीके मन्दिरमें बाबाजी रहते थे। जाड़ेके दिन थे, बाबाजी धूपमें

बैठकर छतके ऊपर स्वाध्याय करते रहते थे। एक लंगूर कई दिनों तक वहाँ आता रहा। बाबाजी उसे बगलमें बैठाकर णमोकार मन्त्र सुनाते रहे। यह लंगूर भी आधा घण्टे तक बाबाजीके पास बैठता रहा। यह क्रम दस-पांच दिन तक चला। लड़कोंने बाबाजीसे कहा – "महाराज, यह चंचल जातिका प्राणी है, इसका क्या विश्वास, यह आपको किसी दिन काट लेगा।" पर बाबाजी कहते रहे "भय्या, ये तिर्यंच जातिके प्राणी णमोकार मन्त्रके लिए लालायित हैं, ये अपना कल्याण करना चाहते हैं। हमें इनका उपकार करना है।" एक दिन प्रतिदिनवाला लंगूर न आकर दूसरा आया और उसने बाबाजीको काट लिया, इसपर भी बाबाजी उसे णमोकार मन्त्र सुनाते रहे, पर वह उन्हें काटकर भाग गया। पूज्य बाबाजीको इस महामन्त्रपर बड़ी भारी श्रद्धा थी और वह इसका उपदेश सभीको देते थे।

एक सज्जन हथुआ मिलमें कार्य करते हैं, उनका नाम ललितप्रसादजी है। वह होम्योपैथिक औषधका वितरण भी करते हैं। णमोकारमन्त्रपर उन्हें बडी भारी श्रद्धा है। वह बिच्छू, ततैया, हड्डा आदिके विषको इस मन्त्र द्वारा ही उतार देते है। उसी मिलके कई व्यक्तियोने बतलाया कि बिच्छूका जहर इन्होंने कई बार णमोकार मन्त्र-द्वारा उतारा है। यों तो वह भगवान्के भक्त भी हैं; प्रतिदिन भगवान्की नियमित रूपसे पूजा करते हैं। किन्तु णमोकार मन्त्रपर उनका बड़ा भारी विश्वास है।

प्राचीन और आधुनिक अनेक उदाहरण इस प्रकारके विद्यमान हैं, जिनके आधारपर यह कहा जा सकता है कि णमोकार मन्त्रकी आराधनासे सभी प्रकारके

इष्ट-साधक और अनिष्ट निवारक णमोकार मन्त्र

अरिष्ट दूर हो जाते हैं और सभी अभिलाषाएँ पूर्ण होती हैं। इस मन्त्रके जापसे पुत्रार्थी पुत्र, धनार्थी धन और कीर्ति-अर्थी कीर्ति प्राप्त करते है। यह समस्त प्रकारकी ग्रह-बाधाओंको तथा भूत-पिशाचादि व्यन्तरोंकी पीड़ाओंको दूर करनेवाला है। 'मन्त्रशास्त्र और णमोकारमन्त्र' शीर्षकमें पहले कहा जा चुका है कि इसी महासमुद्रसे समस्त मन्त्रोंकी उत्पत्ति हुई है तथा उन मन्त्रोके जाप-द्वारा किन-किन अभीष्ट कार्योको सिद्ध किया जा सकता है। जब इस महामन्त्रके ध्यानसे आत्मा निर्वाणपद प्राप्त कर सकता है, तब तुच्छ सांसारिक कार्योंकी क्या गणना ?

ये तो आनुषंगिक रूपसे अपने-आप सिद्ध हो जाते है। 'तिलोयपण्णत्ति' के प्रथम अधिकारमें पंचपरमेष्ठीके नमस्कारको समस्त विघ्न-बाधाओंको दूर करनेवाल', ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, राग-द्वेषादि भावकर्म एवं शरीरादि नो कर्मोंको नाश करनेवाला बताया है। समस्त पापका नाशक होनेके कारण यह इष्टसाधक और अनिष्टविनाशक है। क्योंकि तीव्र पापोदयसे ही कार्यमे विघ्न उत्पन्न होते है तथा कार्य सिद्ध नही होता है। अतः पापविनाशक मंगलवाक्य होनेसे हो यह इष्टसाधक है। बताया गया है –

अब्भंतरदव्वमलं जीवपदेसे णिबद्धमिदि देहो।
भावमलं णादव्वं अणाण-दंसणादि परिणामो॥
अहवा बहुभेयगयं णाणावरणादिदव्वभावमलदेहा।
ताइं गालेइ पुढं जदो तदो मंगलं भणिदं॥
अहवा मंग सुक्खं लादिहु गेण्हेदि मंगलं तम्हा।
एदेण कज्जसिद्धिं मंगइ गच्छेदि गंथकत्तारो॥
पावं मलंति भण्णइ उवचारसरूवएण जीवाण।
तं मालेदि विणासं जेदि त्ति भणंति मंगलं केइ॥

अर्थात् – ज्ञानावरणादि कर्मरूपी पापरज जीवोके प्रदेशोंके साथ सम्बद्ध होनेके कारण आभ्यन्तर द्रव्यमल है तथा अज्ञान, अदर्शन आदि जीवके परिणाम भावमल है। अथवा ज्ञानावरणादि द्रव्यमलके और इस द्रव्यमलसे उत्पन्न परिणाम स्वरूप भावमलके अनेक भेद है। इन्हे यह णमोकार मन्त्र गलाता है, नष्ट करता है, इसलिए इसे मंगल कहा गया है अथवा यह मंग अर्थात् सुखको लाता है, इसलिए इसे मंगल कहा जाता है। इष्ट-साधक और अनिष्ट-विनाशक होनेके कारण समस्त कार्योंका आरम्भ इस मन्त्रके मंगल पाठके अनन्तर ही किया जाता है। अतः यह श्रेष्ठ मंगल है। जीवोंके पापको उपचारसे मल कहा जाता है, यह णमोकार मन्त्र इस पापका नाश करता है, जिससे अनिष्ट बाधाओका विनाश होता है और इष्ट कार्य सिद्ध होते है।

यह णमोकार मन्त्र समस्त हितोंको सिद्ध करनेवाला है इस कारण इसे सर्वोत्कृष्ट भाव-मंगल कहा गया है। 'मङ्ग्यते साध्यते हितमनेनेति मंगलम्' इस व्युत्पत्तिके अनुसार इसके द्वारा समस्त अभीष्ट कार्योंकी सिद्धि होती है।

इसमें इस प्रकारकी शक्ति वर्तमान है, जिसमें इसके स्मरणसे आत्मिक गुणोंकी उपलब्धि सहजमें हो जाती है। यह मन्त्र रत्नत्रयधर्म तथा उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि दस धर्मोंको आत्मामें उत्पन्न करता है अतः **"मङ्गं धर्मं लातीति मङ्गलम्"** यह व्युत्पत्ति की जाती है।

णमोकार मन्त्रका भावपूर्वक उच्चारण संसारके चक्रको दूर करनेवाला है, तथा संवर और निर्जराके द्वारा आत्मस्वरूपको प्राप्त करनेवाला है। आचार्योंने इसी कारण बताया है कि **"मं भवात् संसारात् गालयति अपनयतीति मंगलम्"** अर्थात् यह संसार चक्रसे छुडाकर जीवोंको निर्वाण देता है और इसके नित्य मनन-चिन्तन और ध्यानसे सभी प्रकारके कल्याणोंकी प्राप्ति होती है। इस पंचम कालमें संसारत्रस्त जीवोंको सुन्दर सुशीतल छाया प्रदान करनेवाला कल्पवृक्ष यह महामन्त्र ही है। दुर्गति, पाप और दुराचरणसे पृथक् सद्गति, पुण्य और सदाचार-के मार्गमें यह लगानेवाला है। इस महामन्त्रके जपसे सभी प्रकारकी आधि-व्याधियाँ दूर हो जाती है और सुख-सम्पत्तिकी वृद्धि होती है। अतः अहितरूपी पाप या अधर्मका ध्वंस कर यह कल्याणरूपी धर्मके मार्गमें लगाता है। बड़ीसे बड़ी विपत्तिका नाश णमोकार मन्त्रके प्रभावसे हो जाता है। द्रौपदीका चीर बढना, अंजन-चोरके कष्टका दूर होना, सेठ सुदर्शनका शूलीसे उतरना, सीताके लिए अग्निकुण्डका जलकुण्ड बनना, श्रीपालके कुष्ठ रोगका दूर होना, अंजना सतीके सतीत्वकी रक्षाका होना, सेठके घरके दारिद्र्यका नष्ट होना आदि समस्त कार्य णमोकार मन्त्र और पंचपरमेष्ठीकी भक्तिके द्वारा ही सम्पन्न हुए हैं।

इस महामन्त्रके एक-एक पदका जाप करनेसे नवग्रहोंकी बाधा शान्त होती है। णमोकारादि मन्त्र संग्रहमें बताया गया है कि **'ओं णमो सिद्धाणं'** के दस हजार जापसे सूर्यग्रहकी पीड़ा, **'ओं णमो अरिहंताणं'** के दस हजार जापसे चन्द्रग्रहकी पीड़ा, **'ओ णमो सिद्धाणं'** के दस हजार जापसे मंगलग्रहकी पीड़ा, 'ओं णमो उवज्झायाणं' के दस हजार जापसे बुधग्रहकी पीड़ा, **'ओं णमो आइरियाणं'** के दस हजार जापसे गुरुग्रहकी पीड़ा, **'ओं णमो अरिहंताणं'** के दस हजार जापसे शुक्रग्रहकी पीड़ा और **'ओं णमो लोए सव्वसाहूणं'** के दस हजार जापसे शनिग्रहकी पीड़ा दूर होती है। राहुकी पीड़ाकी शान्तिके लिए समस्त णमोकार मन्त्रका जाप 'ओं' छोड़कर अथवा **'ओं ह्रीं णमो अरिहंताणं'**

मन्त्रका ग्यारह हजार जाप तथा केतुकी पीड़ाकी शान्तिके लिए 'ओं' जोड़कर समस्त णमोकार मन्त्रका जाप अथवा 'ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं' पदका ग्यारह हजार जाप करना चाहिए। भूत, पिशाच और व्यन्तर बाधा दूर करनेके लिए णमोकार मन्त्रका जाप निम्न प्रकारसे करना होता है। इक्कीस हजार जाप करनेके उपरान्त मन्त्र सिद्ध हो जाता है। सिद्ध हो जानेपर ९ बार पढ़कर झाड़ देनेसे व्यन्तर बाधा दूर हो जाती है। मन्त्र यह है –

'ओं णमो अरिहंताणं, ओं णमो सिद्धाणं, ओं णमो आइरियाणं, ओं णमो उवज्झायाणं, ओं णमो लोए सव्वसाहूणं। सर्वदुष्टान् स्तम्भय स्तम्भय मोहय मोहय अन्धय अन्धय मूकवत्कारय कारय ह्रीं दुष्टान् ठः ठः ठः।' इस मन्त्र-द्वारा एक ही हाथ-द्वारा खीचे गये जलको मन्त्र सिद्ध होनेपर ९ बार और सिद्ध नहीं होनेपर १०८ बार मन्त्रित करना होता है। पश्चात् णमोकार मन्त्र पढ़ते हुए इस जलसे व्यन्तराक्रान्त व्यक्तिको घोट देनेसे व्यन्तर, भूत, प्रेत और पिशाचकी बाधा दूर हो जाती है।

इस मन्त्रका धर्मकार्य और मोक्ष प्राप्तिके लिए अंगुष्ठ और तर्जनीसे, शान्तिके लिए अंगुष्ठ और मध्यमा अंगुलीसे, सिद्धिके लिए अंगुष्ठ और अनामिकासे एवं सर्वसिद्धिके लिए अंगुष्ठ और कनिष्ठासे जाप करना होता है। सभी कार्योंकी सिद्धिके लिए पंचवर्ण पुष्पोंकी मालासे, दुष्ट और व्यन्तरोंके स्तम्भनके लिए मणियोंकी मालासे, रोग-शान्ति और पुत्र-प्राप्तिके लिए मोतियोंकी माला या कमलगट्टोंकी मालासे एवं शत्रूच्चाटनके लिए रुद्राक्षकी मालासे णमोकार मन्त्रका जाप करना चाहिए। हाथकी अंगुलियोंपर इस महामन्त्रका जाप करनेसे दसगुना पुण्य, रेखा खींचकर जाप करनेसे आठगुना पुण्य, मूँगाकी मालासे जाप करनेपर हजार गुना पुण्य, लवंगोंकी मालासे जाप करनेसे पाँच हजार गुना पुण्य, स्फटिककी मालासे जाप करनेसे दस हजार गुना पुण्य, मोतीकी मालासे जाप करनेपर लाख गुना पुण्य, कमलगट्टोंकी मालासे जाप करनेपर दसलाख गुना पुण्य और सोनेकी मालासे जाप करनेपर करोड़ गुना पुण्य होता है। मालाके साथ भावोंकी शुद्धि भी अपेक्षित है।

मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण, स्तम्भन आदि सभी प्रकारके कार्य इस मन्त्रकी साधनाके द्वारा साधक कर सकता है। यह मन्त्र तो सभीका हित-

साधक है, पर साधन करनेवाला अपने भावोंके अनुसार मारण, मोहनादि कार्योंको सिद्ध कर लेता है। मन्त्र साधनामें मन्त्रकी शक्तिके साथ साधककी शक्ति भी कार्य करती है। एक ही मन्त्रका फल विभिन्न साधकोंको उनकी योग्यता, परिणाम, स्थिरता आदिके अनुसार भिन्न-भिन्न मिलता है। अतः मन्त्रके साथ साधकका भी महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है। वास्तविक बात यह है कि यह मन्त्र ध्वनिरूप है और भिन्न-भिन्न ध्वनियाँ अ से लेकर ज्ञ तक भिन्न शक्ति स्वरूप हैं। प्रत्येक अक्षरमें स्वतन्त्र शक्ति निहित है, भिन्न-भिन्न अक्षरोंके संयोगसे भिन्न-भिन्न प्रकारकी शक्तियाँ उत्पन्न की जाती हैं। जो व्यक्ति उन ध्वनियोंका मिश्रण करना जानता है, वह उन मिश्रित ध्वनियोंके प्रयोगसे उसी प्रकारके शक्तिशाली कार्यको सिद्ध कर लेता है। णमोकार मन्त्रका ध्वनि-समूह इस प्रकारका है कि इसके प्रयोगसे भिन्न-भिन्न प्रकारके कार्य सिद्ध किये जा सकते हैं। ध्वनियोंके घर्षणसे दो प्रकारकी विद्युत् उत्पन्न होती है – एक धनविद्युत् और दूसरी ऋण विद्युत्। धनविद्युत् शक्ति-द्वारा बाह्य पदार्थोंपर प्रभाव पड़ता है और ऋणविद्युत् शक्ति अन्तरंगकी रक्षा करती है, आजका विज्ञान भी मानता है कि प्रत्येक पदार्थमें दोनों प्रकारकी शक्तियाँ निवास करती हैं। मन्त्रका उच्चारण और मनन इन शक्तियोंका विकास करता है। जिस प्रकार जलमें छिपी हुई विद्युत्-शक्ति जलके मन्थनसे उत्पन्न होती है, उसी प्रकार मन्त्रके बार-बार उच्चारण करनेसे मन्त्रके ध्वनि-समूहमे छिपी शक्तियाँ विकसित हो जाती हैं। भिन्न-भिन्न मन्त्रोंमें यह शक्ति भिन्न-भिन्न प्रकारकी होती है तथा शक्तिका विकास भी साधककी क्रिया और उसकी शक्तिपर निर्भर करता है। अतएव णमोकार मन्त्रकी साधना सभी प्रकारके अभीष्टोंको सिद्ध करनेवाली और अनिष्टोंको दूर करनेवाली है। यह लेखकका अनुभव है कि किसी भी प्रकारका सिरदर्द हो, इक्कीस णमोकार मन्त्र-द्वारा लौग मन्त्रित कर रोगीको खिला देनेसे सिरदर्द तत्काल बन्द हो जाता है। एक दिन बीच देकर आनेवाले बुखारमें केसर-द्वारा पीपलके पत्तेपर णमोकार मन्त्र लिखकर रोगीके हाथमें बाँध देनेसे बुखार नही आता है। पेट दर्दमें कपूरको णमोकार मन्त्र-द्वारा मन्त्रित कर खिला देनेसे पेटदर्द तत्काल रुक जाता है। लक्ष्मी-प्राप्तिके लिए जो प्रतिदिन प्रातःकाल स्नानादि क्रियाओंसे पवित्र होकर "ओं श्रीं क्लीं णमो अरिहंताणं ओं श्रीं क्लीं णमो सिद्धाणं ओं श्रीं क्लीं णमो आइरियाणं ओं

श्रीं क्लीं णमो उवज्झायाणं ओं श्रीं क्लीं णमो लोए सव्वसाहूणं" इस मन्त्रका १०८ बार पवित्र शुद्ध धूप देते हुए जाप करते हैं, उन्हें निश्चयतः लक्ष्मी प्राप्ति होती है। इन सब साधनाओंके लिए एक बात आवश्यक है कि मन्त्रके ऊपर श्रद्धा रहनी चाहिए। श्रद्धाके अभावमें मन्त्र फलदायक नहीं हो सकता है। अतएव निष्कर्ष यह है कि इस कलिकालमें समस्त पापोंका ध्वंसक और सिद्धियोंको देनेवाला णमोकारमन्त्र ही है। कहा गया है –

जापाज्जयेत्क्षयमरोचकमग्निमान्द्यं
कुष्ठोदरामकसनश्वसनादिरोगान् ।
प्राप्नोति चाप्रतिमवाग् महतीं महद्भ्यः
पूजां परत्र च गतिं पुरुषोत्तमाप्ताम् ॥
कोकद्विष्टप्रियावश्यघातकादेः स्मृतोऽपि यः ।
मोहनोच्चाटनाकृष्टि-कार्मणस्तम्भनादिकृत् ॥
दूरयत्यापदः सर्वाः पूरयत्यत्र कामनाः ॥
राज्यस्वर्गापवर्गास्तु ध्यातो योऽमुत्र यच्छति ॥

विश्वके लिए वही आदर्श मान्य हो सकता है, जिसमें किसी सम्प्रदाय-विशेषकी छाप न हो। अथवा जो आदर्श प्राणीमात्रके लिए उपादेय हो, वही विश्वको प्रभावित कर सकता है। णमोकार महामन्त्रका आदर्श किसी सम्प्रदायविशेषका आदर्श नहीं है। इसमें नमस्कार की गयी आत्माएँ अहिंसाकी विशुद्ध मूर्ति हैं। अहिंसा ऐसा धर्म है, जिसका पालन प्राणीमात्र कर सकता है और इस आदर्श-द्वारा सबको सुखी बनाया जा सकता है। जब व्यक्तिमें अहिंसा धर्म पूर्णरूपसे

विश्व और णमोकार मन्त्र

प्रतिष्ठित हो जाता है तब उसके दर्शन और स्मरणसे सभीका सर्वत्र कल्याण होता है। कहा भी गया है कि – **"अहिंसा-प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः"** अर्थात् अहिंसाकी प्रतिष्ठा हो जानेपर व्यक्तिके समक्ष क्रूर और दुष्ट जीव भी अपनी वैरभावनाका त्याग कर देते हैं। जहाँ अहिंसक रहता है, वहाँ दुष्काल, महामारी, आकस्मिक विपत्तियाँ एवं अन्य प्रकारके दुःख प्राणीमात्रको व्याप्त नहीं होते। अहिंसक व्यक्तिके सन्निधानमें समस्त प्राणियोंको सुख-शान्ति मिलती है। अहिंसककी आत्मामें इतनी शक्ति उत्पन्न हो जाती है, जिसमें उसके निकटवर्ती वातावरणमें

पूर्ण शान्ति व्याप्त हो जाती है।

जो प्रभाव अहिंसकके प्रत्यक्ष रहनेसे होता है, वही प्रभाव उसके नाम और गुणोके स्मरणसे भी होता है। विशिष्ट व्यक्तियोंके गुणोंके चिन्तनसे सामान्य व्यक्तियोंके हृदयमें अपूर्व उल्लास, आनन्द, तृप्ति एवं तद्रूप बननेकी प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। णमोकार मन्त्रमें प्रतिपादित विभूतियोंमें विश्वकल्याणकी भावना विशेष रूपसे अन्तर्निहित है। स्वयं शुद्ध हो जानेके कारण ये आत्माएँ संसारके जीवोंको सत्यमार्गका प्ररूपण करनेमें समर्थ हैं तथा विश्वका प्राणीवर्ग उस कल्याणकारी पक्षका अनुसरण कर अपना हित साधन कर सकता है।

विश्वमें कीट-पतंगसे लेकर मानव तक जितने प्राणी हैं, सब सुख और आनन्द चाहते है। वे इस आनन्दकी प्राप्तिमें पर-वस्तुओंको अपना समझते हैं। तृष्णा, मोह, राग, द्वेष आदि मनोवेगोंके कारण नाना प्रकारके कु-आचरण कर भी सुख प्राप्त करनेकी इच्छा करते है। परन्तु विश्वके प्राणियोंको सुख प्राप्त नही हो पाता है। अहिंसक स्वपर कल्याणकारक आत्माओंका आदर्श ऐसा ही है जिसके द्वारा सभी अपना विश्वास और कल्याण कर सकते है। जिन पर-वस्तुओंको भ्रमवश अपना समझनेके कारण अशान्तिका अनुभव करना पड़ रहा है, उन सभी वस्तुओंसे मोहबुद्धि दूर हो सकती है। अनात्मिक भावनाएँ निकल जाती है और आत्मिक प्रवृत्ति होने लगती है। जबतक व्यक्ति भौतिकवादकी ओर झुका रहता है, असत्यको सत्य समझता है, तबतक वह संसार-परिभ्रमणको दूर नहीं कर सकता। णमोकार मन्त्रकी भावना व्यक्तिमें समृद्धि जागृत करती है, उसमें आत्माके प्रति अटूट आस्था उत्पन्न करती है, तत्त्वज्ञानको उत्पन्न कर आत्मिक विकासके लिए प्रेरित करती है और बनाती है व्यक्तिको आत्मवादी।

यह मानी हुई बात है कि विश्वकल्याण उसी व्यक्तिसे हो सकता है, जो पहले अपनी भलाई कर चुका हो। जिसमें स्वयं दोष, गलती, बुराई एवं दुर्गुण होंगे, वह अन्यके दोषोंका परिमार्जन कभी नही कर सकता है और न उनका आदर्श समाजके लिए कल्याणप्रद हो सकता है। कल्याणमयी प्रवृत्तियाँ तभी सम्भव है, जब आत्मा स्वच्छ और निर्मल हो जाये। अशुद्ध प्रवृत्तियोंके रहनेपर कल्याणमयी प्रवृत्ति नही हो सकती और न व्यक्ति त्यागमय जीवनको अपना सकता है। व्यक्ति, राष्ट्र, देश, समाज, परिवार और स्वयं अपनी उन्नति स्वार्थ,

मोह और अहंकारके रहते हुए कभी नहीं हो सकती है। अतएव णमोकार मन्त्रका आदर्श विश्वके समस्त प्राणियोंके लिए उपादेय है। इस आदर्शके अपनानेसे सभी अपना हितसाधन कर सकते हैं।

इस महामन्त्रमें किसी दैवी शक्तिको नमस्कार नहीं किया गया है, किन्तु उन शुद्ध प्रवृत्तिवाले मानवोंको नमस्कार किया है, जिनके समस्त क्रिया-व्यापार मानव समाजके लिए किसी भी प्रकारका पीडादायक नहीं होते हैं। दूसरे शब्दोंमें यों कहना चाहिए कि इस मन्त्रमें विकाररहित – सांसारिक प्रपंचसे दूर रहनेवाले मानवोंको नमस्कार किया गया है। इन विशुद्ध मानवोंने अपने पुरुषार्थ-द्वारा काम, क्रोध, लोभ, मोहादि विकारोंको जीत लिया है, जिससे इनमें स्वाभाविक गुण प्रकट हो गये है। प्रायः देखा जाता है कि साधारण मनुष्य अज्ञान और राग-द्वेषके कारण स्वयं गलती करता है तथा गलत उपदेश देता है। जब मनुष्यकी उक्त दोनों कमजोरियाँ निकल जाती हैं तब व्यक्ति यथार्थ ज्ञाता द्रष्टा हो जाता है और अन्य लोगोंको भी यथार्थ बातें बतलाता है। पंचपरमेष्ठी इसी प्रकारके शुद्धात्मा है, उनमें रत्नत्रय गुण प्रकट हो गया है, अतः वे परमात्मा भी कहलाते है। इनका नैसर्गिक वेष वीतरागताका सूचक होता है। ये निर्विकारी आत्मा विश्वके समस्त प्राणियोंका हित साधन कर सकते है। यदि विश्वमें इस महामन्त्रके आदर्शका प्रचार हो जाये तो आज जो भौतिक संघर्ष हो रहा है, एक राष्ट्रका मानव समुदाय अपनी परिग्रह-पिपासाको शान्त करनेके लिए दूसरे देशके मानव समूहको परमाणु बमका निशान बना रहा है, शीघ्र दूर हो जाये। मैत्री भावनाका प्रचार, अहंकार और ममताका त्याग इस मन्त्र-द्वारा ही हो सकता है, अतः विश्वके प्राणियोंके लिए बिना किसी भेद-भावके यह महामन्त्र शान्ति और सुखदायक है। इसमें किसी मत, सम्प्रदाय या धर्मकी बात नहीं है। जो भी आत्मवादी हैं, उन सबके लिए यह मन्त्र उपादेय है।

मंगलवाक्यों, मूलमन्त्रों और जीवनके व्यापक सत्योंका सम्बन्ध संस्कृतिके साथ अनादि कालसे चला आ रहा है। संस्कृति मानव जीवनकी वह अवस्था है, जहाँ उसके प्राकृतिक राग-द्वेषोंका परिमार्जन हो जाता है। वास्तवमें सामाजिक और वैयक्तिक जीवनकी आन्तरिक मूल प्रवृत्तियोंका समन्वय ही संस्कृति है। संस्कृतिको प्राप्त करनेके

जैन-संस्कृति और णमोकार मन्त्र

लिए जीवनके अन्तस्तलमें प्रवेश करना पड़ता है। स्थूल शरीरके आवरणके पीछे जो आत्माका सच्चिदानन्द रूप छिपा है, संस्कृति उसे पहचाननेका प्रयत्न करती है। शरीरसे आत्माकी ओर, जड़से चैतन्यकी ओर, रूपसे भावकी ओर बढ़ना ही संस्कृतिका ध्येय है। यों तो संस्कृतिका व्यक्तरूप सभ्यता है, जिसमें आचार-विचार, विश्वास-परम्पराएँ, शिल्प-कौशल आदि शामिल हैं। जैन संस्कृतिका तात्पर्य है कि आत्माके रत्नत्रय गुणको उत्पन्न कर बाह्य जीवनको उसीके अनुकूल बनाना तथा अनात्मिक भावोंको छोड़ आत्मिक भावोंको ग्रहण करना। अतएव जैन संस्कृतिमें जीवनादर्श, धार्मिक आदर्श, सामाजिक आदर्श, पारिवारिक आदर्श, आस्था और विश्वास-परम्पराएँ, साहित्यकला आदि चीजें अन्तर्भूत हैं। यों तो जैन संस्कृतिमें वे ही चीजें आती हैं, जो आत्मशोधनमें सहायक होती हैं, जिनसे रत्नत्रय गुणका विकास होता है। यही कारण है कि जैन संस्कृति अहिंसा, परिग्रह, त्याग, संयम, तप आदिपर जोर देती चली आ रही है।

आत्मसमत्व और वीतरागत्वकी भावनासे कोई भी प्राणी धर्मकी शीतल छायामें बैठ सकता है। वह अपना आत्मिक विकास कर अहिंसाकी प्रतिष्ठा कर सकता है। यों तो जैन संस्कृतिके अनेक तत्त्व हैं, पर णमोकार महामन्त्र ऐसा तत्त्व है, जिसके स्वरूपका परिज्ञान हो जानेपर इस संस्कृतिका रहस्य अवगत करनेमें अत्यन्त सरलता होती है। णमोकारमन्त्रमें रत्नत्रयगुण विशिष्ट शुद्ध आत्माको नमस्कार किया है। जिन आत्माओंने अहिंसाको अपने जीवनमें पूर्णतः उतार लिया है, जिनकी सभी क्रियाएँ अहिंसक है, ये आत्माएँ जैन संस्कृतिकी साक्षात् प्रतिमाएँ हैं। उनके नमस्कारसे आदर्श जीवनकी प्राप्ति होती है। पंच महाव्रतोंका पालन करनेवाले आत्मस्वरूपके ज्ञाता-द्रष्टा परमेष्ठियोंका वेष संसारके सभी वेषोंसे परे है। लाल-पीले तरह-तरहके वस्त्र धारण करना, डण्डा-लाठी आदि रखना, जटाएँ धारण करना, शरीरमें भभूत लगाना आदि अनेक प्रकारके वेष हैं; किन्तु नग्नता वेषातीत है, इसमें किसी भी प्रकारके वेषको नहीं अपनाया गया है। पंचपरमेष्ठी निर्ग्रन्थ रहकर सत्यका मार्ग अन्वेषण करते हैं। उनकी क्रियाएँ – मन, वचन और शरीरकी क्रियाएँ पूर्ण अहिंसक होती हैं। राग-द्वेष, जिनके कारण जीवनमें हिंसाका प्रवेश होता है, इन आत्माओंमें नहीं पाये जाते।

विकार दूर होनेसे शरीरपर इनका इतना अधिकार हो जाता है कि पूर्ण अहिंसक हो जानेपर भोजनकी भी इन्हें आवश्यकता नहीं रहती। समदृष्टि हो जानेसे सांसारिक प्रलोभन अपनी ओर खीच नही पाते है। द्रव्य और पर्याय उभय दृष्टिसे शुद्ध परमात्मस्वरूप ये आत्मा होते है। जैन संस्कृतिका मुख्य उद्देश्य निर्मल आत्मतत्त्वको प्राप्त कर शाश्वत सुख-निर्वाण लाभ है। शुद्धात्माओंका आदर्श सामने रहनेसे तथा शुद्धात्माओंके आदर्शका स्मरण, चिन्तन और मनन करनेसे शुद्धत्वकी प्राप्ति होती है, जीवन पूर्ण अहिंसक बनता है। स्वामी समन्तभद्रने अपने बृहत्स्वयंभूस्तोत्रमें शीतलनाथ भगवान्‌की स्तुति करते हुए कहा है –

> सुखाभिलाषानलदाहमूर्च्छितं मनो निजं ज्ञानमयामृताम्बुभिः।
> व्यदिध्ययस्त्वं विषदाहमोहितं यथा भिषग्मन्त्रगुणैः स्वविग्रहम् ॥
> स्वजीविते कामसुखे च तृष्णया दिवा श्रमार्ता निशि शेरते प्रजाः।
> त्वमार्य नक्तंदिवमप्रमत्तवानजागरेवात्मविशुद्धवर्त्मनि ॥

अर्थात् – जैसे वैद्य या मन्त्रवित् मन्त्रोंके उच्चारण, मनन और ध्यानसे सर्पके विषसे सन्तप्त मूर्च्छाको प्राप्त अपने शरीरको विषरहित कर देता है, वैसे ही आपने इन्द्रिय-विषयसुखको तृष्णारूपी अग्निकी जलनसे मोहित, हेयोपादेयके विचारशून्य अपने मनको आत्मज्ञानमय अमृतकी वर्षासे शान्त कर दिया है। संसारके प्राणी अपने इस जीवनको बनाये रखने और इन्द्रियसुखको भोगनेकी तृष्णासे पीड़ित होकर दिनमे तो नाना प्रकारके परिश्रम कर थक जाते हैं और रात होनेपर विश्राम करते है। किन्तु हे प्रभो ! आप तो रात-दिन प्रमादरहित होकर आत्माको शुद्ध करनेवाले मोक्षमार्गमें जागते ही रहते है।

उपर्युक्त विवेचनसे यह स्पष्ट है कि पंचपरमेष्ठीका स्वरूप शुद्धात्मामय है अथवा शुद्धात्माकी उपलब्धिके लिए प्रयत्नशील आत्माएँ हैं। इनको समस्त क्रियाएँ आत्माधीन होती हैं, स्वावलम्बन इनके जीवनमें पूर्णतया आ जाता है क्योंकि कर्मादिमलसे छूटकर अनन्तज्ञानादि गुणोके स्वामी होकर आत्मानन्दमे नित्य मग्न रहना, यही जीवनका सच्चा प्रयोजन है। पंचपरमेष्ठीकी आत्माएँ इन प्रयोजनोंको सिद्ध कर लेती है या इनकी सिद्धिके लिए प्रयत्नशील है। आत्मा अनादि, स्वतः सिद्ध, उपाधिहीन एवं निर्दोष हैं। अस्त्र-शस्त्रोंसे इसका छेदन नहीं

हो सकता, जलप्लावनमे यह भीग नही सकता, आगसे जल नहीं सकता, पवनसे सूख नही सकता और धूपसे कभी निस्तेज नही हो सकता है। ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, सम्यक्त्व, अगुरुलघुत्व आदि आठ गुण इस आत्मामें विद्यमान हैं। ये गुण इस आत्माके स्वभाव है, आत्मासे अलग नहीं हो सकते है। णमोकार मन्त्रमें प्रतिपादित पंचमेष्ठी उक्त गुणोंको प्राप्त कर लेते है अथवा पंचपरमेष्ठियोंमे-से जिन्होंने उन गुणोंको प्राप्त नही भी किया है वे प्राप्त करनेका उपक्रम करते है। इस स्थूल शरीरके द्वारा वे अपनी आत्म-साधनामे सर्वदा संलग्न रहते है।

ये अहिंसाके साथ तप और त्यागकी भावनाका अनिवार्यरूपसे पालन करते है, जिससे राग-द्वेष आदि मलिन वृत्तियोपर सहजमे विजय पाते है। इनके आचार और विचार दोनो शुद्ध होते है। आचारकी शुद्धिके कारण ये पशु, पक्षी, मनुष्य, कीट, पतंग, चीटी आदि त्रस जीवोंकी रक्षाके साथ पार्थिव, जलीय, आग्नेय, वायवीय आदि सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्राणियों तककी हिंसासे आत्मौपम्यकी भावना-द्वारा पूर्णतया निवृत्त रहते है। विचार-शुद्धि होनेमे इनको साम्यदृष्टि रहती है; पक्षपात, राग, द्वेष, संकीर्णता इनके पास फटकने भी नही पाती। प्रमाण और नयवादके द्वारा अपने विचारोंका परिष्कार कर ये सत्य दृष्टिको प्राप्त करते है।

णमोकारमन्त्रमे निरूपित आत्माओंका एकमात्र उद्देश्य मानवताका कल्याण करना है। ये पाँचों ही प्राणीमात्रके लिए परम उपकारी है। अपने जीवनके त्याग, तपश्चरण, तत्त्वज्ञान और आचरण-द्वारा समस्त प्राणियोंका हित साधन करते है। उनकी कोई भी क्रिया, किसी भी प्राणीके लिए बाधक नही हो सकती है। ये स्वयं संसार-भ्रमण – जन्म, मरणके चक्रसे छुटकारा प्राप्त करते हैं तथा अन्य जीवोंको भी अपने शारीरिक या वाचनिक प्रभाव-द्वारा इस संसार-चक्रसे छूट जानेका उपाय बतलाते है। अतएव णमोकारमन्त्र जैन संस्कृतिका अन्तरंग रूप भावशुद्धि-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्आचरण आदिके साथ है। इस मन्त्रके आदर्शसे तप और त्यागके मार्गपर बढ़नेकी प्रेरणा, अहिंसा और अपरिग्रहको आचरणमे उतारनेकी शिक्षा, विश्वबन्धुत्व और आत्मकल्याणकी कामना उत्पन्न होती है। इस महामन्त्रमे व्यक्तिकी अपेक्षा गुणोंकी महत्ता दी गयी है। अतः यह रत्नत्रयरूप संस्कृतिकी प्राप्तिके लिए साधकको आगे बढ़ाता है। उसके सामने पंचपरमेष्ठियोंका आचरण प्रस्तुत करता है, जिससे कोई भी व्यक्ति आत्मा-

को संस्कृत कर सकता है। आत्माका सच्चा संस्कार त्याग-द्वारा ही होता है, इससे राग-द्वेषोंका परिमार्जन होता है और संयमकी प्रवृत्ति भी प्राप्त होती है। अन्तरंग आत्माको रत्नत्रयके द्वारा ही सजाया जाता है, इसके बिना आत्माका संस्कार कभी भी सम्भव नहीं। णमोकारमन्त्रका आदर्श अरूपी, अकर्मा, अभोक्ता, चैतन्यमय, ज्ञानादि परिणामोंका कर्ता और भोक्ताको अनुभूतिमें लाना है। जिस प्रशम गुण – कषायभावसे आत्मामें परमानन्द आया, वह भी इसीके आदर्शमें मिलता है। अतः जैन संस्कृतिका वास्तविक आदर्श इस महान् मन्त्र-द्वारा ही प्राप्त होता है।

बाह्य जैन संस्कृति सामाजिक एवं पारिवारिक विकास, उपासना-विधान, साहित्य, ललितकलाएँ, रहन-सहन, खान-पान आदि रूपमें है। इन बाह्य जैन संस्कृतिके अंगोंके साथ भी णमोकारमन्त्रका सम्बन्ध है। उक्त संस्कृतिके स्थूल अवयव भी इसके द्वारा अनुप्राणित है। निष्कर्ष यह है कि इस महामन्त्रके आदर्श मूल प्रवृत्तियों, वासनाओं और अनुभूतियोंको नियन्त्रित करनेमें समर्थ है। नैतिक जीवन-वृद्धि-द्वारा नियन्त्रित इन्द्रिय-परता इस आदर्शका फल है। अतएव निवृत्ति-प्रधान जैन संस्कृतिकी प्राप्ति इस महामन्त्र-द्वारा होती है। अतः णमोकार मन्त्रका आदर्श, जिसके अनुकरणपर जीवनके आदर्शका निर्माण किया जाता है, त्याग और पूर्ण अहिंसकमय है। इस मन्त्रसे जैन संस्कृतिकी सारी रूप-रेखा सामने प्रस्तुत हो जाती है। मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी भी किस प्रकार अपने विकारोंके त्याग और जीवनके नियन्त्रणसे अपने आत्माको संस्कृत कर चुके हैं। संस्कृतिका एक स्पष्ट मानचित्र अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुका नाम स्मरण करते ही सामने प्रस्तुत हो जाता है। इस सत्यसे कोई इनकार नहीं कर सकता है कि व्यक्तिकी अन्तरंग और बहिरंग रूपाकृति ही उसका आदर्श है, यह आदर्श अन्य व्यक्तियोंके लिए जितना उपयोगी एवं प्रभावोत्पादक हो सकता है, उस व्यक्तिकी संस्कृतिको उतना ही प्रभावित कर सकता है। पंचपरमेष्ठी-द्वारा स्वावलम्बन और स्वातन्त्र्यके भाव जागृत होते हैं। कर्तापनेकी भावना, जिसके कारण व्यक्ति परमुखापेक्षी रहता है और अपने उद्धार एवं कल्याणके लिए अन्यकी सहायताकी अपेक्षा करता रहता है, जैन संस्कृतिके विपरीत हैं। इस महामन्त्रका आदर्श स्वयं ही अपने पुरुषार्थ-द्वारा साधु अवस्था धारण कर सिद्ध

अवस्था प्राप्त करनेकी ओर संकेत करता है। अतएव णमोकारमन्त्र जैन संस्कृतिका सच्चा और स्पष्ट मानचित्र प्रस्तुत कर देता है।

उपसंहार

णमोकारमन्त्र प्रत्येक व्यक्तिको सभी प्रकारसे सुखदायी है। इस महामन्त्र-द्वारा व्यक्तिको तीनों प्रकारके कर्तव्यों — आत्माके प्रति, दूसरोंके प्रति और शुद्धात्माओंके प्रति — का परिज्ञान हो जाता है। आत्माके प्रति किये जानेवाले कर्तव्योंमें नैतिक कर्तव्य, सौन्दर्यविषयक कर्तव्य, बौद्धिक कर्तव्य, आर्थिक कर्तव्य और भौतिक कर्तव्य परिगणित हैं। इन समस्त कर्तव्योंपर विचार करनेसे प्रतीत होता है कि इस महामन्त्रके आदर्शसे हमें अपनी प्रवृत्तियों, वासनाओं, इच्छाओं और इन्द्रिय वेगोंपर नियन्त्रण करनेकी प्रेरणा मिलती है। आत्मसंयम और आत्मसम्मानकी भावना जागृत होती है। दूसरोंके प्रति सम्पन्न किये जानेवाले कर्तव्योंमें कुटुम्बके प्रति, समाजके प्रति, देशके प्रति, नगरके प्रति, मनुष्योंके प्रति, पशुओंके प्रति और पेड-पौधोंके प्रति कर्तव्योंका समावेश होता है। दूसरोंके प्रति कर्तव्य सम्पादन करनेमें तीन बातें प्रधानरूपसे आती हैं — सचाई, समानता और परोपकार। ये तीनों बातें णमोकार मन्त्रकी आराधनासे ही प्राप्त हो सकती हैं। इस महामन्त्रका आदर्श हमारे जीवनमें उक्त तीनों बातोंको उत्पन्न करता है। शुद्धात्मा — परमात्माके प्रति कर्तव्यमें भक्ति और ध्यानको स्थान प्राप्त होता है। हमें नित्य प्रति शुद्धात्माओंकी पूजा कर उनके आदर्श गुणोंको अपने भीतर उत्पन्न करनेका प्रयास करना होगा। केवल णमोकार मन्त्रका ध्यान, उच्चारण और स्मरण उपर्युक्त तीनों प्रकारके कर्तव्योंके सम्पादनमें परम सहायक है।

प्रायः लोग आशंका किया करते हैं कि बार-बार एक ही मन्त्रके जापसे कोई नवीन अर्थ तो निकलता नहीं है, फिर ज्ञानमें विकास किस प्रकार होता है? आत्माके राग-द्वेष विचार एक ही मन्त्रके निरन्तर जपनेसे कैसे दूर हो जाते है? एक ही पद या श्लोक बार-बार अभ्यासमें लाया जाता है, तब उसका कोई विशेष प्रभाव आत्मापर नहीं पड़ता है। अतः मंगलमन्त्रोंके बार-बार जापकी क्या आवश्यकता है? विशेषतः णमोकार मन्त्रके सम्बन्धमें यह आशंका और भी अधिक सबल हो जाती है; क्योंकि जिन मन्त्रोंके स्वामी यक्ष, यक्षिणी या अन्य कोई शासक देव माने जाते हैं, उन मन्त्रोंके बार-बार उच्चारणका अभिप्राय उनके

अधिकारी देवोंको बुलाना या सर्वदा उनके साथ अपना सम्पर्क बनाये रखना है। पर जिस मन्त्रका अधिकारी कोई शासक देव नहीं है, उस मन्त्रके बार-बार पठन और मननसे क्या लाभ ?

इस आशंकाका उत्तर एक गणितके विद्यार्थीकी दृष्टिसे बड़े सुन्दर ढंगसे दिया जा सकता है। दशमलवके गणितमें आवर्त संख्या बार-बार एक ही आती है, पर प्रत्येक दशमलवका एक नवीन अर्थ एवं मूल्य होता है। इसी प्रकार णमोकार मन्त्रके बार-बार उच्चारण और मननका प्रत्येक बार नूतन ही अर्थ होगा। प्रत्येक उच्चारण रत्नत्रय गुण विशिष्ट आत्माओंके अधिक समीप ले जायेगा। वह साधक जो निश्छल भावसे अटूट श्रद्धाके साथ इस महामन्त्रका स्मरण करता है, इसके जाप-द्वारा उत्पन्न होनेवाली शक्तिको समझता है। विषयकषायको जीतनेके लिए इस महामन्त्रका जाप अमोघ अस्त्र है। पर इतनी बात सदा ध्यानमें रखनेकी है कि मन्त्र जाप करते हुए तल्लीनता आ जाये। जिसने साधनाकी प्रारम्भिक सीढ़ीपर पैर रखा है, मन्त्र जाप करते समय उसके मनमें दूसरे विकल्प आयेंगे, पर उनकी परवाह नहीं करनी चाहिए। जिस प्रकार आरम्भमें अग्नि जलानेपर नियमतः धुआँ निकलता है, पर अग्नि जब कुछ देर जलती रहती है, तो धुआँका निकलना बन्द हो जाता है। इसी प्रकार प्रारम्भिक साधनाके समक्ष नाना प्रकारके संकल्प-विकल्प आते है, पर साधनापथमे कुछ आगे बढ़ जानेपर विकल्प रुक जाते है। अतः दृढ़ श्रद्धापूर्वक इस मन्त्रका जाप करना चाहिए। मुझे इसमे रत्ती-भर भी शक नहीं है कि यह मंगलमन्त्र हमारी जीवन-डोर होगा और संकटोंसे हमारी रक्षा करेगा। इस मन्त्रका चमत्कार है हमारे विचारोंके परिमार्जनमे। यह अनुभव प्रत्येक साधकको थोड़े ही दिनोंमें होने लगता है कि पंचमहाव्रत, मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ इन भावनाओंके साथ दान, शील, तप और ध्यानकी प्राप्ति इस मन्त्रकी दृढ़-श्रद्धा-द्वारा ही सम्भव है। जैन बननेवाला पहला साधक तो इस णमोकार मन्त्रका श्रद्धासहित उच्चारण करता है। वासनाओंका जाल, क्रोध-लोभादि कषायोंकी कठोरता आदिको इसी मन्त्रकी साधनासे नष्ट किया जा सकता है। अतएव प्रत्येक व्यक्तिको सोते-जागते, उठते-बैठते सभी अवस्थाओंमें इस मन्त्रका स्मरण रखना चाहिए। अभ्यास हो जानेपर अन्य क्रियाओंमें संलग्न रहनेपर भी णमोकार मन्त्रका प्रवाह अन्तश्चेतनामें

निरन्तर चलता रहता है। जिस प्रकार हृदयकी गति निरन्तर होती रहती है, उसी प्रकार भीतर प्रविष्ट हो जानेपर इस मन्त्रकी साधना सतत चल सकती है।

इस मंगलमन्त्रकी आराधनामें इस बातका ध्यान रखना होगा कि इसे एकमात्र तोतेकी तरह न रटें। बल्कि अवांछनीय विकारोंको मनसे निकालनेकी भावना रखकर और मन्त्रकी ऐसा करनेकी शक्तिपर विश्वास रखकर ही इसका जाप करें। जो साधक अपने परिणामोंको जितना अधिक लगायेगा, उसे उतना ही अधिक फल प्राप्त होगा। यह सत्य है कि इस मन्त्रकी साधनासे शनैः-शनैः आत्मा नीरोग-निर्विकार होता रहता है। आत्मबल बढ़ता जाता है। जहाँतक सम्भव हो इस महामन्त्रका प्रयोग आत्माको शुद्ध करनेके लिए ही करना चाहिए। लौकिक कार्योंकी सिद्धिके लिए इसके करनेका अर्थ है, मणि देकर शाक खरीदना, अतः मन्त्रको सहायतासे काम-क्रोध-लोभ-मोहादि विकारोंको नष्ट करना चाहिए। यह मन्त्र मंगलमन्त्र है, जीवनमें सभी प्रकारके मंगलोंको उत्पन्न करनेवाला है। अमंगल – विकार, पाप, असद् विचार आदि सभी इसकी आराधनासे नष्ट हो जाते हैं। नमस्कार माहात्म्य गाथा पच्चीसीमें बताया गया है –

> जिण सासणस्स सारो चउद्दस पुव्वाण जो समुद्धारो।
> जस्स मणे नवकारो संसारे तस्स किं कुणई॥
> एसो मंगल-निलओ मयविलओ सयलसंघसुहजणओ।
> नवकारपरममंतो चिंति अमित्तं सुहं देई॥
> नवकारओ अन्नो सारो मंतो न अत्थि तियलोए।
> तम्हाहु अणुदिणं चिय, पढियव्वो परममत्तीए॥
> हरइ दुहं कुणइ सुहं जणइ जसं सोसए भवसमुद्दं।
> इहलोय-परलोइय-सुहाण मूलं नमोक्कारो॥

अर्थात् – यह णमोकार मंगल मन्त्र जिन-शासनका सार और चतुर्दश पूर्वोका समुद्धार है। जिसके मनमें यह णमोकार महामन्त्र है, संसार उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है। यह मन्त्र मंगलका आगार, भयको दूर करनेवाला, सम्पूर्ण चतुर्विध संघको सुख देनेवाला और चिन्तनमात्रसे अपरिमित शुभ फलको देनेवाला

है। तीनों लोकोंमें णमोकारमन्त्रसे बढ़कर कुछ भी सार नहीं है, इसलिए प्रतिदिन भक्तिभाव और श्रद्धापूर्वक इस मन्त्रको पढ़ना चाहिए। यह दुःखोंका नाश करनेवाला, सुखोंको देनेवाला, यशको उत्पन्न करनेवाला और संसाररूपी समुद्रसे पार करनेवाला है। इस मन्त्रके समान इहलोक और परलोकमें अन्य कुछ भी सुखदायक नहीं है।

●

परिशिष्ट नं० १

णमोकारमन्त्रसम्बन्धी गणितसूत्र

१. णमोकार मन्त्रके अक्षरोंकी संख्याके इकाई, दहाई रूप अंकोंका परस्पर गुणा करनेसे योग और प्रमाद संख्या आती है। यथा – ३५ अक्षर है, इसमें इकाईका अंक ५ और दहाईका अंक ३ है; अतः ५ × ३ = १५ को योग या प्रमाद।

२. णमोकार मन्त्रके इकाई, दहाई रूप अंकोंको जोड़नेसे कर्म संख्या आती है। यथा – ३५ अक्षर संख्यामें ५ + ३ = ८ कर्म संख्या।

३. णमोकार मन्त्रकी अक्षर संख्याकी इकाई अंकसंख्यामें-से दहाई रूप अंक संख्याको घटानेसे मूलद्रव्य संख्या, नय संख्या, भावसंख्या आती है। यथा ३५ अक्षर संख्या है, इसका इकाई अंक ५, दहाई अंक ३ है, अतः ५ – ३ = २ जीव और अजीव द्रव्य, द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय या निश्चय और व्यवहार नय, सामान्य और विशेष, अन्तरंग और बहिरंग अथवा द्रव्यहिंसा और भावहिंसा, प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाण।

४. णमोकार मन्त्रकी स्वरसंख्याके इकाई, दहाई रूप अंकोंका गुणा कर देनेपर अविरति या श्रावकके व्रतोंकी संख्या अथवा अनुप्रेक्षाओंकी संख्या निकलती है। यथा णमोकारमन्त्र स्वरसंख्या ३४ है, अतः ४ × ३ = १२ अविरति, श्रावकके व्रत या अनुप्रेक्षा।

५. णमोकार मन्त्रकी स्वर संख्याके इकाइ, दहाईके अंकोंको जोड़ देनेपर तत्त्व, नय या सप्तभंगीके भंगोंकी संख्या आती है। यथा ३४ स्वर संख्या है, अतः ४ + ३ = ७ तत्त्व, नय या भंगसंख्या।

६. णमोकार मन्त्रके स्वर, व्यंजन और अक्षरोंकी संख्याका योग कर देनेपर प्राप्त योगका संख्या-पृथक्त्वके अनुसार अन्योन्य योग करनेपर पदार्थ संख्या आती है। यथा ३४ स्वर, ३० व्यंजन और ३५ अक्षर है, अतः ३४ + ३० +

३५ = ९९ इस प्राप्त योगफलका अन्योन्य योग किया। ९ + ९ = १८, पुनः अन्योन्य योग संस्कार करनेपर १ + ८ = ९ पदार्थ संख्या।

७. णमोकार मन्त्रके समस्त स्वर और व्यंजनोंकी संख्याको सामान्य पद संख्यासे गुणा कर स्वर संख्याका भाग देनेपर शेष तुल्य गुणस्थान और मार्गणा-संख्या आती है। अथवा णमोकार मन्त्रके समस्त स्वर और व्यंजनोंकी संख्याको विशेषपद संख्यासे गुणा कर व्यंजनोंकी संख्याका भाग देनेपर शेष तुल्य गुण-स्थान और मार्गणा-संख्या आती है। यथा – इस मन्त्रके विशेष पद ११, सामान्य ५, स्वर ३४, व्यंजन ३० है। अतः ३४ + ३० = ६४ × ५ = ३२० ÷ ३४ = ९ ल० और १४ शेष, १४ शेष तुल्य ही गुणस्थान या मार्गणाकी संख्या है। अथवा ३० + ३४ = ६४ × ११ = ७०४ ÷ ३० = ३२ लब्धि, और १४ शेष, यही शेष संख्या गुणस्थान या मार्गणाकी है।

८ समस्त स्वर और व्यंजनोकी संख्याको व्यंजनोकी संख्यासे गुणाकर विशेषपद संख्याका भाग देनेपर शेष तुल्य द्रव्यों या जीवोके कार्यकी संख्या आती है। यथा – ३० + ३४ = ६४ × ३० = १९२० ÷ ११ = १७४ ल० और शेष। ६ शेष संख्या ही काय और द्रव्योकी संख्या है। अथवा – समस्त स्वर और व्यंजनोंकी संख्याको स्वर संख्यासे गुणा कर सामान्य पद संख्याका भाग देनेपर शेष तुल्य द्रव्योकी तथा जीवोंके कायकी संख्या आती है। यथा – ३० + ३४ = ६४ × ३४ = २१७६ ÷ ५ = ४३४ लब्ध और ६ शेष। यही शेष प्रमाण द्रव्य और कायकी संख्या है।

९. णमोकार मन्त्रकी मात्राओ स्वर, व्यंजन और विशेष पदके योगमें सामान्य अक्षरोंका अन्योन्य गुणनफल जोड़ देनेसे कुल कर्मप्रकृतियोंकी संख्या होती है। यथा – इस मन्त्रकी ५८ मात्राएँ, ३४ स्वर, ३० व्यंजन, ११ विशेषपद, ३५ सामान्य अक्षर और सामान्य अक्षरोंका अन्योन्य गुणनफल = ५ × ३ = १५, अतः ५८ + ३४ + ३० + ११ + ११ = १४८ कर्म प्रकृतियाँ।

१०. मात्राओं, स्वर एवं व्यंजनोंकी संख्याका योग कर देनेपर उदय योग्य कर्म प्रकृतियाँ आती हैं; यथा ५८ + ३० + ३४ = १२२ उदययोग्य प्रकृति संख्या।

११. मन्त्रोंकी स्वर और व्यंजन संख्याका पृथक्त्वके अनुसार अन्योन्य गुणा करनेसे बन्ध योग्य प्रकृतियोंकी संख्या आती है। यथा – व्यंजन ३०, स्वर ३४, अन्योन्य क्रम गुणनफल ३ × ० = ०, इस क्रममें शून्य दसका मान देता है; ४ × ३ = १२ ∴ १२ × १० = १२० बन्ध योग्य प्रकृतियाँ।

१२. णमोकार मन्त्रकी व्यंजन संख्याका इकाई, दहाई क्रमसे योग करनेपर रत्नत्रयकी संख्या आती है। यथा ३० व्यंजन संख्या है, ० + ३ = ३ रत्नत्रय संख्या; द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म, मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, और कायगुप्ति अथवा मन, वचन और काय योग।

१३. स्वर और व्यंजन संख्याका योग कर इकाई, दहाई अंक क्रमसे गुणा करनेपर तीर्थंकर संख्या आती है। यथा ३० + ३४ = ६४, अन्योन्य क्रम करनेपर – ४ × ६ = २४ = तीर्थंकर संख्या।

१४. स्वर संख्याको इकाई, दहाई क्रमसे गुणा करनेपर चक्रवर्तियोंकी संख्या आती है। यथा ३४ स्वर, अन्योन्य क्रम करनेपर ४ × ३ = १२ चक्रवर्ती, द्वादश अनुप्रेक्षा, द्वादश व्रत आदि।

१५. स्वर, व्यंजन और अक्षरोंके योगका अन्योन्य क्रमसे योग करनेपर नारायण, प्रतिनारायण और बलदेवकी संख्या आती है, यथा – स्वर ३४, व्यंजन ३०, अक्षर ३५; अतः ३० + ३४ + ३५ = ९९, अन्योन्य क्रम योग ९ + ९ = १८, पुनः अन्योन्य क्रम योग ८ + १ = ९ नारायण, प्रतिनारायण और बलदेवोंकी संख्या।

१६. णमोकार मन्त्रकी मात्राओंका इकाई, दहाई क्रमसे योग करनेपर चारित्र संख्या आती है। यथा –
५८ मात्राएँ – ८ + ५ = १३ चारित्र।

१७. णमोकार मन्त्रकी मात्राओंका इकाई, दहाई क्रमसे गुणा करनेपर जो गुणनफल प्राप्त हो, उसका पारस्परिक योग करनेपर गति, कषाय और बन्ध संख्या आती है। यथा ५८ मात्राएँ है, अतः ८ × ५ = ४०, ० + ४ = ४ गति, कषाय और बन्ध संख्या।

१८. णमोकार मन्त्रकी अक्षर संख्याका परस्पर गुणा कर गुणनफलमें-से सामान्य

- पद संख्या घटानेपर कर्म संख्या आती है। यथा — ३५ अक्षर संख्या, ५ × ३ = १५, १५ − ५ प्रा० प० = १० कर्म।

१९. स्वर और व्यंजन संख्याका पृथक्त्व अन्योन्य क्रमके अनुसार गुणा कर योग कर देनेपर परीषह संख्या आती है। यथा — ३४ स्वर, ३० व्यंजन ∴ ४ × ३ = १२, ० × ३ = ० इस क्रममें शून्य दसके तुल्य है। अतः १२ + १० = २२ परीषह संख्या।

२०. स्वर और व्यंजन संख्याको जोड़ कर योगफलका विरलन करके प्रत्येकके ऊपर दोका अंक देकर परस्पर सम्पूर्ण दोके अंकोंका गुणा करनेपर गुणनफल राशिमें-से एक घटा देनेपर समस्त श्रुतज्ञानके अक्षरोंका योग आता है। यथा ३४ + ३० = ६४।

$\therefore १^२।१^२।१^२।१^२।१^२।१^२।१^२।१^२।१^२ .... १^२$

= १८४४६७४४०७३७०९५५१६१६ − १ =

१८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ समस्त श्रुतज्ञानके अन्तर हैं।

●

परिशिष्ट नं० २

अनुचिन्तनगत पारिभाषिक शब्दकोष

अगुरुलघुत्व गुण १६५

यह वह गुण है जिसके निमित्तसे द्रव्यका द्रव्यत्व बना रहता है।

अघातियाकर्म ८

आत्मगुणोंका घात न करनेवाले कर्म।

अचेतन ५१

अचेतन अनुभूतियाँ वे हैं जिनकी तात्कालिक चेतना मनुष्यको नहीं रहती, किन्तु उसके जीवनपर उनका प्रभाव पड़ता रहता है।

अणु १०१

पुद्गलके सबसे छोटे टुकड़े या अंशको अणु कहते हैं।

अतिशय १३

वे अद्भुत या चमत्कारपूर्ण बातें जो सामान्य व्यक्तियोंमें न पायी जायें, अतिशय कहलाती हैं।

अधिकरण ८६

वस्तुके आधारका नाम अधिकरण है। अधिकरणके दो भेद हैं—अन्तरंग और बहिरंग।

अन्तरंग परिग्रह १९

आन्तरिक राग, द्वेष, काम, क्रोधादि, विकारोंमें ममत्व भाव रखना अन्तरंग परिग्रह है। यह चौदह प्रकार-का होता है।

अन्तरात्मा ७

शरीर, धन-धान्यादि समस्त पर-वस्तुओंसे ममत्वबुद्धिरहित होना एवं सच्चिदानन्द स्वरूप आत्माको ही अपना समझना, अन्तरात्मा है।

अन्तराय कर्म १३

सुख ज्ञान एवं ऐश्वर्य प्राप्तिके साधनोंमें विघ्न उत्पन्न करनेवाला कर्म अन्तराय कर्म कहलाता है।

अनानुपूर्वी १०६

पदव्यतिक्रमसे णमोकार मन्त्रका पाठ करना या जाप करना अनानुपूर्वी है।

अपकर्षण ९०

कर्मोंके स्थितिबन्ध एवं अनुभाग बन्धका घट जाना अपकर्षण है।

अभिप्राय ८१

णमोकार मन्त्रके रहस्य या भावकी जानकारी।

अभिरुचि ८१

अभिरुचि अस्फुट ध्यान है तथा ध्यान अभिरुचिका ही स्फुट रूप है।

अभ्यास ८१

मनोविज्ञान बतलाता है कि अभ्यास (Exercise) बार-बार किसी कार्यके करनेकी प्रवृत्ति जिसका दूसरा नाम आवृत्ति (Repetition) है, ध्यान आदिके लिए उपयोगी है।

अभ्यास नियम ४८

अभ्यास नियमको आदत निर्माण-का नियम भी कहा गया है (The law of habit-formation)। इस नियमके दो प्रमुख अंग है – पहले को उपयोगका नियम (The law of use) और दूसरेको अनुपयोगका नियम (The law of disuse) कहते हैं। ये दोनों एक-दूसरेके पूरक है। उपयोगका नियम यह बतलाता है कि यदि एक खास परिस्थितिके प्रति बार-बार एक ही तरहकी प्रतिक्रिया प्रकट की जाये तो उस परिस्थिति और प्रति-क्रियाके बीच एक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

अरण्यपीठ ५६

एकान्त निर्जन अरण्यमे जाकर णमोकार मन्त्र या अन्य किसी मन्त्रकी साधना करना अरण्यपीठ है।

अर्थ ८१

गुण पर्याय युक्त पदार्थका नाम अर्थ है।

अर्ध पर्यंकासन ६९

इस आसनमें ध्यानके समय अर्ध पद्मासन लगाया जाता है।

अवचेतन ५१

चेतन मनके परे अवचेतन या चेतनोन्मुख मन है। मनके इस स्तरमें वे भावनाएँ, स्मृतियाँ, इच्छाएँ तथा वेदनाएँ रहती हैं जो प्रकाशित नही है किन्तु जो चेतनापर आनेके लिए तत्पर है। कोई भी विचार चेतन मनमे प्रकाशित होनेके पूर्व अवचेतन मनमे रहता है।

अविरति ६८

व्रतरूप परिणत न होना अविरति है। इसके बारह भेद है।

असंयम २

इन्द्रियासक्ति और हिंसारूप परि-णतिको असंयम कहा जाता है।

आख्यातिक ८४

क्रियावाचक धातुओंसे निष्पन्न होनेवाले शब्द आख्यातिक कहलाते है। जैसे – भवति, गच्छति आदि।

आचार १८

सात्त्विक प्रवृत्तियोंका आलम्बन ग्रहण करना आचार है। आचारमे

जीवनव्यापी उन सभी प्रवृत्तियोंका आकलन किया जाता है जिनसे जीवन-का सर्वांगीण निर्माण होता है।

आचारांग १८

ग्यारह अंगोंमें यह पहला अंग है। इसमे मुनि और गृहस्थके सभी प्रकार-के आचरणोंका वर्णन किया जाता है।

आर्तध्यान ६९

इष्टवियोग अनिष्टसंयोगादिसे चिन्तित रहना आर्तध्यान है।

आदत ४६

आदत मनुष्यका अर्जित मानसिक गुण है। मनुष्यके जीवनमे दो प्रकारकी प्रवृत्तियाँ काम करती है – जन्मजात और अर्जित। अर्जित प्रवृत्तियाँ ही आदत है।

आनुपूर्वी १०६

उच्च गुणोंके आधारपर या किसी विशेष क्रमके आधारपर किसी वस्तुका सन्निवेश करना आनुपूर्वी है।

आर्जव ३

आत्माके सरल परिणामोंको आर्जव कहते है।

आवश्यक १८

जिन क्रियाओंका पालन करना मुनिके लिए अत्यावश्यक होता है, उन्हे आवश्यक कहते है। आवश्यकके ६ भेद हैं।

आसन ६७

ध्यान करनेके लिए बैठनेकी विशेष प्रक्रियाको आसन कहा जाता है।

आसन-शुद्धि ४०

काष्ठ, शिला, भूमि या चटाईपर अहिंसकवृत्तिपूर्वक आसीन होना आसन-शुद्धि है। आसनको सावधानीपूर्वक शुद्ध रखना आसनशुद्धि है।

आस्तिक्य ५

लोक-परलोकमे आस्था रखना आस्तिक्य है।

आस्रव ५

कर्मोंके आनेके द्वारको आस्रव कहते है। इसके दो भेद है – भाव आस्रव और द्रव्य आस्रव।

इच्छा ५२

इच्छाशक्ति मनुष्यकी वह मानसिक शक्ति है, जिसके द्वारा वह किसी प्रकार-के निश्चयपर पहुँचता है और उस निश्चयपर दृढ़ रहकर उसे कार्यान्वित करता है। संक्षेपमे किसी वस्तुकी चाहको इच्छा कहते हैं। चाह मनुष्यके वातावरणके सम्पर्कसे उत्पन्न होती है उसका लक्ष्य किसी भोगकी प्राप्ति होता है। यह क्रियात्मक मनोवृत्ति है। अप्रकाशित इच्छाएँ वासना कहलाती है। और प्रकाशित इच्छाओंको इच्छा कहते है।

घुटनेसे मोड़कर दूसरे पैरके जंघामूलपर जमा दीजिए और दूसरे पैरको भी मोड़कर उसी प्रकार दूसरे जंघामूलपर रखिए।

कषाय २

जो आत्माको कसे अर्थात् दुःख दे अथवा आत्माकी क्रोधादि रूप विकारमय परिणतिको कषाय कहते हैं।

कायशुद्धि ४१

यत्नाचारपूर्वक शरीर शुद्ध करनेकी क्रियाको कायशुद्धि कहते है।

कुमानुष १२

कुभोग भूमिके रहनेवाले ऐसे मनुष्य जिनके शरीरकी आकृति विभिन्न और विचित्र प्रकारकी हो।

क्रियाकेन्द्र ४६

क्रियावाही नाड़ियाँ मस्तिष्कके जिस स्थानमें केन्द्रित होती है, उसका नाम क्रियाकेन्द्र है।

क्रियात्मक ४६

क्रियात्मक वह मनोवृत्ति है जिसके द्वारा मानवके समस्त क्रिया-कलापोंका संचालन हो। इसके दो भेद हैं – जन्मजात और अर्जित।

क्रियावाही ४६

सुषुम्नामें स्थित क्रियावाही वे नाड़ियाँ हैं जो शरीरके बाहरी अंगमें होनेवाली किसी भी प्रकारकी उत्तेजनाकी सूचना देती हैं।

गुणस्थान ७

मोह और योगके निमित्तसे होनेवाले आत्माके परिणामविशेष गुणस्थान हैं।

गुप्ति १८

मन, वचन और कायका पूर्ण निग्रह करना गुप्ति है।

गोत्र १६

गोत्र कर्मके उदयसे मनुष्यको उच्च आचरण या नीच आचरणवाले कुलमें जन्म लेना पड़ता है।

घातियाकर्म ७

आत्माके गुणोंका घात करनेवाले कर्म घातिया कहलाते हैं।

चतुर्विध संघ २८

मुनि, अर्जिका, श्रावक और श्राविका इन चारोंके संघको चतुर्विध संघ कहते हैं।

चेतन मन ५१

चेतन मन, मनका वह भाग है जिसमें मनकी समस्त ज्ञात क्रियाएँ चला करती हैं।

चौदह पूर्व २०

भगवान् महावीरके पहले आगमिक परम्परामें जो ग्रन्थ वर्तमान थे वे पूर्व

ग्रन्थ कहलाये। इनकी संख्या चौदह होनेसे ये चौदह पूर्व कहे जाते हैं।

जृम्भण ५४

जिन मन्त्रोंकी शक्तियोंसे शत्रु, भूत, प्रेत, व्यन्तर आदि भय-त्रस्त हो जाये, काँपने लगें, उन मन्त्रोंको जृम्भण कहते हैं।

जिनकल्पि २१

जिनकल्पिका अर्थ है समस्त परिग्रहके त्यागी दिगम्बर उत्तम संहनन धारी साधु। ये एकादशाग सूत्रोके धारक गुहावासी होते हैं।

जिज्ञासा ८१

किसी वस्तु या विचारको जाननेरूप जो प्रवृत्ति होती है उसे जिज्ञासा कहते हैं।

तत्परता नियम ४८

इस नियमके अनुसार प्राणीको ऐसे काम करनेमे आनन्द मिलता है जिसके करनेकी तैयारी उसमे होती है और ऐसे काम करनेसे उसे असन्तोष प्राप्त होता है जिसके करनेकी तैयारी उसमे नही होती।

तप १८

इच्छाओंका निरोध करना तप है।

त्याग २

किसी वस्तुसे ममता या मोहको छोड़ना त्याग कहलाता है। त्यागका तात्पर्य दानसे है।

दमन ४९

मूल प्रवृत्तिके प्रकाशनपर नियन्त्रण करना दमन कहलाता है।

दर्शनावरण १४

जो कर्म आत्माके दर्शन गुणका आच्छादन करता है वह दर्शनावरणीय कर्म कहलाता है।

दर्शनोपयोग २

पदार्थके सामान्य रूपको ग्रहण करनेवाली चैतन्यरूप प्रवृत्ति दर्शनोपयोग है।

देशव्रती ७

जो श्रावक व्रतोंके धारण करनेवाले गृहस्थ है वे देशव्रती है।

दैवसिक १२९

दिनोकी अवधिसे किये जानेवाले व्रतोंको दैवसिक व्रत कहते है। दैवसिक व्रतोंमे दश लक्षण, पुष्पाजलि और रत्नत्रय आदि है।

द्रव्यलिंगी २८

मुनिवेशी, किन्तु सम्यक्त्वहीन जैन मुनि द्रव्यलिगी कहलाता है।

द्रव्यशुद्धि ४०

पात्रकी अन्तरंग शुद्धिको द्रव्यशुद्धि कहा गया है। णमोकार मन्त्रका जाप करनेके लिए बतायी गयी आठ प्रकारकी शुद्धियोंमे यह पहली शुद्धि है।

द्रव्य संकोच ८५

शरीरको नम्रीभूत बनाना द्रव्य संकोच है।

द्रव्य संसार ३६

पंच परावर्तन रूप इस संसारके अस्तित्वको द्रव्य संसार कहते हैं।

द्वादशांग ४२

अक्षरात्मक श्रुतज्ञानके आचाराग, सूत्रकृताग आदि द्वादश भेदोंको द्वादशांग कहते हैं।

धर्म १८

वस्तुके स्वभावका नाम धर्म है। यह धर्म रत्नत्रय रूप, उत्तम क्षमादि रूप एवं अहिंसामय है।

धर्मध्यान ६९

आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय रूप चिन्तनको धर्मध्यान कहते हैं।

ध्यान ६७

ध्यान देना एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्तिको वातावरणमे उपस्थित अनेक उत्तेजनाओंमे-से उसकी अभिरुचि एवं मनोवृत्तिके अनुकूल किसी एक उत्तेजनाको चुन लेने तथा उसके प्रति प्रतिक्रिया प्रकट करनेको बाध्य करती हैं।

धारणा ६७

जिसका ध्यान किया जाये, उस विषयमें निश्चल रूपसे मनको लगा देना धारणा है।

नय ८१

वस्तुका आंशिक ज्ञान नय कहलाता है।

नष्ट १०६

संख्याको रखकर पदका प्रमाण निकालना नष्ट है।

नाम कर्म १६

नाम कर्मके उदयसे शरीरकी आकृतियाँ उत्पन्न होती हैं। अर्थात् शरीर निर्माणका कार्य इसी कर्मके उदयसे होता हैं।

नामिका ८४

संख्यावाचक प्रत्ययोंसे सिद्ध होनेवाले शब्द नामिक कहे जाते हैं।

निदान २

आगामी भोगोंकी वांछा करना या फल-प्राप्तिका उद्देश्य रखना निदान है।

निधत्ति ९०

कर्मका संक्रमण और उदय न हो सकना निधत्ति है।

नियम ६७

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान ये पाँच नियम कहे गये हैं। नियमका वास्तविक अर्थ राग-द्वेषको हटाना है।

निरवधि १२९

निरवधि वे व्रत कहलाते हैं जिन व्रतोंके लिए किसी विशेष तिथि या दिनका विधान न हो। जैसे – कवल चन्द्रायण, मुक्तावली, एकावली आदि।

निर्जरा ३६

बँधे हुए कर्मोंका आत्मासे अलग होना निर्जरा है।

निर्देश ८६

वस्तुका स्वरूप कथन करना निर्देश है।

निर्विकल्प समाधि ६

जब समाधि कालमें ध्यान, ध्याता, ध्येयका विकल्प नष्ट हो जाये तो उसे निर्विकल्प समाधि कहते हैं।

निक्षेप ८१

कार्य होनेपर अर्थात् व्यवहार चलानेके हेतु युक्तियोंमें सुयुक्ति-मार्गानुसार जो अर्थका नामादि चार प्रकारसे आरोप किया जाता है वह न्यायशास्त्रमें निक्षेप कहलाता है।

नैगम ८१

जो भूत और भविष्यत् पर्यायोंमें वर्तमानका संकल्प करता है या वर्तमानमे जो पर्यायपूर्ण नही हुई उसे पूर्ण मानता है उस ज्ञान तथा वचनको नैगम नय कहते है।

नैपातिक ८४

अव्ययवाची शब्द नैपातिक कहे जाते हैं। जैसे – खलु, ननु आदि।

नोकषाय ३

किंचित् कषायको नोकषाय कहते हैं।

पद ८१

जिसके द्वारा अर्थबोध हो उसे पद कहते हैं।

पदार्थ-द्वार ८१

द्रव्य और भावपूर्वक णमोकार मन्त्रके पदोंकी व्याख्या करना पदार्थ-द्वार है।

परमेष्ठी ७

जो परमपद—उत्कृष्ट स्थानमें स्थित हों अर्थात् जिनमें आत्मिक गुणोंका—रत्नत्रयका विकास हो गया है।

परसमय १८

मै मनुष्य हूँ, यह मेरा शरीर है इस प्रकार नाना अहंकार और ममकार भावोसे युक्त हो अविचलित चेतना विलास रूप आत्म-व्यवहारसे च्युत होकर समस्त निन्द्य क्रिया समूहके अंगीकार करनेसे राग, द्वेषकी उत्पत्तिमें संलग्न रहनेवाला परसमय रत कहलाता है। वास्तवमें पर-द्रव्योंका नाम ही परसमय है।

परिग्रह ७

ममता या मूर्च्छाका नाम परिग्रह है।

परिणाम नियम ४८

यह नियम सन्तोष और असन्तोषका नियम भी कहा जाता है। यदि किसी क्रियाके करनेसे प्राणीको सन्तोष मिलता है तो उस क्रियाके करनेकी प्रवृत्ति प्रबल हो जाती है और यदि किसी क्रियाके करनेसे असन्तोष मिलता है तो उस प्रवृत्तिका विनाश हो जाता है, इस नियम-द्वारा उपयोगी कार्य होते हैं और अनुपयोगी कार्योंका अन्त हो जाता है।

पल्लव ५७

मन्त्रके अन्तमें जोड़े जानेवाले स्वाहा, स्वधा, फट्, वषट् आदि शब्द पल्लव कहलाते हैं।

पश्चानुपूर्वी ८९

यह पूर्वानुपूर्वीके विपरीत है। इसमें हीन गुणकी अपेक्षा क्रमकी स्थापना की जाती है।

पापास्रव ३०

पाप प्रकृतियोंका आना पापास्रव है।

पुद्गल २

रूप, रस, गन्ध और स्पर्शवाले द्रव्यको पुद्गल कहते हैं।

पुत्रैषणा १२५

पुत्र प्राप्तिकी कामना या सासारिक विषयोंकी प्राप्तिकी कामना पुत्रैषणा है।

पुण्यास्रव ३९

पुण्य प्रकृतियोंका आना पुण्यास्रव है।

पूजा ३९

किसीके प्रति अपने हृदयकी श्रद्धा और आदरभावनाको प्रकट करना पूजा है।

पूर्वानुपूर्वी ८९

पूर्व-पूर्वकी योग्यतानुसार वस्तुओं या पदोंका क्रम नियोजन।

पौष्टिक ५४

जिन मन्त्रोंकी साधनासे अभीष्ट कार्योंकी सिद्धि एवं संसारके ऐश्वर्यकी प्राप्ति हो; वे मन्त्र पौष्टिक कहलाते है।

प्रत्यक्षीकरण ४६

प्रत्यक्षीकरण एक ऐसी मानसिक क्रिया है जिसके द्वारा वातावरण में उपस्थित वस्तु तथा ज्ञान इन्द्रियोंको उत्तेजित करनेवाली परिस्थितियोंका तात्कालिक ज्ञान प्राप्त होता है।

प्रत्याहार ६७

इन्द्रिय और मनको अपने-अपने विषयोंसे खींचकर अपनी इच्छानुसार

किसी कल्याणकारी ध्येयमें लगानेको प्रत्याहार कहते है ।

प्रथमोपशमसम्यक्त्व ९९

मोहनीयकी सात प्रकृतियोंके उपशमसे होनेवाला सम्यक्त्व ।

प्रमाद ६८

कषाय या इन्द्रियासक्ति रूप आचरण प्रमाद है ।

प्ररूपणा द्वार ८१

वाच्य-वाचक, प्रतिपाद्य-प्रतिपादक, विषय-विषयी भावकी दृष्टिसे णमोकार मन्त्रके पदोका व्याख्यान करना प्ररूपणा द्वार है ।

प्रस्तार १०६

आनुपूर्वी और अनानुपूर्वीके अंगो का विस्तार करना प्रस्तार है ।

प्राणायाम ६७

श्वास और उच्छ्वासके साधनेको प्राणायाम कहते है । इसके तीन भेद है – पूरक, कुम्भक और रेचक ।

फल ५४

मन्त्रके तीन अंग होते है – रूप, बीज और फल । मन्त्रके द्वारा होनेवाली किसी वस्तुकी प्राप्ति उसका फल कहलाती है ।

बन्ध ९०

कर्म और आत्माके प्रदेशोंका परस्परमें मिलना बन्ध है ।

बहिरंग परिग्रह १९

धन-धान्यादि रूप दश प्रकारका बहिरंग परिग्रह होता है ।

बहिरात्मा ६

शरीर और आत्माको एक समझनेवाला मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है ।

बीज ५३

मन्त्रकी ध्वनियोंमें जो शक्तिनिहित रहती है उसे बीज कहते हैं ।

मिथ्या ज्ञान ३

मिथ्या दर्शनके साथ होनेवाला ज्ञान मिथ्या ज्ञान कहलाता है ।

मिश्र ८५

मिश्रित परिणतिको जिसे न तो हम सम्यक्त्व रूप कह सकते हैं और न मिथ्यात्व रूप ही – मिश्र कहा जाता है ।

मूलगुण १९

मुख्य गुणोंको मूल गुण कहा जाता है ।

मूल प्रवृत्ति ४८

मूल प्रवृत्ति एक प्रकृतिदत्त शक्ति है । यह शक्ति मानसिक संस्कारोके रूपमे प्राणीके मनमे स्थित रहती है । जिसके कारण प्राणी किसी विशेष प्रकारके पदार्थकी ओर ध्यान देता है और उसकी उपस्थितिमें विशेष प्रकारकी

वेदनाकी अनुभूति करता है तथा किसी विशिष्ट कार्यमें प्रवृत्त होता है।

मोहन ५४

जिन मन्त्रोंके द्वारा किसीको मोहित किया जा सके, वे मोहन मन्त्र कहलाते हैं।

मोहनीय १४

मोहनीय कर्म वह है जिसके उदयसे आत्मामें दर्शन और चारित्र रूप प्रवृत्ति उत्पन्न न हो।

यम ६७

इन्द्रियोंका दमन कर अहिंसक प्रवृत्तिको अपनाना यम है।

योग ६८

मन, वचन, कायकी प्रवृत्तिको योग कहते है।

रत्न-त्रय १९

सम्यग्दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्रको रत्नत्रय कहते हैं।

रूप ५४

मन्त्रकी ध्वनियोंका सन्निवेश रूप कहलाता है।

रौद्र-ध्यान ६९

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह रूप परिणतिके चिन्तनमें आत्माको कषाय युक्त करना रौद्र-ध्यान है।

लेश्या ९०

कषायके उदयसे अनुरंजित योग प्रवृत्तिको लेश्या कहते हैं।

लोकैषणा १२५

यशकी कामना या संसारमें किसी भी प्रकार प्रसिद्धि प्राप्त करनेकी इच्छा लोकैषणा है।

वचनशुद्धि ४१

वचन व्यवहारमें किसी भी प्रकारके विकारको स्थान न देना वचन-शुद्धि है।

वज्रासन ६९

दोनों पैर सीधे फैलाकर बैठ जाइए और बायाँ पैर घुटनेमें मोड़कर जाँघसे इस प्रकार मिलाइए कि नितम्बके सामने जमीनपर टिक जाये और सीनेका बायाँ भाग ऊपर उठे हुए घुटनेपर अड़ा रहे। इसके बाद दाहिनी ओर थोड़ा झुकते हुए बायाँ नितम्ब कुछ ऊपर उठाइए, दाहिना हाथ दाहिनी जाँघके पास जमीनपर टिकाकर झुके हुए धड़को सहारा दीजिए और बायें पैरको टखनेके पास पकड़ लीजिए।

वश्याकर्षण ५४

जिन मन्त्रोंके द्वारा किसीको वश या आकृष्ट किया जा सके वे मन्त्र वश्याकर्षण कहलाते हैं।

वाचक ७६

वाचक विधिमें जाप करते समय

मुँहसे शब्दोंका उच्चारण किया जाता है।

वासना ५

मानव मनमें अनेक क्रियात्मक मनोवृत्तियाँ है। कुछ क्रियात्मक मनोवृत्तियाँ प्रकाशित होती हैं अर्थात् चेतनाको उनका ज्ञान रहता है और कुछ अप्रकाशित रहती है। अप्रकाशित इच्छाओंका ही नाम वासना है।

विचार ४६

विचार मनकी वह प्रक्रिया है जिससे हम पुराने अनुभवको वर्तमान समस्याओंके हल करनेमे लाते हैं।

वित्तैषण १२५

ऐश्वर्य प्राप्तिकी आकांक्षा वित्तैषणा है।

विद्वेषण ५४

जो मन्त्र द्वेष भावको उत्पन्न करनेमें सहायक हों, वे विद्वेषण कहलाते है।

विधान ८६

अनुष्ठान-विशेषको विधान कहा जाता है।

विनय-शुद्धि ४०

जाप करते समय आस्तिक्य भावपूर्वक हृदयमें नम्रता धारण करना विनय-शुद्धि है।

विपाकविचय ९०

कर्मके फलका विचार करना विपाकविचय धर्म ध्यान है।

विलयन ४८

मनकी किसी विशेष प्रवृत्तिको विलीन कर देना विलयन है।

विसंयोजन ८६

अनन्तानुबन्धी कषायका अन्य कषायरूप परिणमन करना विसंयोजन कहलाता है।

वेदनात्मक ४६

प्रत्येक मनोवृत्तिके तीन पहलू हैं— ज्ञानात्मक, वेदनात्मक और क्रियात्मक। वेदनात्मकका तात्पर्य है कि किसी प्रकारकी अनुभूतिका होना।

वेदनीय १६

वेदनीय वह कर्म है जिसके उदयसे प्राणीको सुख और दु:खकी प्राप्ति हो।

व्यंजनपर्याय १३

प्रदेशवत्त्व गुणके विकारको व्यंजनपर्याय कहते है।

व्यवहार ८१

संग्रह नयसे ग्रहण किये गये पदार्थोंका विधिपूर्वक भेद करना व्यवहार नय है।

शवपीठ ५६

निम्नकोटिके मन्त्रोंकी सिद्धिके लिए मृतकके शवपर आसन लगाना शवपीठ है।

शब्द नय ८२

लिंग, संख्या, साधन आदिके

व्यभिचारको दूर करनेवाले ज्ञान और वचनको शब्द नय कहते हैं।

शान्तिक ५४

शान्ति उत्पन्न करनेवाले मन्त्र शान्तिक कहलाते हैं।

शुक्ल-ध्यान १६

लेश्याकी उज्ज्वलता हो जानेपर कर्मध्यानका उल्लंघन कर शुक्ल ध्यान-का आरम्भ होता है। इसके चार भेद हैं।

शुद्धोपयोग २२

स्वानुभूत रूप विशुद्ध परिणतिकी प्राप्ति शुद्धोपयोग है। इसीका दूसरा नाम वीतराग विज्ञान है।

शुद्धोपयोगी ७

शुद्धोपयोगके धारी वीतराग-विज्ञानी शुद्धोपयोगी है।

शुभोपयोग ७

पुण्यानुरागरूप शुभोपयोग होता है। इसमें प्रशस्त रागका रहना आवश्यक है।

शोधन ४८

किसी प्रवृत्तिका शुद्ध या शोधन करना शोधन कहलाता है।

शौच ३

अन्तरंग और बहिरंगमें पवित्र वृत्तिका उत्पन्न होना शौच धर्म है।

श्मशान-पीठ ५६

श्मशान भूमिमें जाकर किसी मन्त्रका अनुष्ठान करना श्मशान-पीठ है।

श्यामा-पीठ ५६

जितेन्द्रिय बनकर नग्न तरुणीके समक्ष निर्विकार भावसे मन्त्रकी साधना करना श्यामा-पीठ है।

श्रद्धा ५२

गुणोंके प्रति रागात्मक आसक्ति श्रद्धा कहलाती है।

श्रुतज्ञान ८६

पंच इन्द्रिय और मनके द्वारा परके उपदेशसे उत्पन्न होनेवाला ज्ञान श्रुतज्ञान है।

श्रेयोमार्ग ५

सम्यग्दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र रूप मोक्षका मार्ग ही श्रेयोमार्ग है।

सत्य ३

जो वस्तु जैसी देखी या सुनी है उसका उसी रूपमें कथन करना सत्य है। इसमें अहिंसा प्रवृत्तिका रहना अत्यावश्यक है।

सत्त्व ९०

कर्मों प्रकृतियोंकी सत्ताका नाम सत्त्व है। सत्त्व प्रकृतियाँ १४८ मानी गयी हैं।

सप्तव्यसन १२९

बुरी आदतका नाम व्यसन है। ये सात होते हैं। तात्पर्य यह है कि जुआ, चोरी आदि सात प्रकारकी बुरी आदतें सप्तव्यसन कहलाती हैं।

समय शुद्धि ४०

प्रातः, मध्याह्न और सन्ध्या समय नियमित रूपसे किसी मन्त्रका जाप करना समय शुद्धि है। इसमें समयका निश्चित रहना और निराकुल होना आवश्यक है।

समभिरूढ़ ८१

लिंग आदिका भेद न होनेपर भी शब्दभेदसे अर्थका भेद माननेवाला समभिरूढ़ नय है।

संकल्प ५२

किसी कार्यके करनेकी प्रतिज्ञाका नाम संकल्प है।

संक्रमण ९०

एक कर्मका दूसरे सजातीय कर्म रूप हो जानेको संक्रमण करण कहते हैं।

संग्रह ९०

अपनी-अपनी जातिके अनुसार वस्तुओंका या उनकी पर्यायोंका एक रूपसे संग्रह करनेवाले ज्ञान और वचन-को संग्रह कहते है।

संवेग ४६

संवेग एक चेतन अनुभूति है जिसमें कई प्रकारकी शारीरिक क्रियाएँ शामिल रहती हैं।

संयम ३

इन्द्रिय निग्रहके साथ अहिंसात्मक प्रवृत्तिको अपनाना संयम है।

संवेदन ४६

चैतन्य मनका सर्वप्रथम और सरल ज्ञान संवेदन है। संवेदन इन्द्रियोंके बाह्य पदार्थके स्पर्शसे होता है।

समाधि ६७

ध्यानकी चरम सीमाको समाधि कहते हैं।

सम्यक् चारित्र ३

तत्त्वार्थ श्रद्धानके साथ चारित्रका होना सम्यक् है।

सम्यग्ज्ञान ३

तत्त्व श्रद्धानके साथ ज्ञानका होना सम्यक् ज्ञान है।

सम्यग्दर्शन ३

जीव, अजीव आदि सातों तत्त्वों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

सल्लेखना १३३

बुद्धिपूर्वक काय और कषायको अच्छी तरह कृश करना सल्लेखना है।

सहज क्रिया ४६

उत्तेजनाका सबसे सरल कार्य सहज क्रियाएँ, जैसे — छींकना, खुज-लाना, आँसू आना आदि हैं।

सहज अनुभव ९

भूख-प्यास और शारीरिक माँगों-की पूर्तिमें ही सुख और उनकी पूर्तिके अभावमें दुःखका अनुभव करना सहज अनुभव है। यह अनुभव पशु कोटिका माना जाता है।

साधन ८१

वस्तुके उत्पन्न होनेके कारणोंको साधन कहते हैं।

सावधि १२९

जिन व्रतोंके करनेके लिए दिन, मास या तिथिकी अवधि निश्चित रहती है, वे व्रत सावधि कहलाते हैं।

सिद्धगति १३

जाति, जरा, मरण आदिसे रहित समस्त सुखका भाण्डार सिद्ध अवस्था ही सिद्ध गति है।

सुखासन ६२

आरामपूर्वक पलहत्थी मारकर बैठना ही सुखासन है।

स्कन्ध १०१

दो या दोसे अधिक परमाणुओंके समूहको स्कन्ध कहते है।

स्तम्भन ५४

नदी, समुद्र या तेजीसे आती हुई सवारीकी गतिका अवरोध करानेवाले मन्त्र स्तम्भन कहलाते है। इन मन्त्रोंसे जलती हुई अग्निके वेगको या वेगसे आक्रमण करते हुए शत्रुकी गतिको अवरुद्ध किया जा सकता है।

स्थविरकल्पि ११

जो भिक्षु वस्त्र और पात्र अपने पास रखकर संयमकी साधना करता है — वह स्थविरकल्पि कहलाता है।

स्थायीभाव ४६

जब किसी प्रकारका भाव मनमें बार-बार उठता है अथवा एक ही प्रकारकी उमंग जब मनमें अधिक देर तक ठहरती है तब वह मनमें विशेष प्रकारका स्थायी भाव पैदा कर देती है।

स्थिति ८६

कर्मोका जीव के साथ अमुक समय तक बँधे रहनेका नाम स्थितिबन्ध है।

स्मरण ४६

पूर्वानुभूत अनुभवों अथवा घट-नाओंको पुनः वर्तमान चेतनामें लानेकी क्रियाको स्मरण कहते हैं।

स्व-संवेदन ज्ञान ६

स्वानुभूत रूप ज्ञान स्व-संवेदन ज्ञान कहलाता है।

स्व-समय १८

अपनी आत्मामें रमण करनेकी प्रवृत्ति स्व-समय है। अर्थात् परद्रव्योंसे भिन्न आत्मद्रव्यको अनुभवमें लाना ही स्व-समय है।

स्वामित्व ८६

किसी वस्तुके अधिकारीपनेको ही स्वामित्व कहते हैं ।

स्वाध्याय ३९

चिन्तन, मननपूर्वक शास्त्रोंका अध्ययन करना स्वाध्याय है।

क्षमा ३

क्रोधरूप परिणति न होने देना क्षमा है।

क्षयोपशम ६

कर्मोका क्षय और उपशम होना क्षयोपशम है।

क्षायिक सम्यक्त्व १४

दर्शन मोहनीयकी तीन प्रकृतियाँ और अनन्तानुबन्धी चार; इन सात प्रकृतियोके क्षयसे जो सम्यक्त्व उत्पन्न होता है उसे क्षायिक सम्यक्त्व कहते है।

क्षायिक दान १४

दानान्तराय कर्मका अत्यन्त क्षय होनेसे दिव्य ध्वनि आदिके द्वारा अनन्त प्राणियोंका उपकार करनेवाला क्षायिक दान होता है।

क्षायिक उपयोग १४

उपभोग अन्तराय कर्मका अत्यन्त क्षय होनेसे क्षायिक भोगकी प्राप्ति होती है।

क्षायिक भोग १४

भोगान्तराय कर्मका अत्यन्त क्षय होनेसे क्षायिक भोगकी प्राप्ति होती है।

क्षायिक लाभ १४

लाभान्तराय कर्मका अत्यन्त क्षय होनेसे क्षायिक लाभ होता है।

ज्ञान-केन्द्र ४६

मस्तिष्कमें ज्ञानवाही नाड़ियोंका जो केन्द्र स्थान है – वही ज्ञानकेन्द्र कहलाता है।

ज्ञानवाही ४६

ज्ञानवाही स्नायु-कोष स्नायु प्रवाहोंको ज्ञान इन्द्रियोंसे सुषुम्ना और मस्तिष्कमें ले जाते है।

ज्ञानात्मक ४६

ज्ञान इन्द्रियोंके द्वारा सम्पादित होनेवाली प्रवृत्ति ज्ञानात्मक कहलाती है।

ज्ञानावरण १३

जीवके ज्ञान गुणको आच्छादित करनेवाला कर्म ज्ञानावरणीय कर्म कहलाता है।

ज्ञानोपयोग २

जीवकी जानने रूप प्रवृत्तिको ज्ञानोपयोग कहते हैं।

●

परिशिष्ट नं० ३

पञ्चपरमेष्ठी नमस्कार-स्तोत्र

अरिहाणं नमो पुव्वं, अरहंताणं रहस्स रहियाणं ।
पयओ परमिट्ठिं, अरुहंताणं धुअ-रयाणं ॥१॥

समस्त संसारके ज्ञाता सर्वज्ञ, सुरेन्द्र-नरेन्द्रसे पूजित, जन्म-मरणसे रहित, कर्मरूपी रजके विनाशक, परमेष्ठीपदके धारी अर्हन्त भगवान्‌को नमस्कार हो ॥१॥

निद्दट्ठ-अट्ठ-कम्मिंधणाण धरनाण-दंसण-धराणं ।
मुत्ताण नमो सिद्धाणं परम-परमिट्ठि-भूयाणं ॥२॥

जिन्होने आठ कर्मरूपी ईंधनको जलाकर भस्म कर दिया है, जो क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक ज्ञानसे युक्त है, समस्त कर्मोंसे रहित परमेष्ठी स्वरूप हैं, ऐसे सिद्ध भगवान्‌को नमस्कार हो ॥२॥

आयर-धराणं नमो, पंचविहायार-सुट्ठियाणं च ।
ताणीणायरियाणं, आयारुवएसयाण सया ॥३॥

जो ज्ञानाचार, वीर्याचार आदि पाँच प्रकारके आचारमें अच्छी तरह स्थित है, ज्ञानी है और सदा आचारका उपदेश करनेवाले हैं, ऐसे आचार्य परमेष्ठीको नमस्कार हो ॥३॥

वारसविहं अपुव्वं, दिट्ठाण सुअं नमो सुअहराणं च ।
सययमुवज्झाणं, सज्जाय - ज्झाण - जुत्ताणं ॥४॥

बारह प्रकारके श्रुत, ग्यारह अंग और चौदह पूर्वका उपदेश करनेवाले, श्रुतज्ञानी, स्वाध्याय और ध्यानमे तत्पर उपाध्याय परमेष्ठीको सतत नमस्कार हो ॥४॥

सव्वेसिं साहूणं, नमो तिगुत्ताण सव्वलोए वि ।
तव-नियम-नाण-दंसण-जुत्ताणं बंभयारीणं ॥५॥

समस्त लोकके – ढाई द्वीपके त्रिगुप्तियोंके धारी, तप, नियम, ज्ञान एवं दर्शन युक्त ब्रह्मचारी साधुओंको नमस्कार हो ॥५॥

एसो परमिट्ठीणं, पंचण्हं वि भावओ णमुक्कारो ।
सव्वस्स कीरमाणो, पावस्स पणासणो होइ ॥६॥

पंच परमेष्ठीको भावसहित किया गया नमस्कार समस्त पापोंका नाश करनेवाला है ॥६॥

भुवणे वि मंगलाणं, मणुयासुर-अमर-खयर-महियाणं ।
सव्वेसिमिमो पढमो, हवइ महामंगलं पढमं ॥७॥

मनुष्य, देव, असुर और विद्याधरों-द्वारा पूजित तीनों लोकोंमें यह णमोकार मन्त्र सभी मंगलोंमें सर्व प्रथम और उत्कृष्ट महामंगल है ॥७॥

चत्तारि मंगलं मे, हुंतुरहंता तहेव सिद्धा य ।
साहू अ सव्वकालं, धम्मो य तिलोय-मंगल्लो ॥८॥

अर्हन्त, सिद्ध, साधु और तीनों लोकोंका मंगल करनेवाला धर्म ये चारों सदा मंगलरूप हों ॥८॥

चत्तारि चेव ससुरासुरस्स लोगस्स उत्तमा हुंति ।
अरहंत सिद्ध-साहू, धम्मो जिण-देसिय उयारो ॥९॥

अरिहन्त, सिद्ध, साधु तथा जिन प्रणीत उदार धर्म ये चारों ही तीनों लोकोंमें उत्तम हैं ॥९॥

चत्तारि वि अरहंते, सिद्धे साहू तहेव धम्मं च ।
संसार-घोर-रक्खस-मएण सरणं पवज्जामि ॥१०॥

संसाररूपी घोर राक्षसके भयसे त्रस्त मैं अर्हन्त, सिद्ध, साधु और इन चारोंकी शरणमें जाता हूँ ॥१०॥

अह-अरहओ मगवओ, महइ महावीर-वद्धमाणस्स ।
पणय-सुरेसर-सेहर-वियलिय-कुसुमच्चिय-क्कमस्स ॥११॥
जस्स वर-धम्मचक्कं, दिणयर-बिंबं व भासुरच्छायं ।
तेएण पज्जलंतं, गच्छइ पुरओ जिणिंदस्स ॥१२॥
आयासं पायालं, सयलं महिमंडल पयासंतं ।
मिच्छत्त-मोह-तिमिरं, हरेइ त्ति इहं पि लोयाणं ॥१३॥

नमस्कार करनेके लिए झुके हुए सुरासुरेश्वरोंके मुकुटोंसे गिरते हुए पुष्पोंद्वारा पूजित चरणवाले अर्हन्त महावीर वर्धमानके आगे सूर्य-बिम्बके समान

देदीप्यमान और तेजसे उद्भासित धर्मचक्र चलता है। यह धर्मचक्र आकाश, पाताल और समस्त पृथ्वीमण्डलको प्रकाशित करता हुआ यहाँके प्राणियोंके मिथ्यात्वरूपी अन्धकारका हरण करे ॥११-१३॥

सयलंमि वि जियलोए, चिंतियमित्तो करेइ सत्ताणं।
रक्खं रक्खस-डाइणि-पिसाय-गह-जक्ख-भूयाणं ॥१४॥

यह णमोकार मन्त्र चिन्तनमात्रसे समस्त जीवलोकमें राक्षस, डाकिनी, पिशाच, ग्रह, यक्ष और भूत-प्रेतोंसे प्राणियोंकी रक्षा करता है ॥१४॥

लहइ विवाए वा ए, ववहारे भावओ सरंतो य।
जूए रणे व रायंगणे य विजयं विसुद्धप्पा ॥१५॥

भावपूर्वक इसका स्मरण करते हुए शुद्धात्मा वाद-विवाद, व्यवहार जुआ, युद्ध एवं राजदरबारमें विजय प्राप्त करता है ॥१५॥

पच्चूस-पओसेसुं, सययं भव्वो जणो सुह-ज्झाणो।
एयं झाएमाणे, मुक्खं पइ साहगो होइ ॥१६॥

शुभ ध्यानसे युक्त भव्य जीव इस णमोकार मन्त्रका प्रातः तथा सायंकाल निरन्तर ध्यान करनेसे मोक्ष साधक बनता है ॥१६॥

वेयाल - रुद्द - दाणव - नरिंद - कोहंडि-रेवईणं च।
सव्वेसिं सत्ताणं, पुरिसो अपराजिओ होइ ॥१७॥

इस मन्त्रका स्मरण करनेवाला पुरुष वेताल, रुद्र, राक्षस, राजा, कूष्माण्डी, रेवती तथा सम्पूर्ण प्राणियोंसे अपराजित होता है ॥१७॥

विज्जुव्व पज्जलंती, सव्वेसु व अक्खरेसु मत्ताओ।
पंच-नमुक्कार-पए, इक्किक्के उवरिमा जाव ॥१८॥
ससि-धवल-सलिल-निम्मल-आयारसहं च वण्णियं बिंदुं।
जोयण-सय-प्पमाणं, जाला-सयसहस्स- दिप्पंतं ॥१९॥

णमोकार मन्त्रके पदोंमें स्थित समस्त अक्षरोंमें मात्राएँ बिजलीकी तरह प्रकाशमान है और इन मात्राओंमें प्रत्येक मात्रापर चन्द्रके समान धवल, जलके सदृश निर्मल, आकारसहित एक सौ योजन प्रमाणवाली, लाखों ज्वालाओंसे युक्त बिन्दु वर्णित है ॥१८-१९॥

सोलससु अक्खरेसुं, इक्किक्कं अक्खरं जगुज्जोयं ।
भव-सयसहस्स-महणो, जंमि ठिओ पंच नवकारो ॥२०॥

लाखों जन्म-मरणोंको दूर करनेवाले णमोकार मन्त्रकी शक्ति जिनमें स्थित है, उन सोलह अक्षरोंमें-से प्रत्येक अक्षर जगत्का उद्योत करनेवाला है ॥२०॥

जो थुणइ हु इक्कमणो, भविओ भावेण पंच-नवकारं ।
सो गच्छइ सिवलोयं उज्जोयंतो दस-दिसाओ ॥२१॥

जो भव्य जीव भावपूर्वक एकाग्र चित्त होकर इस पंचनमस्कारकी दृढ़तापूर्वक स्तुति करता है, वह दसों दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ मोक्ष प्राप्त करता है ॥२१॥

तव-नियम-संजम-रहो, पंच-नमुक्कार-सारहि-निउत्तो ।
नाण-तुरंगम-जुत्तो, नेइ पुरं परम - निव्वाणं ॥२२॥

तप-नियम-संयमरूपी रथ पंचनमस्काररूपी सारथी तथा ज्ञानरूपी घोड़ोंसे युक्त हुआ स्पष्ट ही परम निर्वाणपुरमें ले जाता है ॥२२॥

सुद्धप्पा सुद्धमणा, पंचसु समिईसु संजुय-तिगुत्तो ।
जेत्तंमि रहे लग्गो सिग्घं गच्छइ (स) सिवलोयं ॥२३॥

पंच समिति और तीन गुप्तियोंसे युक्त जो शुद्ध मनवाला शुद्धात्मा इस विजयशाली रथमें बैठता है, वह शीघ्र मोक्षको प्राप्त करता है ॥२३॥

थंभेइ जलं जलणं, चिंतियमित्तो वि पंच-नवकारो ।
अरि-मारि-चोर-राउल-घोरुवसग्गं पणासेइ ॥२४॥

इस णमोकार मन्त्रके चिन्तनमात्रसे जल और अग्नि स्तम्भित हो जाते हैं तथा शत्रु, महामारी, चोर और राजकुल-द्वारा होनेवाले घोर उपद्रव नष्ट हो जाते हैं ॥२४॥

अट्ठेव य अट्ठसयं, अट्ठसहस्सं च अट्ठकोडीओ ।
रक्खंतु मे सरीरं, देवासुर-पणमिया सिद्धा ॥२५॥

देवता और असुरों-द्वारा नमस्कार किये गये आठ, आठ सौ, आठ हजार या आठ करोड़ सिद्ध मेरे शरीरकी रक्षा करें ॥२५॥

नमो अरहंताणं तिलोय-पुज्जो य संथुओ भयवं ।
अमर-नरराय-महिओ, अणाइ-निहणो सिवं दिसउ ॥२६॥

उन अर्हन्तोंको नमस्कार हो, जो त्रिलोक-द्वारा पूज्य, और अच्छी तरह स्तुत्य हैं तथा इन्द्र और राजाओं-द्वारा वन्दित है, और जो जन्म-मरणसे रहित हैं, वे हमें मोक्ष प्रदान करें ॥२६॥

निट्ठविय-अट्ठकम्मो, सुइ-भूय निरंजणो सिवो सिद्धो ।
अमर-नराय-महिओ, अणाइ-निहणो सिवं दिसउ ॥२७॥

आठों कर्मोंको नष्ट कर देनेवाले, शुचिभूत, निरंजन, कल्याणमय तथा सुरेन्द्रों और नरेन्द्रोंसे पूजित अनादि अनन्त सिद्ध परमेष्ठी मुझे मुक्ति प्रदान करें ॥२७॥

सव्वे पओस-मच्छर-आहिय-हियया पणासमुवज्जंति ।
दुगुणीकय-धणुसद्दं, सोउं पि महाधणुं सहसा ॥२८॥

"ॐ धणु-धणु महाधणु स्वाहा" इस मन्त्ररूपी विद्याको सुनकर सब ईर्ष्या, द्वेष और मात्सर्यसे भरे हृदयवाले शीघ्र ही नष्ट होते हैं ॥२८॥

इय तिहुयण-प्पमाणं, सोलस-पत्तं जलंत-दित्त-सरं ।
अट्ठार-अट्ठवलयं, पंच-नमुक्कार-चक्कमिणं ॥२९॥

सोलह पत्रवाला, ज्वलन्त और दीप्त स्वरवाला तथा आठ आरे और आठ वलयसे युक्त यह 'पंच नमस्कार चक्र' त्रिभुवनमें प्रमाणभूत है ॥२९॥

सयलुज्जोइय - भुवणं, विद्दाविय - सेस-सत्तु - संघायं ।
नासिय-मिच्छत्त-तमं, वियलिय-मोहं हय-तमोहं ॥३०॥

यह पंचनमस्कार चक्र समस्त भुवनोंको प्रकाशित करनेवाला, सम्पूर्ण शत्रुओं-को दूर भगानेवाला, मिथ्यात्वरूपी अन्धकारका नाश करनेवाला, मोहको दूर करनेवाला और अज्ञानके समूहका हनन करनेवाला है ॥३०॥

एवं सय मज्झत्थो, सम्मादिट्ठी विसुद्ध-चारित्तो ।
नाणी पवयण - भत्तो, गुरुजण - सुस्सूसणा परमो ॥३१॥
जो पंच नमुक्कारं, परमो पुरिसो पराइ भत्तीए ।
परिय - त्तेइ पइदिणं, पयओ सुद्धप्पओ अप्पा ॥३२॥
अट्ठेव य अट्ठसयं, अट्ठसहस्सं च उभयकालं पि ।
अट्ठेव य कोडीओ, सो तइय-भेव लहइ सिद्धिं ॥३३॥

जो उत्तम पुरुष सदा मध्यस्थ, सम्यग्दृष्टि, विशुद्ध चरित्रवान्, ज्ञानी प्रवचन भक्त और गुरुजनोंकी शुश्रूषामें तत्पर है तथा प्रणिधानसे आत्माको शुद्ध करके प्रतिदिन दोनों सन्ध्याओंके समय उत्कृष्ट भक्तिपूर्वक आठ, आठ सौ, आठ हजार, आठ करोड़ मन्त्रका जाप करता है, वह तीसरे भवमें सिद्धि प्राप्त करता है ॥ ३१-३३॥

एसो परमो मंतो, परम-रहस्सं परपरं तत्तं ।
नाणं परमं नेयं, सुद्धं झाणं परं झेयं ॥३४॥

यह णमोकार मन्त्र ही परम मन्त्र है, परम रहस्य है, सबसे बड़ा तत्त्व है, उत्कृष्ट ज्ञान है और है शुद्ध तथा ध्यान करने योग्य उत्तम ध्यान ॥३४॥

एयं कवयमभेयं, खाइ य सत्थं परा भवणरक्खा ।
जोई सुन्नं बिन्दु, नाओ तारा लवो मत्ता ॥३५॥

यह णमोकार मन्त्र अमोघ कवच है, परकोटेकी रक्षाके लिए खाई है, अमोघ शस्त्र है, उच्चकोटिका भवन-रक्षक है, ज्योति है, बिन्दु है, नाद है, तारा है, लव है, यही मात्रा भी है ॥३५॥

सोलस-परमक्खर-बीय-बिन्दु-गब्भो जगुत्तमो जोइ (जोउ) ।
सुय-बारसंग-सायर-(बाहिर)-महत्थ-पुव्वस्स-परमत्थो ॥३६॥

इस पंच नमस्कार चक्रमें आये हुए सोलह परमाक्षर – अरिहन्त, सिद्ध, आइरिय, उवज्झाय, साहू बीज एवं बिन्दुसे गर्भित है, जगत्में उत्तम है, ज्योति-स्वरूप है, द्वादशांगरूप श्रुतसागरके महान् अर्थको धारण करनेवाले पूर्वोका परम रहस्य है ॥३६॥

नासेइ चोर-सावय-विसहर-जल-जलण-बंधण-सयाइं ।
चिंतिज्जंतो रक्खस - रण-राय - भयाइं भावेण ॥३७॥

भावपूर्वक स्मरण किया गया यह मन्त्र चोर, हिंसक प्राणी, विषधर – सर्प, जल, अग्नि, बन्धन, राक्षस, युद्ध और राज्यके भयका नाश करता है ॥३७॥

●